शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
महाराष्ट्र

दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र

हिंदी : बीजपत्र MM2 और MM6

भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा

सत्र 1 और 2

नई शिक्षा नीति 2020 के अनुसार पुनर्रचित पाठ्यक्रम
(शैक्षिक वर्ष 2023-24 से)

एम. ए. भाग–1

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2023
एम. ए. भाग 1 (हिंदी)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 500

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. एन. शिंदे
कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN- 978-93-89345-20-9

★ दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी- शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004. (भारत)

दूरशिक्षण तथा ऑनलाईन शिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

सलाहकार समिति

प्रो. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) पी. एस. पाटील
प्र-कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) प्रकाश पवार
राज्यशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एस. विद्याशंकर
कुलगुरू, केएसओयू
मुक्तगंगोत्री, म्हैसूर, कर्नाटक-५७० ००६

डॉ. राजेंद्र कांकरिया
जी-२/१२१, इंदिरा पार्क,
चिंचवडगांव, पुणे-४११ ०३३

प्रो. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २, ११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

डॉ. संजय रत्नपारखी
डी-१६, शिक्षक वसाहत, विद्यानगरी, मुंबई विश्वविद्यालय,
सांताक्रुझ (पु.) मुंबई-४०० ०९८

प्रो. (डॉ.) कविता ओझा
संगणकशास्त्र अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) चेतन आवटी
तंत्रज्ञान अधिविभाग,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एम. एस. देशमुख
अधिष्ठाता, मानव्य विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) एस. एस. महाजन
अधिष्ठाता, वाणिज्य व व्यवस्थापन विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) श्रीमती एस. एच. ठकार
प्रभारी अधिष्ठाता, विज्ञान व तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्या (डॉ.) श्रीमती एम. व्ही. गुळवणी
प्रभारी अधिष्ठाता, आंतर-विद्याशाखीय अभ्यास विद्याशाखा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्रभारी कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. ए. एन. जाधव
संचालक, परीक्षा व मूल्यमापन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्रीमती सुहासिनी सरदार पाटील
वित्त व लेखा अधिकारी,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) डी. के. मोरे (सदस्य सचिव)
संचालक, दूरशिक्षण व ऑनलाईन शिक्षण केंद्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

हिंदी अध्ययन मंडल

अध्यक्ष

प्रो. डॉ. साताप्पा शामराव सावंत
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
विलिंग्डन कॉलेज, सांगली

सदस्य

- **प्रो. डॉ. हणमंत महादेव सोहनी**
  सदाशिवराव मंडलिक महाविद्यालय, मुरगूड,
  ता. कागल, जि. कोल्हापुर

- **प्रो. डॉ. नितीन चंद्रकांत धावडे**
  मुधोजी कॉलेज, फलटण, जि. सातारा

- **प्रो. डॉ. श्रीमती मनिषा बाळासाहेब जाधव**
  आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज, ११७, शुक्रवार पेठ,
  सातारा-४१५ ००२.

- **प्रो. डॉ. श्रीमती वर्षाराणी निवृत्ती सहदेव**
  श्री विजयसिंह यादव कॉलेज, पेठ वडगाव,
  जि. कोल्हापुर

- **प्रो. डॉ. अशोक विठोबा बाचूळकर**
  आजरा महाविद्यालय, आजरा, जि. कोल्हापुर

- **डॉ. भास्कर उमराव भवर**
  कर्मवीर हिरे आर्टस, सायन्स, कॉमर्स ॲण्ड एज्युकेशन
  कॉलेज, गारगोटी, ता. भुदरगड, जि. कोल्हापुर

- **डॉ. संग्राम यशवंत शिंदे**
  आमदार शशिकांत शिंदे महाविद्यालय, मेढा,
  ता. जावळी, जि. सातारा

- **प्रो. डॉ. अनिल मारुती साळुंखे**
  यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, करमाळा,
  जि. सोलापुर-४१३२०३

- **डॉ. गजानन सुखदेव चव्हाण**
  श्रीमती जी.के.जी. कन्या महाविद्यालय,
  जयसिंगपूर, ता. शिरोळ, जि. कोल्हापुर

- **प्रो. डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत**
  प्रो. डॉ. एन. डी. पाटील महाविद्यालय, मलकापुर,
  जि. कोल्हापुर

- **प्रो. डॉ. उत्तम लक्ष्मण थोरात**
  आदर्श कॉलेज, विटा, जि. सांगली

- **डॉ. परशराम रामजी रगडे**
  शंकरराव जगताप आर्टस ॲण्ड कॉमर्स कॉलेज,
  वाघोली, ता. कोरेगाव, जि. सातारा

भूमिका

शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर की दूरशिक्षा एवं ऑनलाइन शिक्षा योजना के अंतर्गत एम.ए.भाग-I हिंदी के छात्रों के लिए नई शिक्षा नीति के तहत बनायी गयी यह अध्ययन सामग्री है। प्रस्तुत सामग्री नियमित रूप से प्रवेश न ले सकने वाले छात्रों की असुविधा को दूर करने की योजना का अच्छा ल है। इसमें विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता तथा शिक्षा से वंचित छात्रों को सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता दिखायी देती है।

'भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा' प्रस्तुत पुस्तक में एम.ए.भाग-I , सत्र-I प्रश्नपत्र-III तथा सत्र-II प्रश्नपत्र-VII का लेखन संपन्न किया है। प्रस्तुत पुस्तक की इकाइयों के लेखक हैं - प्रो. डॉ. हणमंत सोहनी, प्रा. डॉ. हेमलता काटे, प्रा. डॉ. संतोष माने, पी. एस. कांबळे और प्रा. डॉ. नरसिंग एकिले।

प्रत्येक इकाई लेखक ने अध्ययन सामग्री, अपना ज्ञान, अध्यापन अनुभव, शैली आदि के आधार पर इकाई लेखन किया है। दूरशिक्षा के छात्रों की अध्ययन क्षमता ध्यान में रखकर प्रस्तुत सामग्री तैय्यार की है। प्रत्येक इकाई लेखक उनके लेखन के प्रति जिम्मेदार है।

दूरशिक्षा एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र में प्रवेशित छात्रों का प्रत्यक्ष रूप में अध्यापकों से कोई संबंध संपर्क नहीं आता। पुस्तक लेखन कार्य के दरमियान निर्धारित पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरूप, अंक विभाजन जैसे महत्त्वपूर्ण मद्दों को ध्यान में रखकर लेखन कार्य संपन्न किया है।

प्रश्नपत्र-III के अंतर्गत - भाषा तथा भाषा विज्ञान का स्वरूप, स्वनिम विज्ञान, रुपीम विज्ञान एवं वाक्य विज्ञान।

प्रश्नपत्र-VII के अंतर्गत - अर्थ विज्ञान, भारतीय आर्य भाषाएँ, हिंदी की उपभाषाएँ एवं देवनागरी लिपि की विशेषताएँ आदि का अध्ययन करना है।

प्रस्तुत अध्ययन सामग्री की सफलता सामुहिक प्रयास का फल है। प्रस्तुत लेखन कार्य करने के लिए इकाई लेखकों ने अपनी-अपनी इकाइयों का लेखन समय पर पूरा कर इसकी पूर्णता में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है।

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर के मा. कुलगुरू प्रो. (डॉ.) डी. टी. शिर्के, मा. प्र. कुलगुरू प्रो. डॉ. पी. एस. पाटील, कुलसचिव डॉ. व्ही. एन. शिंदे, दूरशिक्षा एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र के संचालक डॉ. डी. के. मोरे एवं उनके सभी सहकारियों, संबंधित अधिकारी एवं कर्मचारियों आदि का हम अंतस्तल से आभार प्रकट करते हैं।

- संपादक

इकाई लेखक

लेखकाचे नाव	घटक क्रमांक	
	सत्र–3	सत्र–4
★ **डॉ. हेमलता काटे** बाळासाहेब देसाई कॉलेज पाटण, ता. पाटण, जि. सातारा	**1, 3**	**-**
★ **डॉ. संतोष माने** शिवराज कॉलेज ऑफ आर्टस ॲण्ड कॉमर्स ॲण्ड डी.एस. कदम सायन्स कॉलेज, गडहिंग्लज, ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापुर	**2**	**-**
★ **प्रो. (डॉ.) हणमंत महादेव सोहनी** सदाशिवराव मंडलिक महाविद्यालय, मुरगूड, ता. कागल, जि. कोल्हापूर	**4**	**-**
★ **श्री. पी. एस. कांबळे** वारणा कॉम्प्लेक्स गल्ली नं. २, विद्यानगर वारणाली रोड, विश्रामबाग, सांगली	**-**	**1, 2**
★ **डॉ. नरसिंग एकिले** शिवराज कॉलेज ऑफ आर्टस ॲण्ड कॉमर्स ॲण्ड डी.एस. कदम सायन्स कॉलेज, गडहिंग्लज, ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापूर	**-**	**3, 4**

■ सम्पादक ■

प्रो. (डॉ.) हणमंत महादेव सोहनी
सदाशिवराव मंडलिक महाविद्यालय, मुरगूड,
ता. कागल, जि. कोल्हापुर

प्रो. (डॉ.) साताप्पा शामराव सावंत
अध्यक्ष, हिंदी अध्ययन मंडल,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर तथा
विलिंग्डन कॉलेज सांगली,
जि. सांगली

अनुक्रम

इकाई		पृष्ठ
	सत्र–1 बीजपत्र–MM2 : भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा	
1.	भाषा तथा भाषा विज्ञान का स्वरूप	1
2.	स्वनिम विज्ञान (ध्वनिग्राम विज्ञान)	33
3.	रुपिम विज्ञान स्वरूप और परिभाषा, रुपिम के भेद रुप परिवर्तन के कारण और दिशाएँ	47
4.	वाक्य विज्ञान	72
	सत्र–2 बीजपत्र–MM6 : भाषाविज्ञान एवं हिंदी भाषा	
1.	अर्थ विज्ञान	97
2.	भारतीय आर्य भाषाएँ – प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक	123
3.	हिंदी की उपभाषाएँ पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, बिहारी हिंदी, पहाड़ी हिंदी वर्ग और उनकी बोलियाँ	148
4.	देवनागरी लिपि की विशेषताएँ, सीमाएँ, देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता और मानकीकरण हिंदी में कम्प्यूटर की सुविधाएँ – मशीन अनुवाद, मेल आयडी का पंजीकरण (विधि), ई–मेल प्रेरणा एवं प्राप्ति, विषय की जानकारी ढूँढना (सर्चिंग), इंडिक इनपुट सॉफ्टवेयर परिचय	183

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे–

(१) इकाई में क्या दिया गया है।

(२) आपसे क्या अपेक्षित है।

(३) विशेष इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं–अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं–अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्ध होगी।

इकाई–1
भाषा तथा भाषा विज्ञान का स्वरूप

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय विवेचन

1.3.1 भाषा स्वरूप, परिभाषा और विशेषताएँ

1.3.2 भाषा विज्ञान स्वरूप, परिभाषा

1.3.2.1 भाषा विज्ञान नामकरण

1.3.2.2 भाषा विज्ञान स्वरूप

1.3.2.3 भाषा विज्ञान की परिभाषाएँ

1.3.3 भाषा परिवर्तन के कारण

1.3.4 भाषा विज्ञान के अंग

1.3.5 भाषाविज्ञान के अध्ययन की दिशाएँ

1.4 सारांश

1.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.7 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई पढने के उपरांत आप। –

1) भाषा के स्वरूप से परिचित होंगे।

2) भाषा की भारतीय एवं पाश्चात्य परिभाषाओं को जान सकेंगे।

3) भाषा की विशेषताओं को समझ लेंगे।

4) भाषाविज्ञान के स्वरूप को समझ सकेंगे।

5) भाषाविज्ञान के भारतीय एवं पाश्चात्य परिभाषाओं को जान सकेंगे।

6) भाषा परिवर्तन के कारण समझ सकेंगे।

7) भाषाविज्ञान के अंगों का परिचय होगा।

8) भाषाविज्ञान के अध्ययन की दिशाओं से परिचित होंगे।

1.2 प्रस्तावना

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। जिसप्रकार वह अपने विचार दूसरों को सुनाना चाहता है, उसीप्रकार दूसरों के विचार सुनना भी चाहता है। आत्माभिव्यक्ति की यह इच्छा मनुष्य की स्वाभाविक इच्छा है । आत्माभिव्यक्ति की इस इच्छा ने ही भाषा को जन्म दिया है । अत: यह भाषा क्या है?, उसका स्वरूप क्या है?, भाषा की विशेषताएँ क्या है?, भाषा परिवर्तित क्यों होती है? भाषा विज्ञान का स्वरूप क्या है? भाषा विज्ञान के अंग कौन-से हैं? भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाएँ क्या है? आदि प्रश्नों पर प्रकाश डालने का काम प्रस्तुत इकाई में किया है।

1.3. विषय विवेचन

1.3.1 भाषा का स्वरूप :-

स्वरूप का अर्थ 'स्वभाव या व्यक्ति, पदार्थ, कार्य, आदि की आकृति।' इसीलिए भाषा का स्वभाव या उसके कार्य की आकृति को हम उसके स्वरूप के बारे में देख सकते हैं। भाषा का स्वभाव है 'परस्पर विचार विनिमय करना' भाषा का लक्षण इस प्रकार व्यक्त करते हैं, ''भाषा मनुष्यों की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किए गए वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।''

इस लक्षण से यह स्पष्ट होता है कि भाषा का आधार भौतिक और मानसिक दोनों प्रकार का है। जहाँ तक इसका संबंध तालु आदि स्थानों से उच्चरित और कानों से श्रोतव्य वर्णों से हैं वहाँ तक इसका आधार भौतिक है; और जहाँ तक भाषा का संबंध हमारे विचारों से हैं वहाँ तक उसका आधार मानसिक है।

1) विचार-विनिमय या अभिव्यक्ति के रूप में भाषा का स्वरूप :-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी हैं। सामाजिक बनने के लिए उसके पास भाषा एक माध्यम है। अपने परिवार, परिवेश और फिर व्यापक समाज में भाषा का प्रयोग करते हुए ही मनुष्य अपने विचारों का आदान-प्रदान करता है। इस आदान-प्रदान को हम संप्रेषण भी कहते हैं। इसका तात्पर्य यह हैं कि अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने और अपने विचार को अभिव्यक्त करने में मनुष्य के पास सशक्त माध्यम भाषा ही है। इसप्रकार भाषा के सहारे व्यक्ति न केवल अपने विचार व्यक्त करता है, बल्कि विचार विनमय के माध्यम से दूसरों तक संप्रेषित करता है। अत: अभिव्यक्ति के स्तर पर भाषा के दो रूप बनते हैं-1) मौखिक और 2) लिखित मौखिक रूप में अभिव्यक्ति का साधन ध्वनि है संबोधन के रूप में वक्ता संदेश को भाषा में बांधकर मुँह से उच्चारित करता है और संबोधित के रूप में श्रोता उसे सुनकर अर्थ ग्रहण करता है, इसके विपरीत लिखित रूप में भाषिक अभिव्यक्ति का साधन लेखन होता है इस संदर्भ में संबोधक के रूप में लेखक संदेश को लिखकर व्यक्त करता है और संबोधित के रूप में पाठक पढकर उसका अर्थ समझता है।

2) विचार या भावबोध के रूप में भाषा का स्वरूप :–

वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए तो भाषा मनुष्य के केवल विचार विनिमय का ही साधन नहीं, विचार का भी साधन है। यह बात हम छोटे बच्चे के उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं। जैसे– दो तीन बरस का बच्चा जब बोलना सीख लेता है, तब अकेले में बैठा खिलौने से खेलता हुआ वह मन की बात प्रकट करता रहता है, किसी को सुनाने के लिए नहीं। वयस्क मनुष्य भी भाव आवेश में अकेला ही मन की बात शब्दों में कह जाता है । इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि भाषा और विचार एक ही वस्तु के दो अभिन्न पहलू हैं। भाषा विचार करने का भी साधन है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है पर यदि कोई भी विचार करने बैठे तो भाषा की मदद के बिना नहीं कर सकते। अर्थात् हम सोचते हैं तो भाषा के सहारे और किसी बात को समझते–समझाते हैं तो भी भाषा के सहारे।

परंतु आज मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करने के लिए तरह–तरह की भाषाएँ बोलता है। कोई हिंदी, कोई मराठी,कोई अंग्रेजी, कोई कन्नड़, कोई तेलुगु, जर्मन, अंग्रेजी, जापानी आदि। यदि और भेद की दृष्टि से देखा जाए तो एक भाषा के अंतर्गत ही मनुष्य कई तरह की बोलियाँ भी बोलते हैं। हिंदी में कोई अवधि, खड़ी बोली, ब्रज आदि। इन बोलियों के भीतर भी कई भेद हैं, परंतु इन सब के तह में एक एकत्व है कि मनुष्य के विचारों, भावों और इच्छाओं को प्रकट करना। भले ही भाषा भाषाओं में अंतर है परंतु उसका स्वरूप एक हैं मनुष्य के विचार विनिमय में जो विचार, भाव और इच्छाओं में एक तत्व है वही भाषा का स्वरूप है ।

परंतु इन विचार, भावों और इच्छाओं अभिव्यक्ति का वह महत्वपूर्ण साधन भाषा हैं इसके अतिरिक्त वह कई और माध्यमों से भी विचारों की अभिव्यक्ति करता हैं जिसमें कभी प्रतीकों, कभी संकेतों, कभी रंगों, कभी स्पर्श, कभी झंडी दिखाना, विभिन्न शारीरिक हाव–भावों आदि का प्रयोग करता है। यह सभी भाषा है केवल साधन अलग हैं इससे भाषा के स्वरूप की व्यापकता समझ में आती है। इससे भाषा के दो रूप सामने आते हैं – अ) व्यापक रूप ब) सीमित रूप।

अ) व्यापक रूप :–

भाषा के इस रूप में वे सभी साधन आयेंगे, जिसके द्वारा मनुष्य परस्पर विचार–विनिमय करता है। इन साधनों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

1) भाषा का स्पर्श ग्राह्य स्वरूप :–

इसके अंतर्गत विचार–विनिमय के वे साधन आते हैं, जिसमें मनुष्य स्पर्श का सहारा लेता है और अपने विचारों को व्यक्त करता हैं जैसे– पुलिस का खतरा होने पर एक चोर दूसरे चोर का हाथ दबाकर, बिना बोले ही, उस खतरे का संदेश उसे दे देता है।

2) भाषा का नेत्र ग्राह्य स्वरूप :–

इसके अंतर्गत विचार–विनिमय के वे साधन आते हैं, जिसमें मनुष्य संकेतों का सहारा लेता हैं और अपने विचारों को व्यक्त करता हैं जैसे– ट्राफिक की बत्तियाँ आदि।

3) भाषा का श्रवण ग्राह्य स्वरूप :–

इसके अंतर्गत विचार–विनिमय के वे साधन आते हैं, जिसमें मनुष्य समस्त ध्वनियों का सहारा लेता हैं और अपने विचारों को व्यक्त करता हैं। जैसे–मधुमक्खियाँ विशिष्ठ प्रकार के नृत्य से यह बताती है कि शहद किस दिशा में है।

ब) सीमित रूप :–

उपर्युक्त सभी साधनों को भाषा मानने से भाषा के स्वरूप में अति व्याप्ति आती है, जो भाषा की वैज्ञानिक अर्थ के दृष्टि से उचित नहीं। वस्तुत: भाषा का अपना सीमित अर्थ है, जो उसको वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करता हैं। भाषा के सीमित स्वरूप की कुछ विशेषताएँ–

1) भाषा विचार–विनिमय का साधन है।

2) भाषा उच्चारण अवयवों से निकले ध्वनि –प्रतीकों का समूह हैं।

3) भाषा सार्थक ध्वनि प्रतीकों का समूह है।

4) इन ध्वनि प्रतीकों का रूप यादृच्छिक होता है।

5) भाषा का प्रयोग समाज का एक वर्ग – विशेष करता हैं।

भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था मानी गई हैं, जो समाज में आपस में विचार विनिमय के लिए प्रयुक्त होती है। वास्तव में भाषा प्रतीकात्मक होती है और उसका कार्य संप्रेषण करना हैं। यह जिन प्रतीकों को लेकर चलती है वे संकल्पना के रूप में साधारणीकृत होते हैं और संप्रेषण के रूप में भाव एवं विचारों का बोधन कराते हैं। अर्थात भाव और विचारों का बोधन करानेवाली भाषा होती है।

1.3.2 भाषा की परिभाषाएँ :–

भाषा की परिभाषा पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि 'भाष्' शब्द की निर्मिति कैसे हुई है। 'भाषा' शब्द संस्कृत 'भाष्' धातु से बना है। संस्कृत में भाषा का अर्थ होता है 'बोलना'। हम जानते हैं कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए उसे निरंतर विचारों का आदान – प्रदान करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए वह भाषा का सहारा लेता है। अतः कह सकते हैं कि भाषा विचार–विनिमय का साधन है। भाषा के संबंध में विचार करते हुए अनेक भारतीय और पाश्चात्य भाषाविदों ने भाषा को परिभाषित करने का प्रयास किया है। यहाँ कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ नीचे दी गई है।

अ) भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाएँ :–

1) **महर्षि पतंजलि :–**

इन्होंने अपने 'महाभाष्य' में भाषा की परिभाषा इस प्रकार की है, "व्यक्ता वाची वर्णा येषां त इये व्यक्तवाच:" अर्थात ''जो वाणी वर्णों में व्यक्त हो उसे भाषा कहते हैं।''

2) **पं. कामता प्रसाद गुरु :–**

"भाषा वह साधन है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली–भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार आप स्पष्टतया समझ सकता है।''

3) **डॉ. श्यामसुंदर दास :–**

''मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और गति का आदान–प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है, उसे भाषा कहते हैं।''

4) **आचार्य किशोरी दास वाजपेयी :–**

"विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह की भाषा है, जिसके द्वारा हम अपने मनोभाव दूसरों के प्रति सरलता से व्यक्त कर सकते हैं।''

5) **डॉ. मंगलदेव शास्त्री :–**

"भाषा मनुष्य की चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयों से उच्चारण किए गए वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।

6) **सुकुमार सेन :–**

"अर्थवान कंठ से नि: सृत ध्वनि- समष्टि की भाषा है।''

7) **पी.डी. गुण :–**

"ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।''

8) **बाबूराम सक्सेना :–**

"जिन ध्वनि चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार- विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।''

9) **डॉ. भोलानाथ तिवारी :–**

"भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।''

ब) पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई भाषा की परिभाषाएँ :–

1) **प्लेटो :–**

'सोफिस्ट' में विचार और भाषा के संबंध में लिखते हुए प्लेटो ने कहा है कि विचार और भाषा में थोड़ा ही अंतर है।'' विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है, तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।''

2) **मैक्स मूलर :–**

"भाषा और कुछ नहीं है, केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत एक ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपना विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और जो चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्य पदार्थ के रूप में करना उचित है।

3) **हेनरी स्वीट:–**

"Language defined and expression of thought by means of speech sound. "ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।''

4) **वेन्द्रिए :–**

"भाषा एक तरह का संकेत है। संकेत से आशय उन प्रतीकों से है जिनके द्वारा मानव अपने विचार दूसरों पर प्रकट करता है। यह प्रतीक कई प्रकार के होते हैं, जैसे नेत्रग्राह्य, कर्णग्राह्य, और स्पर्शग्राह्य। वस्तुतः भाषा की दृष्टि से कर्णग्राह्य प्रतीक ही सर्वश्रेष्ठ है।''

5) **बेनेदितो क्रोंचे :–**

"भाषा उस स्पष्ट, सीमित तथा असंगठित ध्वनि को कहते हैं जो अभिव्यंजना के लिए नियुक्त की जाती है।''

6) **ब्लॉक तथा ट्रैगर :–**

"Language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a society group co-operates.'' "भाषा यादृच्छिक ध्वनि संकेतों की वह प्रणाली है जिसके माध्यम से मानव परस्पर विचारों का आदान प्रदान करता है।''

7) **स्त्रुत्वां:–**

"भाषा यादृच्छिक ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है जिसके द्वारा मानव समुदाय परस्पर सहयोग एवं विचार विनिमय करते हैं।''

8) **चौम्स्की:–**

''I will consider a language to be a set (finite or infinite) of sentences, each finite in length and constructed out of a finance set of elements.''

9) **Encyclopedia of Britannica:-**

"Language may be defined as an arbitrary system of vocal symbols by means of which human beings as members of a social group and participants in culture interact and communicate."

उपरोक्त परिभाषाओं को देखने से यह स्पष्ट होता है कि भाषा के संदर्भ में कोई मत अपने में पूर्ण नहीं है। इन परिभाषाओं में भाषा का आधार ध्वनि – प्रतीक है। ध्वनि मुख्य अवयवों से उच्चारित होनी चाहिए। भाषा में एक व्यवस्था होती है। एक भाषा का क्षेत्र एक समाज विशेष से ही होता है। भाषा का कार्य वक्ता के भाव या विचारों को श्रोता तक पहुँचाना है, आदि बातों की ओर संकेत मिलता है। संक्षेप में भाषा, उच्चारण–अंगों से नि:सृत, विश्लेषण योग्य, सार्थक, यादृच्छिक ध्वनि–प्रतीकों की व्यवस्था है, जिसके माध्यम से समाज के एक वर्ग विशेष के लोग परस्पर विचार – विनिमय करते हैं।

1.3.4 भाषा की विशेषताएँ :–

भाषा संबंधी कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ और विशेषताएँ दिखाई देती हैं जो सभी भाषाओं में दिखाई देती हैं। उन्हीं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

1. भाषा पैतृक संपत्ति नहीं है।
2. भाषा अर्जित संपत्ति है।

3. भाषा आद्यंत सामाजिक वस्तु है।
4. भाषा परंपरागत है, व्यक्ति उसका अर्जन कर सकता है, उसे उत्पन्न नहीं कर सकता।
5. भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा होता है।
6. भाषा चिर परिवर्तनशील होती है।
7. भाषा का परिवर्तन पहले वाचिक रूप में होता है।
8. भाषा का कोई अंतिम स्वरूप नहीं होता।
9. भाषा अनिवार्य एवं सर्वव्यापक है।
10. प्रत्येक भाषा की भौगोलिक सीमा होती है।
11. प्रत्येक भाषा की एक ऐतिहासिक सीमा होती है।
12. प्रत्येक भाषा की संरचना अलग होती है।
13. भाषा की धारा स्वभावत: कठिनता से सरलता की ओर जाती है।
14. भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता और अप्रौढता से प्रौढता की ओर जाती है।
15. भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है।
16. प्रत्येक भाषा का स्पष्टत: या अस्पष्टत: एक मानक रूप होता है।

1) भाषा पैतृक संपत्ति नहीं है :–

पिता से पुत्र को जो संपत्ति मिलती है उसे 'पैत्तृक संपत्ति' कहा जाता है। कुछ लोगों का विश्वास है कि भाषा पैतृक संपत्ति है। उनका मानना है कि पिता की भाषा पुत्र को पैतृक संपत्ति की भाँति अनायास ही प्राप्त होती है। परंतु यह सर्वथा मिथ्या है। कारण बच्चा जिस वातावरण में पलता- बढता है, वही भाषा सीखता है। जैसे-किसी भारतीय बच्चे को एक दो वर्ष की अवस्था में फ्रेंच में पाला जाए, तो वह हिंदी या हिंदुस्तानी आदि ना समझ सकेगा और फ्रेंच ही उसकी मातृभाषा या अपनी भाषा होगी। यदि भाषा पैतृक संपत्ति होती तो भारतीय बच्चा बाहर कहीं भी रहकर बिना प्रयास हिंदी समझ और बोल लेता।

कुछ वर्ष पूर्व लखनऊ के अस्पताल में लगभग बारह वर्ष का एक लड़का लाया गया था, जो मनुष्य की तरह कुछ भी नहीं बोल पाता था। खोज करने पर पता चला कि उसे कोई भेड़िया बहुत पहले उठा ले गया था और तब से वह भेड़िए के साथ रहा। उसमें सभी आदतें भेडिये -सी थी। अर्थात् भाषा पैत्तृक संपत्ति न होकर अर्जित संपत्ति है।

2) भाषा अर्जित संपत्ति है :–

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि बालक भाषा अपने आस-पास के वातावरण से प्रभावित होकर सिखता हैं। इस सीखने के कार्य में माता-पिता तथा अन्य समाज के व्यक्ति उसकी मदद करते हैं। अर्थात् भाषा जन्मजात प्राप्त नहीं होती, वह समाज में रहकर ही सीखी एवं प्राप्त होती है। इस प्रकार

कहा जा सकता है कि भाषा अर्जित संपत्ति है, पैत्तृक नहीं। जैसे अगर माँ दूध कहती है तो बच्चा भी दूध ही कहता है।

3) भाषा आद्यंत सामाजिक वस्तु है :–

हम भाषा को अर्जित संपत्ति कह चुके हैं। प्रश्न यह है कि व्यक्ति इस संपत्ति का अर्जन कहाँ से करता है? इसका एकमात्र उत्तर है– 'समाज से'। इतना ही नहीं तो भाषा पूर्णता आदि से अंत तक समाज से संबंधित है। अर्थात भाषा की उत्पत्ति समाज में होती है, उसका विकास समाज में होता है, उसका अर्जन समाज से होता है और उसका प्रयोग भी समाज में ही होता है। समाज से पृथक किसी भाषा की कल्पना ही असंभव है। भाषा के लिए समाज की अनिवार्यता के कारण ही भाषा को आद्यंत सामाजिक वस्तु कह सकते हैं। जैसे – महाराष्ट्र की मराठी, पंजाब की पंजाबी उस समाज का ही प्रतिनिधित्त्व करती है, जहाँ वह विकसित होती है या प्रयोग में लायी जाती है

4) भाषा परंपरागत है –व्यक्ति उसका अर्जन कर सकता है, उसे उत्पन्न नहीं कर सकता :–

भाषा एक सामाजिक वस्तु है, जो परंपरा से चली आ रही है। व्यक्ति केवल समाज का अंग होने के नाते भाषा का अर्जन करता है। समाज का सक्रिय अंग होने के नाते अपनी प्रतिभा शक्ति के आधार पर वह उसमें कुछ परिवर्तन ला सकता है जिसके कारण उसमें परिमार्जन होता है। लेकिन समाज को छोड़कर व्यक्ति भाषा की सृष्टि नहीं कर सकता। यदि कोई उसका निर्माता है तो समाज ही हैं। आने वाली पीढ़ी उसे परंपरागत रूप में ही अपनाती है, इसलिए भाषा को परंपरागत माना जाता है। जैसे संस्कृत–पाली–प्राकृत–अपभ्रंश–हिंदी परंपरा से ही आगे बढी जिसका प्रयोग मनुष्य करता है।

5) भाषा का अर्जन अनुकरण द्वारा होता है :–

'अर्जन' का अर्थ है– 'सीखना'। भाषा अनुकरण से सीखी जाती है। इसके बारे में प्रसिद्ध युनानी दार्शनिक अरस्तू के विचार हैं, 'अनुकरण मनुष्य का सबसे बडा गुण हैं। वह भाषा सीखने में भी इसी गुण का उपयोग करता हैं।' जैसे–छोटा बालक अपने माता–पिता, भाई–बहन की तरह उच्चारण करने का प्रयत्न करता है। धीरे–धीरे वह प्रयास करते हुए भाषा सीखता है। यह सीखने की क्रिया बचपन से लेकर आजीवन भर चलती है।

6) भाषा चिर परिवर्तनशील होती है :–

भाषा समाज – सापेक्ष होती है। समाज विकसित होता है अत: भाषा का विकास होना सहज और स्वाभाविक है । भाषा विकसित होती है इसका अर्थ वह परिवर्तित होती है। वस्तुत: भाषा की संरचना ही ऐसी है जिसमें परिवर्तन होना अनिवार्य है ।

भाषा की परिवर्तनशीलता के दो पक्ष हैं– 1) भौतिक 2) आत्मिक।

1) **भौतिक पक्ष** – इससे अभिप्राय उच्चारण अवयवों अर्थात् शारीरिक रचना से हैं। प्रत्येक व्यक्ति का ध्वनि यंत्र अलग होता है इसीलिए उच्चारण की भिन्नता सहज स्वाभाविक है।

2) **आत्मिक पक्ष** – इससे अभिप्राय 'अर्थतत्त्व' से हैं और तत्व का संबंध व्यक्ति की मन: स्थिति से होता है। प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक अवस्था अलग होती है। इसलिए परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर गतिमान रहती है।

एक बात और है कि, भाषा अनुकरण से सीखी जाती है । मनुष्य अनुकरण प्रिय होने पर भी वह इस कला में परिपूर्ण नहीं है । इसीलिए प्रत्येक अनुकरण में कुछ न कुछ विभिन्नता के कारण भाषा निरंतर परिवर्तित होती जाती है ।

7) भाषा का परिवर्तन पहले वाचिक रूप में होता है :–

सामाजिक व्यवहार में भाषा दो रुपों में प्रयुक्त होती है– वाचिक और लिखित। भाषा के इन दोनों ही रुपों में परिवर्तन होता है लेकिन सबसे पहले वाचिक रूप में होता है। लिखित रूप तो वाचिक रूप पर ही अवलंबित होता है किंतु एक बार भाषा लिखने के बाद उसमें परिवर्तन नहीं होता। भाषा का यह रूप समयानुसार नहीं होता और भाषा के पीछे छूट जाता है, क्योंकि भाषा में प्रति क्षण नवीनता आ जाती है जिसके कारण भाषा में परिवर्तन आ जाता हैं।

8) भाषा का कोई अंतिम स्वरूप नहीं होता :–

भाषा का कोई अंतिम रूप नहीं होता। भाषा आवश्यकतानुसार सदा परिवर्तित होती रहती हैं। भाषा के संबंध में यह कभी नहीं कहा जा सकता कि भाषा का यह अंतिम रूप हैं। कबीर ने कहा हैं, 'भाषा बहता नीर।' इसी प्रवाह के कारण जहाँ भाषा अपने प्राचीन शब्दों को छोडती चलती हैं, वही नए शब्दों को ग्रहण भी करती जाती हैं। एक भाषा जब दूसरी भाषा के संपर्क में आती हैं, तब उसके प्रचलित शब्दों को ग्रहण कर लेती है और ये शब्द उसके प्रयोग प्रवाह में अविच्छिन्न रूप से चलने लगते हैं। अपवाद रूप में संस्कृत ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसे पाणिनी के व्याकरण ने इतना स्थिर कर दिया कि शताब्दियों की यात्रा में उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। संस्कृत को छोडकर संसार की सभी भाषाएँ दिन–प्रतिदिन परिवर्तित होती है। जहाँ भाषा में स्थिरता आती है, वहाँ भाषा मृत बन जाती है। परिवर्तन और अस्थैर्य ही भाषा के जीवन के द्योतक है।

9) भाषा अनिवार्य एवं सर्वव्यापक है :–

भाषा परंपरागत होने के कारण अनिवार्य है। व्यक्ति और समाज का अटूट संबंध होता है। व्यक्ति भाषा को छोडकर नहीं रह सकता। समाज में अपने व्यवहार पूरे करने के लिए उसे कोई–न–कोई भाषा स्वीकार करनी ही पडती है। इसे भाषा की अनिवार्यता कहाँ जाता है।

व्यक्ति के अस्तित्त्व के साथ ही भाषा का भी अस्तित्व है। व्यक्ति–व्यक्ति का संबंध या व्यक्ति समाज का संबंध भाषा के बिना असंभव हैं। अर्थात् जहाँ व्यक्ति है वहाँ भाषा है। इसलिए भाषा को सर्वव्यापक कहा जाता है। ज्ञान विज्ञान का ऐसा कोई अंश नहीं है, जो भाषा से समाहित नहीं है। उसका स्वरूप अत्यंत विराट होता है।

10) प्रत्येक भाषा की भौगोलिक सीमा होती है :–

भाषा के संबंध में एक कहावत हैं, 'चार कोस पानी बदले आठ कोस पर बानी' कहने का तात्पर्य यह हैं कि एक विशेष भूखंड की भाषा भी विशिष्ट होती है । तात्पर्य एक भूखंड विशेष में प्रयुक्त भाषा दूसरे भूखंड विशेष से निश्चित रूप से अलग होती हैं । उदाहरण के लिए बंगला नामक भूखंड की भाषा यदि बंगाली हैं, तो पंजाब नामक भूखंड की भाषा पंजाबी हैं। इसीप्रकार अंग्रेजी, रूसी, चीनी की भी अपनी–अपनी निर्धारित भौगोलिक सीमाएँ हैं ।

11) प्रत्येक भाषा की एक ऐतिहासिक सीमा होती है :–

भाषा का इतिहास यह बताता है कि प्रत्येक भाषा की ऐतिहासिक सीमा होती है। ऐतिहासिक भाषाविज्ञान प्रत्येक भाषा के इस ऐतिहासिक पक्ष को लेता है। प्रत्येक भाषा प्रारंभ में किस रूप में थी, बाद में बदलकर किस रूप में आई, वह किस समय से किस समय तक प्रचलित रही, इन बातों पर ऐतिहासिक भाषा विज्ञान में विचार होता है। इस दृष्टि से संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आर्य भाषाओं आदि का समय निर्धारित किया गया है।

12) भाषा एक सामाजिक स्तर होता है :–

जिस प्रकार एक समाज में भाषा का प्रयोग करनेवाले व्यक्तियों का सामजिक स्तर अलग–अलग होता हैं, उसीतरह उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा का भी सामाजिक स्तर विभिन्न होता है। समाज में डॉक्टर, इंजीनियर, साहित्यकार, व्यापारी, वकील, मजदूर आदि विभिन्न वर्ग होते हैं और उनका मानसिक स्तर भी अलग–अलग होता है। उदाहरण के लिए यदि सभी हिंदी भाषा का ही प्रयोग करते हैं, तो एक भाषा का प्रयोग करते हुए भी उनके द्वारा प्रयुक्त हिंदी का स्तर अलग–अलग होगा।

13) प्रत्येक भाषा की संरचना अलग–अलग होती है :–

प्रत्येक भाषा की अपनी अलग संरचना होती है अर्थात् प्रत्येक भाषा का ढाँचा पूर्णतया स्वतंत्र होता है। ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ की दृष्टि से दो भाषाओं में अंतर आ जाता है, जैसे– हिंदी में दो लिंग हैं, गुजराती में तीन, हिंदी में दो वचन हैं, तो संस्कृत में तीन। इस प्रकार प्रत्येक भाषा की संरचना दूसरी भाषा से अलग होती है।

14) भाषा की धारा स्वभावत: कठिनता से सरलता की ओर जाती है :–

मनुष्य स्वभाव से ही सरलता प्रिय प्राणी है वह हर क्षेत्र में श्रम और शक्ति की बचत करना चाहता है। अत: वह कम से कम श्रम में अधिक से अधिक कार्य करना चाहता है। मनुष्य की यह प्रवृत्ति भाषा के क्षेत्र में भी सक्रिय रहती है। जिस प्रकार जल की धारा ऊपर से नीचे की ओर जाती है, उसी प्रकार भाषा भी कठिनता से सरलता की ओर अग्रेसर होती है जनसाधारण में यह प्रवृत्ति स्पष्टतया परिलक्षित होती है। प्रयत्न – लाघव, मुखसुख आदि कारणों से भाषा में कई परिवर्तन होते हैं जैसे, सत्येंद्र को सतेन्द्र, फिर सतेंदर, फिर सतिंदर और सतेज कहने लगते हैं उपाध्याय का झा, मुखोपाध्याय का मुखर्जी आदि भी इसी के उदाहरण है।

15) भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता और अप्रौढता से प्रौढता की ओर जाती है :–

सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ–साथ भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाती है अर्थात् भाषा में परिष्कार होता है इसी परिष्कार के कारण भाषा शिथिलता के स्थान पर चुस्त बन जाती है। जिसके कारण अभिव्यक्ति में विस्तार के स्थान पर सूक्ष्मता आ जाती है और भाषा प्रौढ हो जाती है। प्रौढता से यहाँ मतलब विचारों और अनुभूतियों को गहराई से व्यक्त करने की क्षमता से है जैसे–मैं जाता हूँ, पढता हूँ के स्थान पर–मैं जाकर पढता–लिखता हूँ, प्रौढता का उदाहरण है।

प्राचीन हिंदी की तुलना में आज की हिंदी प्रौढ और सूक्ष्म है। द्विवेदी कालीन विवरणात्मक भाषा, छायावाद काल की भाषा की अपेक्षा अप्रौढ ही समझी जायेगी।

16) भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती हैं :–

भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है। संयोग का अर्थ–मिली हुई स्थिति और वियोग का मतलब है– अलग–अलग होना। अब तो यह बात स्वीकार करनी पडती है कि भाषा संयोग से वियोग की ओर जाती है, जैसे राम: गच्छति से, राम जाता है कहा जा सकता है कि संस्कृत से हिंदी वियोगात्मक हो गई है।

17) प्रत्येक भाषा का स्पष्टत: या अस्पष्टत: एक मानक रूप होता है:–

प्रत्येक भाषा के दो रूप होते हैं– एक मौखिक और दूसरा लिखित। लिखित रूप में भाषा मानक या शुद्ध रूप में ही होती है इसीलिए प्रत्येक भाषा का स्पष्टत: या अस्पष्टत: एक मानक रूप होता ही है ।

1.3.2. भाषा विज्ञान का स्वरूप :–

पाश्चात्य देशों में 19 वीं शताब्दी में जो वैज्ञानिक उन्नति की है, वह किसी से छिपी नहीं है। वैज्ञानिक प्रक्रिया के काम में लाने से सामान्य ज्ञान को विज्ञान का स्वरूप देने का गौरव इस शताब्दी को प्राप्त है। इस प्रक्रिया के अनुसरण से अनेक विज्ञानों ने जन्म लिया है उनमें 'भाषा विज्ञान' का भी एक ऊंचा स्थान है।

1.3.2.1 भाषा विज्ञान का नामकरण:–

भाषा विज्ञान शब्द पाश्चात्य विद्वानों की देन है वर्तमान भाषा का आरंभ सन् 1786 ई. में सर विलियम जोन्स के संस्कृत, लैटिन तथा ग्रीक के तुलनात्मक अध्ययन से माना जाता है। इस दृष्टि से सन् 1928 ई. में हेग में 'आंतरराष्ट्रीय भाषा विज्ञान' परिषद का प्रथम अधिवेशन हुआ। इसके फलस्वरूप विभिन्न देशों में भाषा विज्ञान के चार केंद्र स्थापित हुए, जिन्हें लंदन स्कूल, अमेरिकन स्कूल, प्राग स्कूल और कोपनहैगल स्कूल हैं।

'भाषा विज्ञान' शब्द 'Linguistics' का हिंदी रुपांतर है। इस शब्द की व्युपत्ति लैटिन शब्द Lingua से हुई है, जिसका अर्थ है– जिह्वा, जबान या जीभ 'जबान' शब्द का प्रयोग भाषा के ही अर्थ में होता है। अत: भाषा विज्ञान के लिए 'Linguistics' शब्द का प्रयोग ही उचित है परंतु इसे सर्वप्रथम नाम 'कम्पेरेटिव ग्रामर' दिया गया था। आधुनिक समय में भाषा विज्ञान, भाषा शास्त्र, भाषा विचार, भाषा लोचन, तुलनात्मक भाषा विज्ञान, शब्द शास्त्र, भाषा तत्व, भाषिकी आदि शब्द प्रयुक्त हो रहे हैं। लेकिन इसमें 'भाषा विज्ञान' नाम ही सर्वाधिक मान्य और प्रसिध्द है, जो हर दृष्टि से भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए उपयुक्त है जिससे भाषाविज्ञान का स्वरूप भली–भाँति समझ में आता है ।

1.3.2.2 भाषा विज्ञान का स्वरूप :–

भाषा विज्ञान का स्वरूप विज्ञान की भाँति हैं किसी भी वस्तु का विशिष्ट या युक्ति सहित ज्ञान यानि विज्ञान। इस दृष्टि से भाषा विज्ञान का स्वरूप निश्चित रूप से विज्ञान की तरह है। फिर यह प्रश्न निर्माण होता है कि किस हक तक भाषा विज्ञान विज्ञान तरह है इसके लिए विज्ञान और कला इन दोनों से संबंधित धारणाओं, स्वरूप देखना आवश्यक हैं ।

विज्ञान की सबसे बडी विशेषता यह है कि वह पदार्थो में कार्य–कारण संबंध स्थापित करता है किसी विशिष्ट कारण से कार्य उपस्थित होता है। विज्ञान इसकी खोज करता है कि अगर कोई घटना घटती है या कोई कार्य होता है, तो इसका कारण क्या है? इसी कार्य कारण विश्लेषण से विज्ञान में सुसंबद्धता सुसंगति स्थापित होती है। विज्ञान की दूसरी विशेषता है– प्रयोग चिंतन और मनन के बाद प्रयोगों द्वारा वैज्ञानिक विश्लेषण को प्रामाणिक बनाया जाता है ।

भाषा विज्ञान में कुछ हद तक यह विशेषताएँ नजर आती है कि भाषा विज्ञान भाषा में बिखरी हुई सामग्री को एकत्र करके उसका विश्लेषण करता है और उनमें सूत्रता स्थापित करता है, जैसे- कोई ध्वनि विशिष्ट दिशा में क्यों परिवर्तित होती है? इसकी खोज और कार्य- कारण संबंध के आधार पर भाषा विज्ञान ध्वनि- परिवर्तन की व्यवस्था को स्पष्ट करता है। भाषा विज्ञान में प्रयोग भी किए जाते है। इन बातों से भाषा को 'विज्ञान' मानते हैं। लेकिन यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि विज्ञान में कुछ और भी बातें होती हैं। सबसे महत्वपूर्ण उसमें विकल्प के लिए कोई स्थान नहीं। उसके नियम सार्वकालिक और सार्वत्रिक होते हैं। यह नियम भाषा विज्ञान में नहीं दिखाई देते कारण भाषा में विकल्प होते हैं और उसके नियम एक नहीं होते।

इससे भाषा विज्ञान को कला की भाँति माना जाता है परंतु कला सौदर्यानुभूति की विशिष्ट अभिव्यक्ति है, कला अभिव्यक्ति कुशल है, कला में वस्तु के प्रति देखने की दृष्टि आशयात्मक होती है परंतु भाषा विज्ञान कला न होकर विज्ञान निकट जान पडता है। कारण कला का उद्देश्य मनोरंजन है, तो भाषा विज्ञान का उद्देश्य ज्ञान की वृद्धी है। कला व्यक्ति परत्वे बदलती है, परंतु भाषा विज्ञान होने के कारण उसके तत्व प्राय: परिवर्तित नहीं होते ।

इससे कह सकते हैं भाषा विज्ञान का स्वरूप शुद्ध विज्ञान की तरह नहीं है, परंतु वह कला नहीं है, तो समाज विज्ञान की तरह वह भी विज्ञान है, जिसमें कुछ- कुछ अपवाद मिलते हैं।

1.3.2.3 भाषा विज्ञान की परिभाषाएँ :-

भाषा विज्ञान की परिभाषाएँ देखने से पूर्व उसका सामन्य अर्थ देखेंगे।

अ) भाषा विज्ञान का सामान्य अर्थ :-

'भाषा विज्ञान' शब्द 'भाषा' और 'विज्ञान' इन दो शब्दों से बना हैं। इसमें 'भाषा' वह साधन है, जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा विचारों और भावों को व्यक्त करते हैं। 'विज्ञान' का अर्थ होता है 'विशिष्ट ज्ञान'। किसी विषय के ज्ञान और विज्ञान में बडा भारी भेद हैं। कारण किसी वस्तु के साधारण जानकारी को 'ज्ञान' कहते हैं और उसकी पूरी जानकारी हासिल करना 'विशेष ज्ञान' कहलाता हैं। अत: भाषा विज्ञान का अर्थ है 'भाषा संबंधी' या 'भाषा विषयक' विशेष ज्ञान है। अर्थात भाषा के सभी अंगों का व्यवस्थित अध्ययन विश्लेषण करके तत्संबंधी नियमों का प्रतिपादन करना ही भाषा का विशिष्ट अध्ययन या भाषा विज्ञान है।

आ) भाषा विज्ञान की परिभाषाएँ :-

भाषा विज्ञान एक यौगिक शब्द है। भाषा और विज्ञान के योग से इसकी संरचना हुई है। भाषा का शाब्दिक अर्थ बोलना है और विज्ञान का अर्थ वस्तुनिष्ठ विश्लेषण विवेचन है। अतः भाषा विज्ञान का अर्थ स्त्रोत और उच्चारित सार्थक वाक् का वस्तुनिष्ठ विश्लेषण और अध्ययन है। प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने भाषा विज्ञान के कार्य एवं क्षेत्र की व्यापकता का बड़ी गहराई के साथ अध्ययन किया है और तत्सबंधी सिद्धांतों का निरूपण किया है। भारत में भाषा विज्ञान के अध्ययन विश्लेषण की प्राचीन परंपरा प्रमाणित होने पर भी उसे वर्तमान रूप और संदर्भ देने का श्रेय पाश्चात्य विद्वानों को ही है। अत: सबसे पहले पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भाषा विज्ञान की जो परिभाषाएँ दी गयी है उसे देखेंगे।

क) पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी भाषा विज्ञान की परिभाषाएँ :–

1) इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका :–

भाषा विज्ञान की परिभाषा देते हुए इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका में कहा गया है कि भाषा विज्ञान का अर्थ भाषा का विज्ञान है– भाषा की संरचना और उसके विकास का विश्लेषण विवेचन उसका कार्य है– The word philology is here taken as a meaning of the science language that is the study of the structure and development of language's, thus corresponding to linguistics but differing from philology as it is generally understood.

2) मेरीओ पेई :–

''भाषा विज्ञान को सपाट ढंग से परिभाषित करते हुए कहा है कि भाषा विज्ञान भाषा और भाषाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।''

3) रॉबिंस :–

''सामान्य भाषा विज्ञान का संबंध मनुष्यों की भाषाओं से हैं। भाषाएँ मनुष्य की सहज शक्तियों और व्यवहार की सर्व स्वीकृत एक सर्वाधिक प्रभावित उपलब्धियाँ हैं।''

4) जोन लियोन्स :–

''भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को भाषाविज्ञान कहा जा सकता है।... भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन का अभिप्राय है– नियंत्रित और तत्त्वतः परिक्ष्य निष्कर्षों के माध्यम से भाषा का अन्वेषण परीक्षण।''

5) **हॉकेट :–**

''भाषा के बारे में उपलब्ध व्यवस्थित ज्ञान को भाषा विज्ञान कहते हैं।''

6) हाल :–

''भाषा विज्ञान भाषा के प्रकृति और क्रियाशीलता को समझने वाला विज्ञान है।''

7) फिशमैन :–

''भाषा विज्ञान को सामाजिक व्यवहार को समझने के लिए साधन रूप में स्वीकार किया है।''

8) व्हिटनी :–

''भाषा अपनी संपूर्णता में भाषा विज्ञान का अध्ययन का विषय है इसमें मानवीय वर्णों के सभी संभव रूप आ जाते हैं, चाहे वह मनुष्य के मस्तिष्क या मुख में जीवित हो या दस्तावेजों में सुरक्षित अथवा ताम्रालेखों या शिलालेखों में सुरक्षित हो।''

9) ब्लूम फील्ड :–

''भाषाविज्ञान वह विज्ञान है, जो भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन सामान्य एवं विशेष रूप से करता है।'' (Languistic is a science which concerns with the scientific study of language in general as well as in partidular.)

10) डॉ. गुणे :–

''भाषाविज्ञान भाषाओं का विशिष्ट एवं साहित्यिक दृष्टि से अध्ययन है इसमें विश्व साहित्य का अध्ययन कर विभिन्न वर्गों के भाषाओं की वर्गीय समानता तथा असमानता का अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।'' (Comparative philology strictly means the study of a language from the literary point of view.)

ख) भारतीय विद्वानों द्वारा दी भाषा विज्ञान की परिभाषाएँ :–

१) डॉ. श्यामसुंदर दास:–

''भाषा विज्ञान उस शास्त्र को कहते हैं जिसमें भाषा मात्र के भिन्न-भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाता है।''... सारांश यह है कि भाषा विज्ञान की सहायता से हम किसी भी भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन, अध्ययन और अनुसरण करना सीखते हैं।

2) डॉ बाबूराम सक्सेना:–

''भाषा तत्वों का अध्ययन भाषा विज्ञान का विषय है।''

3) डॉ. मंगलदेव शास्त्री:–

''भाषा विज्ञान उस विज्ञान को कहते हैं, जिसमें सामान्य रूप से मानवीय भाषा का, किसी विशेष भाषा की रचना और इतिहास का, और अंततः भाषाओं, प्रादेशिक भाषाओं या बोलियों के वर्गों की पारस्परिक समानताओं और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

4) डॉ. उदयनारायण तिवारी :–

''भाषा विज्ञान को परिभाषित करते हुए कहते हैं, भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषा अथवा भाषाओं का एककालिक, बहुकालिक, तुलनात्मक अथवा अनु प्रायोगिक अध्ययन, विश्लेषण तथा तद् विषयक सिद्धांतों का निर्धारण किया जाता है।''

5) डॉ. मनमोहन गौतम :–

''भाषा विज्ञान वह शास्त्र है जिसमें ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भाषा की उत्पत्ति, बनावट, प्रकृति, विकास एवं ह्रास आदि की वैज्ञानिक व्याख्या की जाती है।''

6) डॉ. देवीशंकर द्विवेदी :–

''भाषा विज्ञान को अर्थात् भाषा के विज्ञान को 'भाषिकी'कहते हैं।'' उनके अनुसार भाषिकी में भाषा का वैज्ञानिक विवेचन किया जाता है।

7) डॉ. अंबाप्रसाद सुमन :–

''भाषा विज्ञान वह विज्ञान है जिसमें भाषाओं का सामान्य रूप से या किसी एक भाषा का विशिष्ट रूप से प्रकृति, संरचना, इतिहास, तुलना, प्रयोग आदि की दृष्टि से सिद्धांत निश्चित करते हुए वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है।''

8) राजेंद्र द्विवेदी :–

''ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन के सहारे भाषा के जन्म, गठन, विकास, स्वरूप, अंग, परिवार आदि का विवेचन करनेवाले शास्त्र को भाषा विज्ञान कहते हैं।''

9) डॉ. हरीश :–

''भाषा विज्ञान भाषा मात्र के अध्ययन से संबंध एक गत्यात्मक अध्ययन है। भाषा तत्त्वों के विश्लेषण, संश्लेषण संबंधी देशकाल सापेक्ष व्यवस्थित अध्ययन के फल स्वरुप प्राप्त निष्कर्ष के माध्यम से भाषा मात्र के अनुशीलन एवं सिद्धांत निरूपण संबंधी अध्ययन को भाषा विज्ञान कहते हैं।''

10) डॉ. तिलक सिंह :–

''विज्ञान की वह शाखा जिसमे भाषा (उच्चरित) की उत्पत्ति, उसके गठन, उसके रूप, प्रकार्य, अंग तथा परिवर्तनों का समकालिक, ऐतिहासिक स्तर पर वस्तुनिष्ठ विश्लेषण विवेचन करके, विशिष्टता सामान्य नियम निर्धारित किए जाते हैं उसे भाषा विज्ञान कहते हैं।''

11) भोलानाथ तिवारी:–

''भाषा विज्ञान वह विज्ञान है, जिसमें भाषा विशिष्ट, कई और सामन्य का समकालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक और प्रायोगिक दृष्टि से अध्ययन और तद्– विषयक सिद्धांतों का निर्धारण किया जाता है।''

सर्व समावेशक परिभाषा

भाषा विज्ञान भाषा के उद्भव, संरचना, विकास आदि का वस्तुनिष्ठ, देशकाल सापेक्ष, विश्लेषण – विवेचन है। वास्तव में भाषाविज्ञान भाषा की उत्पत्ति, प्रकृति और क्रियाशीलता का वैज्ञानिक अध्ययन है।

उपरोक्त परिभाषाओं को देखकर भाषा विज्ञान का स्वरूप इस प्रकार समझ में आता है–

1) भाषा विज्ञान में भाषा मात्र का विवेचन होता है।

2) देशकाल तथा परिवेश बदलने से भाषा बदल जाती है। उसका अध्ययन करने वाले शास्त्र के मनन, विश्लेषण की पद्धति और स्थापनाएँ भी परिवर्तन के अधीन है। इस कारण भाषाविज्ञान गत्यात्मक विज्ञान है।

3) भाषा विज्ञान में भाषा का देश काल सापेक्ष अध्ययन होता है।

4) भाषाविज्ञान भाषा तत्व, ध्वनि रूप, वाक्य संरचना, अर्थ आदि का विश्लेषण –संश्लेषण प्रस्तुत करता है।

5) भाषा विज्ञान का अनुशीलन भाषा की प्रकृति, क्रियाशीलता के आधार पर होता है और उसके आधार पर सिद्धांत निरूपण किया जाता है।

1.3.3 भाषा परिवर्तन के कारण

एक ही भाषा के साहित्य, साहित्यिक तथा लौकिक अथवा नागरिक तथा ग्राम्य रूपों में तथा शिक्षित – अशिक्षित मनुष्य अथवा उँच–नीच जातियों के जातियों में बहुत भेद होता है। इन सबका कारण परिवर्तनशीलता है।

भाषा परिवर्तनशीलता से तात्पर्य है –'भाषा– विकास'। लेकिन यहाँ इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि भाषा के विकास का आशय भाषा का अच्छी और अच्छी, या उंची होना नहीं है । बल्कि विकास का अर्थ है केवल आगे बढना या परिवर्तन है। परिवर्तन से भाषा अभिव्यंजना शक्ति, माधुर्य तथा

ओज आदि की दृष्टि से उठ भी सकती है और नीचे भी जा सकती है। हाँ, इतना जरूर कहाँ जा सकता है कि भाषा प्राय: कठिनता से सरलता की ओर जाती है ।

भाषा के विकास या परिवर्तन पर प्राचीन काल से विचार होता रहा है इस दृष्टि से शब्दशास्त्र पर भी विचार करनेवाले प्राचीन आचार्य कांत्यायन, पतंजलि, कैयट, जयादित्य तथा वामन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। यूरोप में इस विषय पर गंभीरता से और व्यवस्थित रूप से विचार करनेवाले प्रथम व्यक्ति डैनिश विद्वान जे. एच. ब्रेड्सडार्फ हैं इनके अतिरिक्त पाल, येस्पर्सन, स्टुर्टवेंट आदि विद्वानों ने भी भाषा विकास के कारणों को मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित किया हैं ।

अ) आंतरिक (या अभ्यंतर)

आ) बाहरी (बाह्य)

अ) आंतरिक (या अभ्यंतर) कारण :–

इन्हें 'भीतरी कारण' भी कहा जाता है इस वर्ग के अंतर्गत भाषा की अपनी स्वाभाविक गति के साथ – साथ, वे कारण सम्मिलित है, जो प्रयोक्ता की शारीरिक या मानसिक योग्यता आदि संबंधी स्थिति से संबंध रखते हैं संक्षेप में, जो कारण भाषा की प्रकृति या स्वरूप से संबंध रखते हैं, उन्हें 'अभ्यंतर कारण' कहा जा सकता है इस वर्ग के अंतर्गत आनेवाले प्रधान कारण कुछ इस प्रकार है–

1) वैयक्तिक विभिन्नता :–

भाषा अर्जित संपत्ति होने के कारण अनुकरण द्वारा सीखी जाती है, परंतु किसी भी दो मनुष्यों की न तो मानसिक गठन तथा श्रवणेंद्रिय ही एक–सी है और न वाग्यन्त्र ही। प्रत्येक व्यक्ति के स्वर अथवा लहजे में एक वैयक्तिक विशेषता होती है। यही कारण है कि कभी–कभी हम बिना मुख देखे हुए भी किसी ज्ञात व्यक्ति को केवल आवाज सुनकर ही उसे पहचान लेते हैं। और कह बैठते हैं कि ''अहां! अमुक व्यक्ति है।'' अतः सब मनुष्य एक प्रकार से समझते तथा सुनते ही हैं और ना बोलते ही है– विशेषतया शिक्षित तथा अशिक्षित के उच्चारण में भी बहुत भिन्नता होती है, अतः वह अनुकरण तथा उच्चारण सदैव पूर्ण रहता है और भाषा में वैयक्तिक विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है। यद्यपि वैयक्तिक विभिन्नताओं का भाषा के सामाजिक संस्था होने के कारण उसकी गति पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, कालयापन होने पर जब कुछ विभिन्नता ने स्पष्ट रूप से समाज द्वारा गृहीत हो जाती है तो भाषा में परिवर्तन हो ही जाता है।

2) मुख– सुख अथवा सुविधा :–

भाषा के विकास या परिवर्तन करनेवाला सबसे महत्वपूर्ण कारण है इसे 'प्रयत्न लाघव' भी कहते हैं कारण भाषा के व्यवहार में प्रत्येक व्यक्ति सुविधा अथवा आराम चाहता है। अल्प समय तथा प्रयत्न में अपने मनोभावों तथा विचारों को दूसरों पर प्रकट करने की चेष्टा करता है। अतः अपने शब्दों तथा वाक्यों को सरल तथा संक्षिप्त बनाने और संक्रामक ध्वनियों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है। जब किसी क्लिष्टता – विशेष को सामूहिक रूप से सरल करने का प्रयत्न किया जाता है, तो भाषा प्रभावित हो जाती हैं। सावर्ण्य–असावर्ण्य, मात्रा– भेद, आगम, लोप आदि ध्वनि विकार इसी प्रकार के होते हैं। अतएवं अनेक शब्दों में उनकी उपयोगिता के अनुसार निरंतर काट–छांट अथवा घटाव–बढा होता रहता है। परिमाणस्वरूप भाषा में परिवर्तन होता है।

जैसे – कृष्ण का कन्हैया, कान्हा का किशन, भक्त का भगत, धर्म का धरम अंग्रेजी में "Know' का उच्चारण 'नो', "Knife' का उच्चारण इसी दृष्टि से किया जाता है।

3) अधिक प्रयोग :–

भाषा परिवर्तन का यह कारण भाषा में स्वाभाविक विकास ला देता है अधिक प्रयोग के कारण धीरे–धीरे अन्य सभी चीजों की भाँति भाषा में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन होता है। संस्कृत की कारकीय विभक्तियां इसी प्रकार धीरे–धीरे घिसते– घिसते समाप्त हो गई, जिसके फलस्वरूप हिंदी भाषा में परसर्गों की आवश्यकता पडी। 'राम' के स्थान पर 'राम ने', या 'रामस्य' के स्थान पर 'राम का' जैसे नए रूप इसी के परिमाण हैं ।

4) बलाघात :–

भाषा के परिवर्तन का 'बलाघात' भी एक मुख्य कारण है। 'बलाघात' से तात्पर्य है, किसी व्यंजन, शब्द या शब्दांश पर बोलते समय अधिक बल देना। इसीप्रकार स्वर पर बल देने से स्वराघात होता है। इस स्वराघात और बलाघात से प्राय: स्वर या व्यंजन का पूर्ण वर्ण ही गायब हो जाता है। यह परिवर्तन ध्वनि और अर्थ दोनों में देखा जा सकता है। जैसे – निंब का 'नीम', बिल्व का 'बेल', अभ्यंतर का 'भीतर' आदि भाषा परिवर्तन का यह कारण अन्य सभी भाषाओं में मिलता है जैसे अंग्रेजी भाषा का शब्द "History' ले सकते हैं इस शब्द में "S' वर्ण पर बलाघात होने से "t' के बाद आनेवाला स्वर "o' निर्बल हो गया, फलस्वरूप इस शब्द का उच्चारण 'हिस्टोरी' न होकर 'हिस्ट्री' हो गया। जबकि "Historian' शब्द में "o' स्वर का उच्चारण स्पष्ट है ।

ध्वनि के भाँति अर्थ में भी वह बलाघात कार्य करता है। 'जुगुप्सा' शब्द का अर्थ परिवर्तन इसका अच्छा उदाहरण है। यह शब्द 'गुप्' धातु से बना है, जिसका आरंभ का अर्थ था 'रक्षा करना' या 'पालन करना'। रक्षा या पालन छिपाकर भी किया जाता है। अत: इसमें छिपाने का भाव आने लगा और कुछ दिनों में यही भाव प्रधान हो गया। अधिकतर वही वस्तु या क्रिया छिपाई जाती है, जो घृणित होती है। अतएवं घृणा के लिए इसका प्रयोग चल पडा। आज भी 'जुगुप्सा' का प्रयोग घृणा के लिए होता है। हिंदी का 'गोस्वामी' शब्द ऐसा ही है इस प्रकार 'राम ने श्याम को डंडे से मारा' यह सामान्य वाक्य है। परंतु यहाँ 'राम' पर बल देने का अर्थ होगा कि 'राम ने मारा, अन्य किसी ने नहीं' 'श्याम को' शब्द पर बल देने का अर्थ होगा कि 'श्याम को मारा', अन्य किसी को नहीं। 'डंडे' पर बल देने का अर्थ होगा कि 'डंडे से मारा, किसी और चीज से नहीं।' इसी प्रकार 'मारा' शब्द पर बल देने से अर्थ बदल जायेगा ।

5) अनुकरण की अपूर्णता:–

भाषा की विशेषताओं के अंतर्गत हम देख चुके है कि भाषा अर्जित संपत्ति है और मनुष्य उसका अर्जन अनुकरण द्वारा समाज से करता हैं। लेकिन यह अनुकरण हर समय पूर्ण ही होता है ऐसा नहीं। कभी– कभी अनुकरणकर्ता अनुकरण करते समय या तो कुछ भाषिक तथ्यों को छोड देता है, या फिर कुछ को अपनी ओर से अनजाने में जोड देता है। शारीरिक विभिन्नता, ध्यान की कमी तथा अशिक्षा एवं अज्ञान के कारण अपूर्ण रह जाता है। जैसे– श का स (देश का देस), ण का न (कर्ण से कान या गुण से गुन), क्ष का छ (क्षत्रीय से छत्री) आदि। कुछ विदेशी शब्द भी अज्ञान और अशिक्षा के कारण क्या से क्या हो गए; जैसे लाइब्रेरी का 'रायबरेली', रिपोर्ट का 'रपट', लार्डसाहब का 'लाटसाहब', टाइम का 'टेम' आदि। अनुकरण की अपूर्णता क्रमश: एक पीढी से दूसरी पीढी में बढती हैं इस प्रकार की पीढियों के बाद भाषा में परिवर्तन

दिखाई देने लगता हैं। जब हम पिछले आठ-दस पीढियों के भाषा की तुलना करते हैं, तो दोनों के अंतर का पता स्पष्ट दिखाई देता हैं।

6) मानसिक योग्यता

जिस प्रकार मनुष्यों के विभिन्न सामाजिक स्तर होते हैं, उसी प्रकार उनके विभिन्न मानसिक स्तर भी होते हैं। मनुष्यों के इस मानसिक स्तर की भिन्नता का प्रभाव उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों पर भी होता है। बोलनेवालों के मानसिक स्तर में परिवर्तन होने से विचारों में परिवर्तन होता है, विचारों में परिवर्तन होने से अभिव्यंजना के ढंग में परिवर्तन होता हैं और इसका प्रभाव भाषा पर भी पडता है। भाषा का यह परिवर्तन विशेष रूप से शब्दों के अर्थ में देखने को मिलता है, पर कभी-कभी ध्वनि पर भी इसका असर देखा गया है। 'टकर' नामक भाषा विज्ञानिकों ने शब्दों के संबंध में यह ठीक कहा है कि ''शब्द एक प्रकार का सिक्का है जिसका मूल्य निश्चित नहीं है, सुननेवालों की मानसिकता योग्यता के अनुसार अर्थ घटता- बढता रहता है।'' जैसे - 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ एक दार्शनिक के लिए तथा एक सामान्य मनुष्य के लिए अलग- अलग हो सकता है।

7) जानबूझकर परिवर्तन :-

कभी-कभी भाषा के प्रयोग कर्ता भाषा में जानबूझकर भी परिवर्तन कर देते हैं। यह प्रवृत्ति विशेष रूप से उस भाषा के लेखक आदि वर्ग में पाई जाती है। कभी वे शब्दों को नया प्रयोग करके उसे एक विलक्षण रूप देना चाहते हैं। और कभी ज्ञान- प्रदर्शन की लालसा से भी शब्दों में परिवर्तन कर देते हैं। वस्तुत: यह परिवर्तन भाषा का स्वाभाविक परिवर्तन नहीं कहा जा सकता। हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार जयशंकर प्रसाद ने 'अलेक्जैन्डर' का 'अलक्षेंद्र' कर दिया है। कभी-कभी उपयुक्त शब्द न मिलने पर लोग जान- बूझकर किसी मिलते- जुलते शब्द का नए अर्थ में प्रयोग कर देते हैं। जैसे- 'ट्रेजेडी' से 'त्रासदी' और 'कमेडी' से 'कामदी' आदि रुपों में भी नए-नए प्रयोग होते दिखाई देते हैं। जैसे- स्वीकारना, नकारना, बतियाना आदि क्रिया रूप इसी प्रवृत्ति के परिणाम हैं। अभिव्यक्ति में चमत्कार या नवीनता आदि लाने के लिए कलाकारों द्वारा निरंकुश प्रयोग भी भाषा में इस प्रकार के परिवर्तन को ला देता है।

8) भाववेश और भावातिरेक : -

मनुष्य विचारशील होने के साथ-साथ भावुक भी है। यही कारण है। कि विशेष परिस्थिति में वह भाववेश में आ जाता है। भाववेश या भावातिरेक की यह स्थिति उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा पर भी प्रभाव डालती है। और भाषा में परिवर्तन लाती है। प्रेम, क्रोध, शोक, घृणा, दु:ख आदि भावों के अतिरेक (अधिकता) से शब्दों का रूप बदल जाता है। जैसे, बाबू का 'बबुआ', बच्चा का 'बचवा', बेटी का 'बिटिया' या 'बिट्टो' कृष्ण का 'किसनवा', देवर का 'देवरवा', ज्ञानेंद्र का 'ज्ञानू' आदि रुपांतर भाववेश और भावातिरेक के कारण ही होते हैं।

9) जातीय मनोवृत्ति :-

हर जाती की अपनी मनोवृत्ति होती है और भाषा उसके अनुसार परिवर्तित होती है। इसी कारण एक ही भाषा दो या अधिक जातियों में प्रचलित होकर दो या अधिक प्रकार से विकसित या परिवर्तित होती है। जिन जातियों में कोमलता और स्निग्धता होती है, उनकी भाषा मधुर होती है और जिन जातियों में दृढता तथा सबलता होती है, उनकी भाषा कठोर होती है। जैसे, जर्मन जाति की कठोरता और सबलता का प्रमाण उनकी भाषा में प्रतिबिंबित होता है, तो फ्रान्सीसियों की कोमलता और कलाप्रियता का प्रमाण फ्रान्सीसी भाषा में दिखाई देता है।

9) **असावाधानी:–**

मनुष्य के स्वभाव में असावाधानी पायी जाती है। इस असावाधानी के कारण भी कभी–कभी भाषा में परिवर्तन हो जाता है। जैसे– मतलब का 'मतबल', आमरूद का अरमूद, लखनऊ का नखलऊ, शाप का श्राप, चाकू का काचू, बंदूक का दंबूक, पुलिस का पुसिल, शस्त्र का शत्रु इच्छा का इक्षा आदि प्रयोग – प्रवाह में आजाने के कारण धीर–धीरे यही विकृत शब्द भाषा में स्थान पाने लगते हैं।

10) सादृश्य:–

जब मनुष्य किसी शब्द प्रयोग को देखकर उसे मूल आधार का पता लगाए बिना उसी के समान कोई दूसरा शब्द गढ लेता है, तब वह सादृश्य के अंतर्गत आता है। यह सादृश्य प्रयोक्ता के अज्ञान का परिणाम होता है। अत: कुछ भाषा वैज्ञानिक इसे 'मिथ्या सादृश्य' भी कहते हैं। कुछ लोग सृष्टि के सादृश्य पर 'स्त्रष्टा' के स्थान पर 'सृष्टा' गढ लेते हैं। इसी प्रकार 'दृष्टा' शब्द का निर्माण भी 'दृष्टि' के सादृश्य पर हुआ है, जब सही शब्द है– 'द्रष्टा' अंग्रेजी में शैल (Shall), विल (Will), में एल(l) रहने से शुड (Should), वुड (Would) में एल (l) का रहना तो हम समझ सकते हैं, पर कैन (can) कुड (Could) बनाते समय शुड और वुड के सादृश्य पर कुड में भी एल आ गया इसी प्रकार 'पैन्तीस' से सादृश्य पर 'सैन्तिस' में अनुनासिकता आ गई है। संस्कृत में 'द्वादश' सादृश्य पर 'एकदश' भी 'एकादश' हो गया। 'देहात' से 'देहाती'के सादृश्य पर 'शहर' से 'शहराती' हो गया है। 'स्वर्ग' के सादृश्य पर 'नरक' भी 'नर्क' हो गया।

आ) बाहरी या बाह्य कारण :–

1) काल भेद :–

यद्यपि भाषा की धारा परंपरागत तथा अविच्छिन्न है तथापि उसमें स्पष्ट रूप से सदैव काट–छाँट तथा गति परिवर्तन होता रहता है। यदि हम किसी स्थान विशेष की भाषा का कुछ समय तक सुख में निरीक्षण करें, कालांतर में उसके उच्चारित स्वरूप में परिवर्तन होता हुआ प्रतीत होगा। किसी भाषा में व्याकरणिक नियम निर्धारित हो जाने पर भी सर्व साधारण, सर्वसाधारण बालकों और अशिक्षितो द्वारा उनका पालन होना असंभव है। अत: कुछ न–कुछ भाषा विकार होना अनिवार्य है, जो बढ़ते–बढ़ते कुछ समय पश्चात भाषा के रूप में एक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। साहित्यिक भाषा से पृथक लौकिक की भाषा की उत्पत्ति इसी प्रकार की होती है। यदि हम किसी भाषा के प्राचीन, अर्वाचीन तथा नवीन रूपों की तुलना करें, तो कालानुगत, परिवर्तनशीलता का स्पष्ट अनुभव हो जाएगा। उदाहरणार्थ प्राचीन भारतीय आर्य–भाषाएँ वैदिक संस्कृत तथा प्राकृत संहित थी, अर्थात उनमें प्रत्यय तथा विभक्ति शब्दों के साथ संश्लिष्ट रहते थे, मध्यकालीन भाषा अपभ्रंश सहित व्यवस्था में रहने पर भी उच्चारण में बहुत दिन हो गई थी, जैसे– व्यंजनों के क्लिष्ट संयोग सरल संयोग में परिवर्तित हो गए थे, जैसे– जैसे धर्म से धर्म, मृत्यु से मिच्चु, आदि और हिंदी आदि आधुनिक देशी भाषाएँ व्यवहृत होने लगी थी। इसी प्रकार लैटिन, एंग्लो सेक्सन अवेस्ता आदि प्राचीन भाषाओं से इटालियन, अंग्रेजी, फारसी आदि आधुनिक भाषाएँ कई सरल तथा व्यवहृत है। हिंदी, बांग्ला, गुजराती आदि में जितना बेताब है, उतना पहले नहीं था। निरंतर प्रयोग से कालांतर में अनेक शब्दों के अर्थ में भेद हो जाता है। उदाहरणार्थ सत–असत के विद्यमान–अविद्यमान से सच–झूठ, करपट–कपड़े से प्रत्येक प्रकार का वस्त्र, मुर्ग से पशु से केवल हिरन, फिरंगी के पुर्तगाली डाकू से यूरोपियन मात्र हो गए। अतएवं

अर्थोपत्कर्ष, अर्थोत्कर्ष, अर्थसंकोच, अर्थविस्तार आदि अर्थ विकारों द्वारा होने वाले भाषा परिवर्तन का कारण भी कालभेद है।

2) स्थान भेद :–

कभी–कभी हम किसी मनुष्य विशेष की बोली सुनकर कह देते हैं, ''क्या आप अमुक नगर अथवा जिले के निवासी हैं?'' हम पहाड़ी, पंजाबी, बंगाली, मराठी आदि अथवा, मुरादाबादी लखनवी, सीतापुरी, बनारस से बलिया, टिकारी मनुष्य की बोली सुनते ही पहचान लेते हैं कि वह कहाँ के निवासी हैं। यद्यपि भिन्न–भिन्न स्थानों के शिक्षित मनुष्य की भाषा में विशेष अंतर नहीं होता। यद्यपि उनके स्वर में कुछ भेद अवश्य होता है। स्थानीय भाषा भेद असभ्य तथा शिक्षकों की बोली में अधिक और स्पष्ट होता है यदि हम अपने निकटवर्ती दो चार जिलों की सार्वजनिक भाषाओं की परस्पर तुलना करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा इस स्थानानुगत परिवर्तनशीलता का कारण यह है कि प्रत्येक स्थान अथवा देश की प्राकृतिक दशा तथा जलवायु का वहाँ के निवासियों के शरीर गठन और तदनुसार वाग्यंत्र पर एक विशेष प्रभाव पड़ता है जो उच्चारण में स्पष्ट प्रदर्शित होता है, अर्थात प्रत्येक देश के निवासियों के उच्चारण तथा बोली में उनके देश की छाप लग जाती है । अतएवं विभिन्न स्थानों की बोलियों में भेद हो जाता है।

3) विजातीय संपर्क :–

विभिन्न देशों की जातियों का परस्पर संपर्क होता है, तो वह एक दूसरे के नवीन पदार्थ तथा विचार उनकी भाषा सहित ग्रहण करते हैं क्योंकि स्थान भेद के कारण उन दोनों के वाग्यंत्र के गठन में भेद होता है। तब वह एक दूसरे की भाषा का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकती और मूल तथा अनुकरणीय भाषा में भेद हो जाता है। कभी–कभी एक जाति दूसरी जाति की दृश्य के अनुसार अपनी भाषा में नामकरण करती है, जिससे उसके उच्चारण रूप तथा अर्थ में भेद हो जाता है। जैसे – फारसी इंतकाल से हिंदी अंतकाल अरबी स्पंज से अंग्रेजी "sponge आदि। ध्वनि विकार तथा उपचार और लक्षण से होने वाले अर्थ विकार इसीप्रकार के होते हैं। अतः जिस जाति के वक्ता, विदेशियों अथवा विद्यार्थियों के अधिक संपर्क में आते हैं, उसमें भाषा विकार अधिक होता है। वास्तव में बात यह है कि जब व्यापारी राजनीतिक, धार्मिक आदि कारणों से विजातीय संपर्क अधिक होता है तब एक दूसरे की भाषा की जानकारी प्राप्त किए बिना काम नहीं चलता। भाषा का नवीन वक्ता प्रारंभ में केवल प्रकृत्यांश का प्रयोग करता है और प्रत्यय तथा विभक्ति की उपेक्षा कर देता है। प्रभावशाली जाति के विकृत तथा अशुद्ध प्रयोग भी चालू हो जाते हैं और भाषा के रूप में उनका परिवर्तन हो जाता है। एक उदाहरण से इसका स्पष्टीकरण हो जाएगा प्राचीन काल में भारत वर्ष के पश्चिमी किनारे द्रविड़ तथा अरबियों अधिक व्यापार होता। जैसे तमिल में अरिसा, अरबी में उर्ज और अंग्रेजी में राइस हो गया। व्यापार में मारवाड़ी सर्वोन्नत जाती है। उत्तर भारत की व्यापारी लिपि महाजनी हो गई संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत तथा अधिकता, ध्वनि विकारों की अधिकता, आहिर, गुर्जर आदि विदेशी आक्रमणकारियों के कारण है।

4) व्यक्तिगत प्रभाव :–

महान व्यक्तियों का भाषा के विकास पर प्रभाव पडता हैं। कभी–कभी ऐसे युग पुरुष उत्पन्न होते है, जो अपने व्यक्तित्व से भाषा की गतिविधि को बहुत दूर तक प्रभावित कर देते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने उत्तरी भारत की भाषा, समाज एवं धर्म सभी भाषी को यथेष्ट प्रभावित किया था। परिणामस्वरूप उनके कविता की शैली भी उनसे प्रभावित हुई थी। इसी प्रकार गांधी जी के कारण हिंदी की हिंदी– उर्दू मिश्रित हिंदुस्थानी शैली को काफी बल मिला था। मराठी में लोकमान्य तिलक का व्यक्तित्व भी ऐसा ही था। जर्मनी में मार्टिन लूथर

ने जर्मन भाषा को एकबारगी कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। इस तरह भाषा के विकास में महिमाशाली व्यक्तियों का प्रभाव अनुपेक्षणीय हो जाता है।

5) सामाजिक प्रभाव :–

मनुष्य सामाजिक प्राणी है और उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा एक सामाजिक संपत्ति है। जहाँ मनुष्य का समाज से घनिष्ट संबंध है, वहीं उसकी भाषा भी समाज से अभिन्न रूप से जुडी हुई है। जब किसी समाज के अंतर्गत दूसरे समाज के लोग आकर रहने लगते है, तब वे अपनी बोली तथा भाषा से धीरे–धीरे उस समाज की बोली एवं भाषा को प्रभावित करते हैं। अरबी, फारसी, अंग्रेजी, आदि भाषा भाषियों का जब हिंदी भाषी समाज से संपर्क हुआ, तब उन भाषाओं के बहुत से शब्दों को हिंदी भाषा ने ग्रहण किया। जैसे – अरबी–फारसी के पायजमा, बाजार, दूकान, कागज, कलम, संदूक, किताब, तकिया, रजाई, आदि और अंग्रेजी के कॉलर, टाई, पेन्सिल, डिग्री, मोटर, रेल, स्टेशन, कोट, पेन आदि हजारों शब्द सामाजिक प्रभाव के कारण ही हिंदी भाषा में प्रयुक्त हो रहे हैं।

6) **धार्मिक प्रभाव:–**

व्यक्तिगत और सामाजिक प्रभाव की तरह धर्म भी भाषा पर प्रभाव डालता है, जिसमें भाषा में परिवर्तन होता है। जब एक धर्म के अनुयायी दूसरे धर्म के अनुयायियों के संपर्क में आते हैं, तब उनमें परस्पर एक–दूसरे के धर्मिक विचारों का आदान–प्रदान होता है, साथ ही एक–दूसरे के धार्मिक शब्दों का भी इस प्रकार धार्मिक शब्दों के अपनाने से भी भाषा में परिवर्तन आ जाता है। वैदिक धर्म माननेवाले आर्यों का संपर्क जब युनानियों से हुआ, तो यूनान देश के लोगों ने वैदिक देवताओं के नाम ग्रहण किए। इन नामों का प्रयोग जब यूनानी भाषा में हुआ, तब इन शब्दों में काफी परिवर्तन हुए; जैसे– 'देव' का 'थेओस', 'असुरमेघस' का 'अहुरमज्द' आदि। 'असुर' का 'अहुर', 'सोम' का 'होम', 'सिंधू' का 'हिंदू' आदि भी इसी प्रकार के उदाहरण हैं। हिंदी भाषा भी जब इस्लाम और इसाई धर्म के प्रचारकों के संपर्क में आई, तब अरबी, फारसी, पुर्तगाली, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं के धार्मिक शब्दों को उसने ग्रहण किया; जैसे– 'अल्लाह', 'मस्जिद', 'गिरजा' आदि इस प्रकार धार्मिक प्रभाव से भी परिवर्तन हुआ करता है ।

7) राजनीतिक प्रभाव:–

भाषा को राजनीति भी अत्यधिक प्रभावित करती है। प्राय: दुनिया के इतिहास में यह देखा गया है कि जब आक्रमणकारी किसी स्थान विशेष पर आक्रमण करते हैं, तो उस स्थान–विशेष की सामाजिक स्थिति को प्रभावित करने के साथ–साथ उस स्थान की भाषा को भी प्रभावित करते हैं। आक्रमणकारियों की भाषा से उस स्थान की भाषा प्रभावित होकर परिवर्तित होती है। लेकिन शब्दों का यह आदान–प्रदान एकांगी नहीं होता; दोनों भाषाएँ एक–दूसरे से प्रभावित होती हैं। जैसे– भारत में संस्कृत भाषा के प्रचार–प्रसार के समय जब हूण आदि जातियों का भारत में आगमन हुआ और यहाँ की राजसत्ता इनके हाथों में आई, तब संस्कृत के शब्दों में परिवर्तन होने लगा; जैसे– 'धर्म' का 'धम्म', 'कर्म' का 'कम्म', 'हस्ति' का 'हस्थि' आदि। इसी प्रकार आगे जब मुसलमान आक्रमणकारियों के हाथों में राजसत्ता आई, तब उनके कारण भी हिंदी भाषा में परिवर्तन हुआ और तुर्की, अरबी, फारसी, आदि भाषाओं के ढेर सारे शब्दों को हिंदी भाषा ने ग्रहण किया जैसे कैंची, कुली, गलीचा, चाकू, तोप, दारोगा, बहादुर, सौगात आदि। तुर्की के शब्द जैसे– हवा, हुनर, अजब, किताब, ताबीज, आदि। अरबी शब्द जैसे– इनाम, ईमान, कदम, फुरसत, मैदान आदि फारसी के अनेक शब्द हिंदी में राजनीतिक प्रभाव से आए हैं। इसप्रकार बाद में अंग्रेजी लोगों के संपर्क से ऑफीस, पेन, स्कूल, कॉलेज, स्प्रिंग आदि।

8) सांस्कृतिक प्रभाव :–

'संस्कृति' समाज का प्राण है, अत: उसका भी प्रभाव भाषा पर पडता है और उसके कारण भाषा में परिवर्तन होता है। जब–जब समाज में सांस्कृतिक आंदोलन होते हैं, भाषा स्वत: विकास के पथ पर आगे बढती है। भारत में जैन मत, बौद्ध मत, आर्य समाज आदि के अविर्भाव के साथ–साथ भाषा क्षेत्र में भी आंदोलन हुए हैं। भारत में स्वदेशी भाषा का आग्रह स्वाधीनता –संग्राम से प्रेरित सांस्कृतिक जागरण अन्यतम परिमाण है। स्वदेशी आंदोलन ने प्रत्येक स्वदेशी वस्तु के प्रति लोगों के मन में प्रेम भाव जगाया। इस सांस्कृतिक जागरण के कारण भाषा के स्वरूप में बडा क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। हिंदी का शब्द भंडार संस्कृत बहुल हो गया। स्वाधीनता संग्राम कें फल स्वरूप 'सत्याग्रह', 'असहयोग–आंदोलन', आदि शब्द भाषा में प्रयुक्त होने लगे। व्यापार, राजनीति तथा धर्म–प्रचार आदि के कारण भी कभी–कभी दो विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिलन होता है, जिसका भाषा के विकास या परिवर्तन पर प्रभाव पडता है। हिंदी में अरबी, फारसी, अंग्रेजी भाषा के शब्दों की बहुलता का यह भी एक प्रमुख करण हैं।

9) **भौगोलिक प्रभाव :–**

भाषा के परिवर्तन में भौगोलिक प्रभाव भी महत्वपूर्ण माना जाता है। जलवायु का प्रभाव मनुष्य के शारीरिक गठन पर ही नहीं, उसके चरित्र और ध्वनि – पद्धति पर भी पडता है। प्रत्येक भाषा की अपनी एक विशिष्ठ भौगोलिक स्थिति होती है। किसी स्थान की जलवायु उष्ण होती है, किसी स्थान की शीतल, तो किसी स्थान की शीतोष्ण। जलवायु इस विभिन्नता का प्रभाव उस स्थान के लोगों की भाषाओं पर भी पडता हैं जिस प्रदेश की जलवायु उष्ण होती है, वहाँ के लोगों का वाग्यंत्र अधिक खुला होता है। अत: उनके द्वारा उच्चारित ध्वनियाँ स्पष्ट एवं मुखर होती है। इसके विपरीत जिन प्रदेशों की जलवायु शीतप्रधान होती है, वहाँ के निवासियों का वाग्यंत्र अधिक खुल नहीं पाता, इसीकारण उनके उच्चारण में अधिक स्पष्टता नहीं होती। जैसे– इंग्लैंड आदि प्रदेशों में शीतप्रधान जलवायु के कारण लोग उच्चारण ठीक से नहीं कर पाते और 'तोताराम' को 'टोटाराम', 'तुम्हारा' को 'टुमारा' आदि कहते हैं।

10) वैज्ञानिक प्रभाव :–

वर्तमान युग विज्ञान का युग है। विज्ञान ने मानव जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। विज्ञान के प्रभाव से भाषा में भी परिवर्तन हुए हैं। अत: भाषा संबंधी परिवर्तन के कारणों पर विचार करते समय विज्ञान की उपेक्षा करना उचित नहीं होगा। विज्ञान की विभिन्न शाखाओं ने पिछली दो शताब्दियों में अकल्पनीय प्रगति की है, जिसके कारण असंख्य नए वस्तुओं का अविष्कार हुआ है। इन नई वस्तुओं के नामकरण की आवश्यकता से हजारों नए शब्द गढने पडे हैं, जिनसे भाषा अधिक समृद्ध हुई है। सामान्य रूप से जितने शब्द शताब्दियों में नहीं बन पाते, उतने वर्षों में बन गए है।

इस प्रकार भाषा परिवर्तन के आंतरिक और बाह्य कारण मिलते हैं, जो भाषा को नया रूप देते हैं। इसलिए भाषा दिनों–दिन विकास की ओर बढती है।

1.3.4 भाषा विज्ञान के अंग :–

भाषा के सभी अंगों का अध्ययन करना भाषा विज्ञान का विषय है। सामान्यत: भाषा के दो पक्ष होते हैं– 1) अनुभूति 2) अभिव्यक्ति। अनुभूति का सीधे अर्थ से संबंध होता है, तो अभिव्यक्ति पक्ष के अंतर्गत ध्वनि, पद, वाक्य आते हैं। इनके आधार पर भाषा विज्ञान के चार प्रमुख अंग निर्धारित किए गए हैं। वह इस प्रकार है–

1) ध्वनि विज्ञान (स्वन विज्ञान)

2) रूप विज्ञान

3) वाक्य विज्ञान

4) अर्थ विज्ञान

इसके अतिरिक्त कुछ गौण अंग भी है, जो भोलानाथ तिवारी ने बताएँ हैं। वे इस प्रकार हैं–

1) शब्द विज्ञान 2) प्रोक्ति विज्ञान

1) ध्वनि विज्ञान (स्वन विज्ञान) :–

'ध्वनि विज्ञान'शब्द का मूल आधार ध्वनि है। इसके अंतर्गत ध्वनियों पर सभी दृष्टियों से सम्यक अध्ययन किया जाता है। ध्वनि भाषा की सबसे लघुत्तम इकाई है। जिसका पुन्हः विभाजन नहीं किया जा सकता। मानव ध्वनि को 'स्वन' भी कहते हैं। ध्वनि समूह से ही भाषा का निर्माण होता है। ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत उन्हीं ध्वनियों का अध्ययन होता है, जिनके सहयोग से भाषा का निर्माण होता है।

ध्वनियों के साथ–साथ इस विभाग के अंतर्गत ध्वनि उच्चारण में सहायक अवयवों की रचना, ध्वनियों का निर्माण, ध्वनियों का वहन और श्रवण, ध्वनियों का वर्गीकरण आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है।

अ) ध्वनि अध्ययन के आधार

ध्वनि अध्ययन के प्रमुख तीन आधार हैं– उच्चारण, प्रसरण या संवहन तथा श्रवण। इसी आधार पर ध्वनि विज्ञान की मुख्यतः तीन शाखाएँ मानी जाती है। वह इसप्रकार – 1) औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान 2) सांवहनिक या प्रासरणिक ध्वनि विज्ञान 3) श्रावणिक ध्वनिविज्ञान। स्पष्ट है कि पहली शाखा का संबंध बोलने, ध्वनि की वाहिनी तरंग, उनके स्वरूप तथा गति से और तीसरी का सुननेवाले से हैं अर्थात दोनों शाखाओं के बीच की स्थिति दूसरी शाखा है।

1) औच्चारणिक ध्वनि विज्ञान :–

उच्चारणमूलक ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत ध्वनि का उच्चारण मूलक अध्ययन होता है। यह ध्वनि का शरीर वैज्ञानिक अध्ययन है। ध्वनियों का उच्चारण वाग्यंत्र से होता है, जिसे उच्चारण अवयव भी कहते हैं। अर्थात ध्वनि उच्चारण में सहायक अवयवों को समग्र रूप से वाग्यंत्र कहते हैं। ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत इस वाग्यंत्र की रचना इसके विभिन्न अंगों के कार्य आदि का अध्ययन किया जाता है। वाग्यंत्र के कई अंग होते हैं जिनसे विभिन्न ध्वनियों का उच्चारण होता है। जैसे – कंठ से 'क' वर्ग की ध्वनियों का उच्चारण होता है। इसके अतिरिक्त इसमें ध्वनि कैसे उत्पन्न होती है? इसका भी अध्ययन किया जाता है।

2) सांवहनिक या प्रासरणिक ध्वनि विज्ञान :–

भौतिकी में इसे केवल ध्वनि विज्ञान ही कहते हैं। संवहन मूलक ध्वनि के अंतर्गत ध्वनि वायु तरंगों पर प्रवाहित कंपन, तान और दोलन का अध्ययन होता है। यह ध्वनि का भौतिक अध्ययन है। अनेक यंत्रों के सहारे ध्वनि लहरों का बहुत गंभीर अध्ययन किया गया है, भाषा विज्ञान में उसकी बहुत अधिक उपयोगिता नहीं है। इन यंत्रों में कायमोग्राफ, स्पेक्ट्रोग्राफ, असिलोग्राफ आदि यंत्र आते हैं।

3) श्रावणिक ध्वनिविज्ञान :–

इसमें हम कैसे सुनते हैं इस बात का अध्ययन किया जाता है, अर्थात् ध्वनियों श्रवण प्रक्रिया का अध्ययन होता है। ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत ध्वनियों में जो विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं, उनके कारणों

और दिशाओं का भी अध्ययन किया जाता है। इन कारणों और दिशाओं के अध्ययन का आधार वैज्ञानिक होता है।

ध्वनि विज्ञान के अंतर्गत ध्वनि संबंधी एक और महत्त्वपूर्ण विषय का अध्ययन होता है, जिसका नाम है 'ध्वनि नियम'। 'ध्वनि नियम' विभिन्न प्रकार के ध्वनि परिवर्तनों को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। इसके अंतर्गत इस बात का अध्ययन होता है कि इन नियमों का संबंध किस भाषा से है? किस काल विशेष से है? और इनका कार्य किन सीमाओं के अंदर रहकर संपादित होता है? उदाहरण के लिए ग्रिम नियम, वर्नर, तालव्य नियम, को लिया जा सकता है। इस तरह ध्वनि विज्ञान का सामकालिक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन होता है।

२) पद विज्ञान :–

इसे 'रूप विज्ञान', 'रूप विचार' या 'पद रचना शास्त्र' भी कहते हैं। 'ध्वनि' भाषा की लघुत्तम इकाई है। ध्वनियों के समूह से शब्द का निर्माण होता है। तथा शब्दों के समूह से वाक्य का, और सार्थक वाक्यों के समुच्चय से भाषा का निर्माण होता है। परंतु शब्द तथा वाक्य के मध्य रचना प्रक्रिया की दृष्टि से एक और सीढी है, जिसका नाम 'पद' है। 'पद' शब्द का सीधा अर्थ है 'पैर'। पैर का काम है चलना। एक प्रकार से हम यह कह सकते है कि जब मूल शब्द वाक्य में चलने लगता है, अर्थात एक निश्चित अर्थ देने लगता है, तब वह पद बन जाता है। इस प्रकार वाक्य केवल शब्दों का समूह मात्र नहीं होता; अपितु उन शब्दों में एक निश्चित अर्थ बोध के लिए, परस्पर संबंध भी स्थापित होना चाहिए। इसके लिए शब्दों में प्रत्यय, विभक्तियाँ आदि जोडते हैं। जब मूल शब्द में प्रत्यय, विभक्ति आदि के योग से विकार उत्पन्न हो जाता है, तब उसे पद कहा जाता है। उदाहरण के लिए 'राम', 'रावण', 'बाण', 'मारा' इन चार शब्दों को ले सकते हैं। इन शब्दों का अपना एक निश्चित अर्थ है जो मूलार्थ है। यदि परिवर्तन किए बिना ही हम इन शब्दों से वाक्य बनाना चाहें, तो असफल रहेंगे इनके पारस्परिक संबध को दर्शाने के लिए इन शब्दों में परिवर्तन कर हम एक पूर्ण वाक्य बना सकते हैं। जैसे– 'राम ने रावण को बाण से मारा' इससे वाक्य में प्रयुक्त शब्दों का पारस्परिक संबंध स्पष्ट होता है। इस वाक्य में राम, रावण, बाण, मारा जैसे शब्द 'अर्थतत्त्व' कहलाते हैं, तथा ने, को, से, जैसे विभक्ति चिन्ह हैं तथा 'आ' प्रत्यय 'संबंधतत्व कहलाते हैं।

इसप्रकार अर्थतत्व और संबंधतत्व के योग से बना शब्द 'पद' कहलाता है। भाषा विज्ञान की इस इकाई के अंतर्गत भाषा वैयाकरणिक रुपों के विकास, कारण तथा धातु, उपसर्ग, प्रत्यय, विभक्ति आदि का अध्ययन किया जाता है। लिंग, वचन, काल आदि से संबंधित परिवर्तनों का अध्ययन भी इसी के अंतर्गत होता है। रूप निर्माण प्रक्रिया भी इसके अंतर्गत आती है। रूप– परिवर्तनमूलक तथा व्युत्पत्तिमूलक परिवर्तनों का अध्ययन भी इसी कें अंतर्गत होता है। यह अध्ययन समकालिक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक तीनों ही प्रकार का होता है ।

3) वाक्य विज्ञान :–

भाषा की लघुत्तम इकाई वाक्य होती है। भाषा का कार्य विचार– विनिमय वाक्य के माध्यम से ही होता हैं। अत: भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग वाक्य होता है। इसे 'वाक्य विज्ञान' या 'वाक्य विचार' भी कहा जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वाक्य विज्ञान में वाक्यों का ही विभिन्न दृष्टिकोनों से अध्ययन किया जाता हैं जिसमें वाक्य की संरचना, उसके आवश्यक उपकरण, वाक्य के भेद, वाक्य परिवर्तन के कारण आदि का मनोवैज्ञानिक और सूक्ष्म अध्ययन होता हैं यह अध्ययन करते समय भाषा में वाक्य प्रयोग की स्थिति और उसके अर्थ पर भी विचार किया जाता है।

वस्तुत: विविध पदों से वाक्य बनता है। वाक्य विज्ञान के अंतर्गत वाक्य के पदविन्यास संबंधी अध्ययन और विवेचन होता है। सार्थक वाक्यों से ही भाषा की रचना होती है- अत: वाक्यों की सार्थकता का अध्ययन भी इसमें किया जाता है। वाक्य के दो महत्त्वपूर्ण भाग होते हैं, उद्देश्य और विधेय। इनके रूप का भी अध्ययन इसमें होता है जैसे- वाक्य में जिसके विषय में कुछ कहा गया हो, उसे 'उद्देश्य' कहते हैं और उद्देश्य के बारे में जो कुछ कहा जाता है, उसे 'विधेय' कहते हैं। 'राम पुस्तक पढता है' इस वाक्य में 'राम' उद्देश्य है, तो 'पुस्तक पढता है' विधेय है। इन दोनों का सम्यक अध्ययन वाक्य विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है, जिससे वाक्य की संरचना और उसके अर्थ विशेष को समझने में मदद होती है।

इस अध्ययन का आधार पूर्ण वैज्ञानिक होने के कारण यह सुस्पष्ट तथा पूर्ण होता है। वाक्य विज्ञान के अंतर्गत वाक्य की रचना, पदों का महत्त्व, पदों का क्रम, पदान्वय, वाक्य भेद, वाक्य की सार्थकता, वाक्य परिवर्तन के कारण तथा दिशाएँ आदि का सम्यक, सूक्ष्म और पूर्ण अध्ययन समकालिक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक रूप में किया जाता है।

4) अर्थ विज्ञान:-

अर्थ विज्ञान में भाषा के अर्थ - पक्ष का वैज्ञानिक अध्ययन- विश्लेषण किया जाता है। अर्थ प्रतीति, अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ एवं कारणों पर भाषा विज्ञान की जिस शाखा में विचार होता है, उसे अर्थ विज्ञान कहा जाता है। इसके अन्य नाम है - 'अर्थ -विचार', 'अर्थ- उद्बोधनशास्त्र'। अर्थ विज्ञान को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। काफी विद्वान इसे भाषा की शाखा मानते हैं, किंतु कुछ विद्वान इसे भाषा- विज्ञान की शाखा नहीं मानते, तो इसे दर्शन शास्त्र की शाखा मानते हैं। लेकिन इसमें किसी भी प्रकार की शंका नहीं होनी चाहिए। अर्थ भाषा की आत्मा है कारण ध्वनि, वाक्य, रूप और शब्द भाषा के शरीर मात्र का कार्य करते हैं। उसकी 'आत्मा' तो 'अर्थ' ही है, जिसके अध्ययन के बिना भाषा का अध्ययन अधूरा-सा रह जायेगा कारण भाषा सार्थक व्यवस्था होने के कारण उसकी प्रयोजनियता अर्थ के द्वारा ही संभव है।

साथ ही वर्णनात्मक अर्थ विज्ञान और संरचनात्मक अर्थ विज्ञान के अस्तित्व में आ जाने से भ्रांत धारणा अब समाप्त होती जा रही है। इससे समाज- मनोविज्ञान के साथ अर्थ और उसके विकास के कारण आदि जुडे हैं। शब्दों के अर्थ और उसके परिवर्तन के कारण, अर्थ और ध्वनि का संबंध, पर्याय, विलोमता आदि का समकालिक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

5) शब्द विज्ञान:-

'शब्द' अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुत्तम स्वतंत्र इकाई है। इसीलिए परंपरा से हटकर डॉ. भोलानाथ तिवारी जी ने इस अंग का विचार किया है। देश- विदेश के अन्य विद्वानों ने रचना के अंतर्गत ही शब्दों पर विचार किया है, किंतु शब्दों का वर्गीकरण, किसी भाषा के शब्द समूह में परिवर्तन के कारण एवं दिशाएँ, शब्द समूह, पारिभाषिक शब्द, कोश विज्ञान और व्युत्पत्तिशास्त्र इस विभाग के अंग हैं। अत: शब्दों के इन अंगों का अध्ययन शब्द विज्ञान में किया जाता है इसके अतिरिक्त व्युत्पत्ति के अध्ययन के समय शब्दों का तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन भी इसमें किया जाता है।

6) प्रोक्ति विज्ञान:-

अंग्रेजी 'डिस्कोर्स' के लिए 'प्रोक्ति' शब्द का प्रयोग हिंदी में १९८० से ही विशेष रूप से चला आया। 'किसी बात को कहने के लिए प्रयुक्त वाक्यों के समुचय को 'प्रोक्ति' कहते हैं, जिसमें एकाधिक वाक्य आपस में सुसंबंध होकर अर्थ और संरचना की दृष्टि से इकाई बन गए हो। प्रोक्ति के अध्ययन के लिए भोलानाथ तिवारी जी ने हिंदी में 'प्रोक्ति विज्ञान' और 'अंग्रेजी में 'डिस्कोर्सालोजी' नाम दिया है। भारतीय

काव्य शास्त्री प्रोक्ति के लिए 'महावाक्य' का प्रयोग प्राचीन काल में करते थे। आधुनिक युग में समाज भाषा विज्ञान के विकास के कारण प्रोक्ति की ओर लोगों का ध्यान अब गया है।

अर्थ और संरचना आदि सभी दृष्टियों से विचार करने पर प्रोक्ति ही भाषा की मूलभूत सहज इकाई ठहरती है, यह तिवारी जी का मत है, क्योंकि समाज में विचार – विनिमय के लिए प्रोक्ति का प्रयोग किया जाता है। प्रोक्ति का विश्लेषण करने पर वाक्य मिलते हैं। यहाँ एक उदाहरण देख सकते हैं।

जैसे– ''प्रथम अवसर मिलते ही तेजा अपने साथियों को लेकर गाँव में पहुँच गया। उधर भी लोगों को उनके आने की सूचना पहले से ही मिल चुकी थी। वे सभी तेजा के आने की प्रतीक्षा में थे। तेजा ने मंडी में आते ही 'सिंह गर्जना' सुना दी यह एक प्रोक्ति है, जिसमें प्रत्येक वाक्य आपस में सुसंबंधित हैं। अत: प्रोक्ति विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें प्रोक्ति का अध्ययन– विश्लेषण किया जाता है। यह अध्ययन भी समकालिक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक रूप में किया जाता है।

1.3.5 भाषाविज्ञान के अध्ययन की दिशाएँ :–

भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाओं को अध्ययन पद्धतियाँ भी कहा जाता है। सामान्य रूप से भाषा विज्ञान की चार अध्ययन पद्धतियाँ स्वीकृत हैं–

1) वर्णनात्मक पद्धति
2) ऐतिहासिक पद्धति
3) तुलनात्मक पद्धति
4) प्रायोगिक पद्धति

1) वर्णनात्मक पद्धति :–

वर्णनात्मक पद्धति को ही विद्वानों ने समकालिक पद्धति कहा है। इस पद्धति के अंतर्गत जीवित भाषा का वैज्ञानिक विवेचन – विश्लेषण किया जाता है। जीवित भाषा से संबंध होने के कारण इस पद्धति का वर्तमान से संबंध होता है। इसलिए इस पद्धति के अंतर्गत देशकाल सापेक्ष विवेचन होता है। भाषा विज्ञान की यह अध्ययन पद्धति स्थित्यात्मक होती है ।

वर्णनात्मक पद्धति पर यह आरोप लगाया जाता है कि इसमें अर्थ का पक्ष निषेध रहता है किंतु यह आपेक्ष ध्वनिगत अध्ययन के खंडीय पक्ष पर ही लागू हो सकता है। लेकिन जैसे ही ध्वनि से आगे बढने पर रूप, वाक्य आदि निश्चित रूप से निर्णायक हो जाता है। वास्तव में देखा जाए तो ध्वनि विकास और रूप विकास का अंतर प्रकट करनेवाला भी अर्थ है अत: यह कहना उचित नहीं है कि वर्णनात्मक अध्ययन अर्थ विरोधी होता है ।

भाषा का सूक्ष्म अध्ययन वर्णनात्मक भाषा विज्ञान ही करता है। इतना ही नहीं, ऐतिहासिक और तुलनात्मक भाषा विज्ञान का आधार भी वर्णनात्मक भाषा– विज्ञान है।

वर्णनात्मक पद्धति का उद्भव भारत, ग्रीस और रोम में हुआ है। इस पद्धति का सर्वोत्तम उदाहरण है– 'पाणिनीय व्याकरण'।

2) ऐतिहासिक पद्धति:–

समकालिक पद्धति की सीमा विस्तृत नहीं होती इसलिए उसे स्थित्यात्मक कहा जाता है। ऐतिहासिक पद्धति में काल विशेष का अध्ययन नहीं होता, इसमें कई कालों का अध्ययन होता है। अत: इसकी सीमाएँ विस्तृत हैं इसलिए इसे गत्यात्मक कहा जाता है। इसमें किसी भाषा के प्राचीन उद्भव एवं विकास की खोज करके उसके क्रमिक विकास के इतिहास को देखते हुए उस भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि किसी भाषा के वर्तमान रूप को प्राप्त करने के कारणों का पता लगाया जाता है। जैसे यदि प्राचीन कालीन एवं वर्तमान हिंदी के मध्य हुए परिवर्तनों का विवेचन- विश्लेषण किया जाए एवं उनके परिवर्तन से संबंधित नियमों का निर्धारण किया जाए-तो इसे ऐतिहासिक-पद्धति की संज्ञा दी जायेगी। यह अध्ययन हमेशा दो समयों के संबंध में किया जाता है इसलिए इस पद्धति को 'द्विकालिक' पद्धति भी कहा जाता है।

3) तुलनात्मक पद्धतिः-

इस पद्धति के अंतर्गत दो या दो से अधिक भाषाओं की तुलना की जाती हैं। इस पद्धति के अंतर्गत समकालिक और ऐतिहासिक पद्धतियों का समन्वय हो जाता है। इस पद्धति के अंतर्गत समकालिक और ऐतिहासिक भाषा सामग्री के आधार पर अनुशीलन किया जाता है। इस पद्धति के द्वारा किसी काल विशेष से संबंध एकाधिक भाषाओं का पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन किया जाता हैं तथा भाषा विशेष के कालक्रमानुगत पूर्व रुपों का भी अध्ययन किया जाता है। उदा. वर्तमानकालिक खडी बोली, ब्रजभाषा, बुंदेली आदि का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है। साथ इन भाषाओं अथवा बोलियों का पूर्व रुपों, प्राकृतों और अपभ्रंशों के साथ इनकी तुलना भी की जाती सकती है। हिंदी, अंग्रेजी, फारसी एवं संस्कृत आदि के स्वरुपों का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं।

इस पद्धति की सहायता से ही भाषाओं के वर्गीकरण और परिवारों की परिकल्पना संभव है। पारिवारिक वर्गीकरण का आधार तुलनात्मक भाषा अध्ययन है वास्तव में आधुनिक भाषा- विज्ञान का जन्म ही तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से हुआ है। इसलिए कुछ वर्ष पूर्व तक भाषा- विज्ञान को 'तुलनात्मक भाषा-विज्ञान' कहा जाता रहा है।

4) **प्रायोगिक पद्धतिः-**

प्रयोगों की अधिकता होने के कारण इस पद्धति को 'प्रायोगिक पद्धति' कहा जाता है। इसका उपयोग भाषा संबंधी किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। इस पद्धति की प्रकृति मूलत: प्रकार्यात्मक होती है। कुछ विद्वान इसे 'व्यावहारिक पद्धति' भी कहते हैं। भाषा संबंधी बातों को व्यवहार में लाना इसका उद्देश्य होता है। देशी-विदेशी भाषाओं का अध्ययन, वैज्ञानिक लिपि का निर्माण, कोश निर्माण, विभिन्न यांत्रिक अनुवादों का परिचय कराना एवं उनका उपयोग सिखाना, उच्चारण एवं श्रवण संबंधी दोषों के निराकरणार्थ, पाठयपुस्तक निर्माणार्थ एवं भाषा - सर्वेक्षण इन सभी कार्यों का व्यावहारिक ज्ञान देना इस पद्धति के अंतर्गत आता है। कतिपय विद्वानों ने इसे व्यावहारिक पद्धति कहकर इसे कोई निश्चित पद्धति नहीं कहा है। लेकिन वैज्ञानिक युग में इसके स्वरुपों को नकारा नहीं जा सकता। भाषा विज्ञान की विविध प्रचलित पद्धतियों की यह एक सहायक पद्धति है।

1.4 सारांश

भाषा का स्वरूप सीमित और व्यापक दोनों रुपों में मिलता है। व्यापक रूप में वह स्पर्शग्राह्य, नेत्रग्राह्य और श्रवणग्राह्य रूप में मिलती है। इनमें से मनुष्य की भाषा का संबंध श्रवण ग्राह्य साधनों से हैं, कारण भाषा का स्वरूप विचार-विनमय के रूप में मिलता हैं।

अत: उच्चारण अवयवों से निकले यादृश्चिक एव सार्थक ध्वनि प्रतीकों के समूह को भाषा कहा जाता है। इसे पाश्चात्य विद्वानों के साथ विभिन्न भारतीय विद्वानों ने भी परिभाषित किया है जिससे भाषा की विभिन्न विशेषताओं पर प्रकाश पडता है और बात महसूस होती है कि भाषा पैतृक संपत्ति नहीं है, तो अर्जित संपत्ति

हैं जिसका अर्जन मनुष्य समाज से करता है। कारण भाषा समाज से उत्पन्न होती है, समाज में ही पलती-बढती है और समाज में ही विकास होता है।

ऐसी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन करनेवाली शाखा को 'भाषा विज्ञान' कहा जाता है। भाषा विज्ञान भाषा के उद्भव, संरचना, विकास आदि का वस्तुनिष्ठ, देशकाल सापेक्ष, विश्लेषण - विवेचन है। वास्तव में भाषाविज्ञान भाषा की उत्पत्ति, प्रकृति और क्रियाशीलता का वैज्ञानिक अध्ययन है।

भाषा के परिवर्तन में जो आंतारिक और बाह्य कारण होते हैं, उसका भी भाषा विज्ञान अध्ययन करता हैं। इसके अतिरिक्त भाषा विज्ञान के अंग और अध्ययन दिशाओं पर भी भाषाविज्ञान विचार करता है। भाषा विज्ञान के मुख्य चार अंग होते हैं- ध्वनिविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान और अर्थविज्ञान। भोलानाथ तिवारी जी ने इसमें शब्दविज्ञान और प्रोक्ति विज्ञान को जोड दिया है।

भाषा विज्ञान के अध्ययन की चार पद्धतियाँ स्वीकृत हैं- 1) वर्णनात्मक पद्धति, 2) ऐतिहासिक पद्धति, 3) तुलनात्मक पद्धति, 4) प्रायोगिक पद्धति इसप्रकार भाषा का सर्वसमावेशक अध्ययन करनेवाली शाखा भाषाविज्ञान है ।

1.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

अ) सही विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) आत्माभिव्यक्ति की इच्छा ने ..... को जन्म दिया है ।

अ) वाक्य आ) ध्वनि इ) भाषा ई) प्रोक्ति

2) अभिव्यक्ति के स्तर पर भाषा के ..... रूप होते हैं।

अ) दो आ) तीन इ) एक ई) चार

3) वैज्ञानिक दृष्टि से भाषा मनुष्य के केवल विचार विनिमय का ही साधन नहीं तो ..... का भी साधन है।

अ) विचार आ) शब्द इ) मन ई) संकेत

4) भाषा शब्द ..... भाष् धातु से बना है।

अ) फेंच आ) फारसी इ) अन्गेजी ई) संस्कृत

5) भाषा का अर्थ होता है .....।

अ) अनुवाद आ) लिखना इ) बोलना ई) सुनना

6) 'जो वाणी वर्णों में व्यक्त होती है, भाषा की यह परिभाषा.....ने की है ।

अ) महर्षि वशिष्ठ आ) महर्षि द्रोण

इ) महर्षि पतंजलि ई) महर्षि वाल्मीकि

7) प्लेटो ने ..... में विचार और भाषा के संबंध में विचार प्रस्तुत किए हैं।

अ) सोफिस्ट आ) दि रिपब्लिक इ) भाषाविज्ञान ई) दि ट्रूथ

8) वर्तमान भाषा का आरंभ १७८६ ई. में..... की संस्कृत, लैटिन तथा प्राकृत के तुलनात्मक अध्ययन से माना जाता है ।

अ) सर मिलियम जॉन्स आ) सर जिलियम जॉन्स

इ) सर विलियम जॉन्स ई) सर चार्ल जॉन्स

9) विज्ञान का अर्थ होता है ..... ।

अ) ज्ञान आ) जान इ) विशिष्ट ज्ञान ई) अज्ञान

10) भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को..... कहा जाता है ।

अ) भाषा विज्ञान आ) वाक्य विज्ञान इ) पद विज्ञान ई) रूप विज्ञान

11) भाषा परिवर्तनशीलता से तात्पर्य है ..... ।

अ) भाषा का ज्ञान आ) भाषा का रूप इ) भाषा का अंग ई) भाषा का विकास

12) आंतरिक या अभ्यंतर कारणों को ..... कारण भी कहा जाता है ।

अ) बाहरी आ) भीतरी इ) अंतर्गत ई) बहिर्गत

13) मुख - सुख को ..... भी कहा जाता है।

अ) बाहरी प्रयास आ) प्रयत्न इ) प्रयत्न लाघव ई) प्रयत्न प्रयास

14) ध्वनि को ..... भी कहते है ।

अ) भाषा आ) पद इ) स्वन ई) वाक्य

15) ..... भाषा की आत्मा होती है ।

अ) अर्थ आ) ध्वनि इ) वाक्य ई) रूप

16) ..... भाषा की सबसे लघुतम इकाई है ।

अ) अर्थ आ) ध्वनि इ) वाक्य ई) रूप

17) ..... भाषा की लघुतम इकाई है ।

अ) अर्थ आ) ध्वनि इ) वाक्य ई) रूप

18) भाषा की धारा स्वभाव तथा कठिनता से ..... की ओर जाती है

अ) व्यापकता आ) कठिनता इ) अंतिमता ई) सरलता

ब) उचित मिलान कीजिए।

'गुट अ'	'गुट ब'
1) प्रायोगिक पद्धति	अ) जीवित भाषाओं का अध्ययन
2) तुलनात्मक पद्धति	आ) काल विशेष का अध्ययन
3) ऐतिहासिक पद्धति	इ) भाषाओं की तुलना
4) वर्णनात्मक पद्धति	ई) व्यावहारिक पद्धति
5) ध्वनि विज्ञान	उ) वाक्य का अध्ययन
6) रूप विज्ञान	ऊ) शब्दों का अध्ययन
7) वाक्य विज्ञान	ए) ध्वनि का अध्ययन
8) अर्थ विज्ञान	ऐ) प्रोक्तियों का अध्ययन
9) शब्द विज्ञान	ओ) रूप का अध्ययन
10) प्रोक्ति विज्ञान	औ) अर्थ का अध्ययन

क) सही और गलत वाक्य लिखिए।

1) भाषा पैतृक संपत्ति होती है ।
2) भाषा अर्जित नहीं होती
3) भाषा अत्यंत सामाजिक वस्तु है ।
4) भाषा परंपरागत होती है ।
5) भाषा का अंतिम स्वरूप होता है
6) भाषा परिवर्तनशील नहीं होती ।

1.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ:–

1) **यादृच्छिक :–** स्वतंत्र माना हुआ
2) **महाभाष्य :–** समीक्षा, आलोचना
3) **उद्बोधन :–** जागने या जगाने की क्रिया का भाव
4) **असुरमेघस :–** अवस्ताई भाषा में प्राचीन ईरानी पंथ के एक देवता का नाम है
5) **प्रयत्न लाघव :–** ऐसी युक्ति जिसमें किसी कार्य में लगनेवाले समय या शक्ति की बचत हो

6) **गत्यात्मक :–** गतिशील

7) **संयोगावस्था :–** संयोग की स्थिति

8) **सांवहनिक :–** वहन करना

9) **आत्माभिव्यक्ति :–** अपने मन के अनुभवों को व्यक्त करना

10) **अभिव्यंजना :–** मन भाव आदि प्रकट करना

1.7 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

अ) सही विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिएँ।

1) भाषा	2) दो	3) विचार	4) संस्कृत
5) बोलना	6) महर्षि पतंजलि	7) सोफिस्ट	8) सर विलियम जॉन्स
9) विशिष्ट ज्ञान	10) भाषा विज्ञान	11) भाषा का विकास	12) भीतरी
13) प्रयत्न लाघव	14) स्वन	15) अर्थ	16) ध्वनि
17) वाक्य	18) सरलता		

ब) उचित मिलान कीजिए।

1) प्रायोगिक पद्धति – ड	2) तुलनात्मक पद्धति – क
3) ऐतिहासिक पद्धति – ब	4) वर्णनात्मक पद्धति – अ
5) ध्वनि विज्ञान – ए	6) रूप विज्ञान – ओ
7) वाक्य विज्ञान –उ	8) अर्थ विज्ञान– औ
9) शब्द विज्ञान– ऊ	10) प्रोक्ति विज्ञान –ऐ

क) सही और गलत वाक्य लिखिए।

1) गलत 2) गलत 3) सही 4) सही 5) सही 6) गलत

1.8 स्वाध्याय

प्रश्न 1) भाषा का स्वरूप और परिभाषाओं का विवेचन कर भाषा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 2) भाषाविज्ञान के स्वरूप और परिभाषाओं का विवेचन कर भाषा के परिवर्तन के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 3) भाषा विज्ञान के अंग बताकर भाषा विज्ञान के अध्ययन की दिशाओं पर प्रकाश डालिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1) भाषा के परिवर्तनों के कारणों पर आधारित परिवर्तित शब्दों की सूची तैयार कीजिए।

2) भारतीय और पाश्चात्य वैज्ञानिकों के नामों की सूची तैयार कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1) तिवारी भोलानाथ (1993) – भाषाविज्ञान – किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद

2) डॉ. पाटील हणमंतराव (2005) – भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा – विद्या प्रकाशन, कानपुर

3) डॉ. शर्मा रामकिशोर (2016) – आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धांत – लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.

4) डॉ. शास्त्री मंगलदेव (1956) – तुलनात्मक भाषाशास्त्र अथवा भाषा विज्ञान – बनारस इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

5) डॉ. पाठक जितराम (1991) – भाषाविज्ञान सिद्धांत और स्वरूप–अनुपम प्रकाशन, पटना

6) सक्सेना बाबूराम (2000) – सामान्य भाषा विज्ञान – हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

❑❑❑

इकाई–2
स्वनिम विज्ञान (ध्वनिग्राम विज्ञान)

अनुक्रम:

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय विवेचन

2.3.1 स्वनिम विज्ञान (ध्वनिग्राम विज्ञान)

2.3.1.1 स्वनिम विज्ञान की परिभाषा

2.3.1.2 स्वनिम विज्ञान का स्वरूप

2.3.1.3 स्वनिम विज्ञान का वर्गीकरण

2.3.1.4 स्वनिम विज्ञान के भेद

2.3.1.5 हिंदी की स्वनिम व्यवस्था

2.4 सारांश

2.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.6 पारिभाषिक शब्द शब्दार्थ

2.7 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश :

प्रस्तुत विभाग पढ़ने के उपरांत आप –

1. स्वनिम विज्ञान की परिभाषा से परिचित होंगे।
2. स्वनिम विज्ञान का स्वरूप समझ सकेंगे।
3. स्वनिम विज्ञान के वर्गीकरण जान सकेंगे।
4. स्वनिम विज्ञान के भेद से अवगत होंगे।
5. हिंदी की स्वनिम व्यवस्था से परिचित होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

स्वन विज्ञान या ध्वनि विज्ञान में हर एक स्वन या ध्वनि का अध्ययन होता है। इस स्वन विज्ञान की ही अगली कड़ी स्वनिम विज्ञान है। इस स्वनिम विज्ञान को ध्वनिग्राम विज्ञान भी कहा जाता है। भाषा विज्ञान में महत्वपूर्ण शाखाओं में स्वनिम विज्ञान को देखा जाता है। स्वनिम विज्ञान में उचित ध्वनिसमूह को लेकर वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। स्वनिम किसी एक ध्वनि या स्वन का वाचक न होकर एक सदृश्य ध्वनि समूह का वाचक है। एक ही भाषा में प्रत्येक स्वनिम एक दूसरे से भिन्न होता है। स्वनिम विज्ञान के अंतर्गत स्वनिम की परिभाषा, उसका स्वरूप और वर्गीकरण, स्वनिम के भेद, हिंदी की स्वनिम व्यवस्था आदि का अध्ययन किया जाता है।

2.3 विषय विवेचन :

2.3.1 स्वनिम विज्ञान – (ध्वनिग्राम विज्ञान) phonemics

स्वनिम विज्ञान को ध्वनिग्राम विज्ञान भी कहा जाता है। अंग्रेजी के अनेक नामों में Phonemics यह शब्द ही स्वनिम विज्ञान के उपयुक्त माना जाता है। सन १८७६ में हैवेट नाम के विद्वान ने भाषा ध्वनि के लिए इसका उपयोग किया था। हिंदी में भी ध्वनि ग्राम के लिए विविध नाम मिलते हैं, जैसे – ध्वनि श्रेणी, ध्वनि मात्रा, ध्वनि तत्त्व, स्वनिम, ध्वनिम, ध्वनि ग्रामिकी आदि है। इनमें से ध्वनिग्राम और स्वनिम नाम ही अधिक उपयुक्त रहे हैं। भारत सरकार के पारिभाषिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग ने 'स्वनिम' हिंदी शब्द यह अंग्रेजी के 'फोनिम' शब्द का रूपांतर किया है।

2.3.1.1 स्वनिम की परिभाषा :

स्वनिम यह भाषा की लघुतम इकाई है, जो उचित समान ध्वनियों का प्रतिनिधित्व करती है। यह अन्य ध्वनियों से भिन्न होती है। इसका संबंध किसी भाषा विशेष से होता है। प्रत्येक भाषा में स्वनिम का अपना अलग निश्चित अस्तित्व होता है। किसी भी भाषा में ६० से अधिक स्वनिम की संख्या नहीं रही है। जिन परिस्थितियों में एक स्वनिम आता है, उन्हीं परिस्थितियों में दूसरा स्वनिम नहीं आता । जैसे – क, ख, ग, घ आदि । प्रत्येक स्वनिम स्वतंत्र एक ही संकेत से संकेतित किया है। स्वनिम को संघटक ध्वनियों का संस्वन या संध्वनि कहा गया है। स्वनिम की परिभाषा पाश्चात्य और भारतीय साहित्य में हुई है।

1) **ब्लूम फील्ड –** ध्वनिग्राम व्यवच्छेदक ध्वनि स्वरूप की लघुतम इकाई है। या स्वनिम सार्थक ध्वनि लक्षण की लघुतम इकाई है।

2) **डेनियल जोन्स –** किसी भाषा में ध्वनि ग्राम संबंधी (गुण में) ध्वनियों का परिवार होता है– जिसका कोई सदस्य किसी शब्द में इस प्रकार आता है कि उसीप्रकार के ध्वन्यात्मक संदर्भ में उसका कोई दूसरा सदस्य नहीं आता।

3) **ग्लीसन –** स्वनिम उन ध्वनियों का समूह है, जो परस्पर ध्वन्यात्मक समानता रखती हैं तथा वह किसी विचाराधीन भाषा में निजी विशेषताएँ रखती हैं।

4) **ट्रेगर –** ध्वनि-ग्राम ध्वन्यात्मक दृष्टि से समान ध्वनियों का समूह है, जो किसी भाषा विशेष के उसी प्रकार के अन्य समस्त समूह से व्यतिरेकी तथा अन्यापवर्जी होता है।

5) **के. एल.पाईक –** स्वनिम किसी भाषा विशेष की ध्वनियों के विश्लेषण करने के उपरांत प्राप्त की हुई सार्थक इकाई है।

6) **बाबूराव सक्सेना –** स्वनिम (ध्वनि-ग्राम) ऐसी मिलती-जुलती ध्वनियों (स्वनों) के समूह को कहते हैं, जो एक दूसरे से शब्दार्थ-भेदकारी वैषम्य प्रदर्शित न करे।

7) **डॉ.सरयू प्रसाद अग्रवाल –** प्रत्येक ध्वनि की लघुतम महत्वपूर्ण इकाई को ध्वनिग्राम (Phoneme) के रूप में माना जा सकता है।

8) **डॉ. उदयनारायण तिवारी** - भाषा के व्यावहारिक रूप प्रदान करने वाली अल्पतम अथवा न्यूनतम इकाई किसी भाषा की ध्वनि न होकर उसकी ध्वनिग्राम ही होती है।

9) **डॉ. अंबाप्रसाद सुमन –** प्राचीन वैयाकरण जिसे वर्ण स्फोट कहते है, उसे आधुनिक भाषातत्वज्ञ 'ध्वनि-ग्राम' नाम से पुकारते हैं।

10) **देवी शंकर द्विवेदी –** मिलती-जुलती ऐसी ध्वनियों या ध्वनि गुनो का भावानयन स्वनिम कहलाता है, जो व्यवहार की दृष्टि से किसी भाषा विशेष में एक ही इकाई बनाये। स्वनिम और ध्वनि ग्राम यह एक ही व्यवस्था है । इसतरह प्रत्येक भाषा में स्वनिम एकदूसरे से भिन्न होते हैं उसीतरह हर भाषा की अपनी स्वनिम व्यवस्था एकदूसरे से भिन्न होती है ।

2.3.1.2 स्वनिम विज्ञान का स्वरूप :

स्वनिम का अर्थ वर्ण या ध्वनि है। जैसे 'क' स्वनिम है। 'ख' स्वनिम है। क और ख, ग और घ भिन्न-भिन्न स्वनिम है। 'क' का अनंत संस्वन होता है, जैसे कमल, कपाट, कलम, कड़क सभी शब्दों के आदि शब्द 'क' है। अतः उच्चारण विभिन्न संस्वन है और एक ही वर्ण से लिखना स्वनिम है। आधुनिक काल में भाषा विज्ञान का विकास जिन दिशाओं में हुआ है, उनमें स्वनिम विज्ञान का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। किसी भी भाषा में स्वनिमों के आधार पर वैज्ञानिक स्तर पर उस भाषा के लिए सुव्यवस्थित लिपि के निर्माण में जो सिद्धांत सहायता देते हैं उनका विश्लेषण या विवेचन स्वनिम विज्ञान के अंतर्गत होता है। स्वनिम अथवा ध्वनिग्राम मिलती-जुलती ध्वनियों का समूह है। भाषा विज्ञान की यह नई शाखा अमरिका में विकसित हुई है। स्वनिम के स्वरूप के संदर्भ में काफी मतभेद रहे हैं। स्वनिम विज्ञान पर अध्ययन करने वाले जादा तर विदेशी विद्वान ही है। पिछली पीढ़ी के ब्लूम फील्ड, डेनियल जोन्स ने स्वनिम को भौतिक इकाई माना है। नई पीढ़ी के एडवर्ड, समीर, कर्तिन, ऐसे कुछ भाषा विद्वान स्वनिम को मनोवैज्ञानिक इकाई मानते हैं। प्रो.

टूवाडेल इस विद्वान ने स्वनिम को अमूर्त तथा काल्पनिक इकाई माना है। तो कुछ विद्वान इसे बीजगणितीय इकाई सिद्ध करते रहे हैं। इन सभी अध्ययनों के पश्चात स्वनिम को अमूर्त काल्पनिक इकाई के रूप में स्वीकार किया है। स्वनिम ध्वनि समूह का द्योतक है अर्थात वह जाती है। जिस तरह से जाति और व्यक्ति में जाति अमूर्त है और व्यक्ति मूर्त है। उसी तरह से स्वनिम जाती होने के कारण अमूर्त है और उसकी संस्वन या संध्वनि मूर्त है। लोक व्यवहार में जाति के स्थान पर व्यक्ति का व्यवहार होता है उसी तरह भाषा में संस्वन का ही व्यवहार होता है, बल्कि स्वनिम का नहीं होता। अतः स्वनिम विज्ञान जीवित बोलियों को लिपिबद्ध करने की व्यवस्थित प्रणाली है साथ ही प्राचीन लिखित भाषाओं को लिपिबद्ध करने में उसका योगदान महत्वपूर्ण है।

2.3.1.3 स्वनिम विज्ञान का वर्गीकरण या भेद :

स्वनिम विज्ञान के मुख्य दो वर्ग है – (खंड और खंडेतर)

अ) खंड स्वनिम (segmental phoneme)

खंड स्वनिम के अंतर्गत दो वर्ग है –

1) स्वर स्वनिम

2) व्यंजन स्वनिम

(विवादास्पद व्यंजन स्वनिम)

ब) खंडेतर स्वनिम (supra segmental phoneme)

खंडेतर स्वनिम के अंतर्गत पाँच वर्ग है।

1) अनुतान (मात्रा)

2) बलाघात

3) सूर और अनुतान (दीर्घता)

4) अनुनासिकता

5) संहिता

2.3.1.4 स्वनिम विज्ञान के भेद :

स्वनिम विज्ञान (ध्वनिग्राम विज्ञान) के मुख्य भेद या प्रकार निम्न है– क) खंड स्वनिम ख) खंडेतर स्वनिम यह दोनों भेद ध्वनियों पर आधारित है।

क) खंड स्वनिम – (खंड ध्वनिग्राम)

खंड स्वनिम वह है जिसे अलग-अलग किया जा सकता है। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है। इसे खंड स्वनिम या खंड ध्वनिग्राम कहा है। खंड स्वनिम के निम्न वर्ग है-

1) **स्वर स्वनिम –**

हिंदी भाषा में दस स्वर स्वनिम है; जैसे अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वनिम है। ऑ यह ग्यारहवा स्वर स्वनिम भी है। हिंदी भाषा में यह स्वर स्वनिम निम्न रूप से है –

अ – मल, तल

आ – माल, ताल

इ – मिल, तिल

ई – वीर, झील

उ – सुर, पुल

ऊ – कूट, फूल

ए – मेल, रेल

ऐ – मैल, गैर

ओ – कोट, मोल

ऑ – तौल, गौर

अर्थात ये आपस में व्यतिरेकी तथा अर्थभेदक हैं।

2) **व्यंजन स्वनिम –**

हिंदी के अधिकांश व्यंजनों के उपयुक्त प्रकार से न्यूनतम युग्म मिल जाते हैं। नीचे निम्नलिखित न्यूनतम युग्म देखे जा सकते हैं-

कड़ा- खड़ा- गड़ा- घड़ा

चला- छला- जला- झला

टाला- ठाला- डाला- ढाला

तान- थान- दान- धान

पली- फली- बली- भली

यह- रह- लव- वह

साल- शाल- हाल

कान– कान्ह

अला– अल्हा आदि।

अतः इन उदाहरणों में हर एक शब्द व्यंजन स्वनिम है। उच्चारण के विभिन्नता में संस्वन है।

– कुछ विवादास्पद व्यंजन स्वनिम –

क) मासिक व्यंजनों में ऊपर न– न्ह , म – म्ह के अलग–अलग स्वनिम होने का स्पष्ट संकेत है। शेष में म– न (माला–नाला) तो स्पष्ट स्वनिम है, परंतु ण – न की उच्चारण समस्या है। बहुत से लोग ण को न (गुण–गुन) कहते हैं। इसप्रकार कई शब्दों में ऐसे मुक्त परिवर्त है। अतः ण, न को एक सीमा तक स्वनिम कहा जा सकता है। जहाँ तक नासिक व्यंजनों का प्रश्न है तब न यह स्वनिम है तो उसके ड़., ञ, न यह उपस्वन है –

स्वनिम	उपस्वन	वितरण
न	ङः	१) क, ख, ग, घ के पूर्व (अंक शंख, अङःग, जंघा)
		२) अपवादतः वाङ्मय, पराङमुख
	ञ	च, छ, ज, झ, के पूर्व (चंचल, वांछा, मंजु झंझा)
	न	अन्यत्र

ख) ड– ड़ पहले यह दोनों ड स्वनिम के दो उपस्वन थे, क्योंकि परिपूरक वितरण में थे –

ड–		१) मध्य में दो स्वरों के बीच (घोड़ा)
		२) अंत में स्वर के बाद (पहाड़)
ड	अन्यत्र	१) आदि में (डाली)
		२) मध्य में रूपिम सीमा पर (अडिग)
		अनुनासिक स्वर के बाद (डोडी)
		दीर्घ रूप में (गड्डी) तथा संयुक्त व्यंजन
		के सदस्य रूप में (गड्ढा)

ग) ढ – ढ़– सामान्यतः तो यह एक स्वनिम (ढ) के दो उपस्वन जैसे ही आते हैं।

ढ – आदि में नहीं, मध्य में दो स्वरों के बीच (पढ़ाई) तथा अंत में स्वर के बाद गढ़।

ढ – अन्यत्रः आदि में (ढाल) तथा मध्य में रूपिम सीमा (बेढब) पर या संयुक्त के सदस्य रूप (गड्ढा) में या अनुनासिक स्वर के बाद (मेंढक)।

– केंद्रीय (core) स्वनिम तथा परिधीय (peripheral) स्वनिम –

भाषा में जो स्वनिम सामान्य रूप से अर्थभेदक तथा व्यतिरेकी होते हैं, उन्हें केंद्रीय या मुख्य स्वनिम कहाँ है। जैसे क, ख, ग, घ आदि। साथ ही जो कुछ सीमित लोगों, सीमित शब्दों या परिस्थितियों में प्रयुक्त होते हैं वे परिधीय या गौन स्वनिम होते हैं, जैसे ड़, ञ आदि।

ऊपर जो स्वनिम दिए हैं वह हिंदी के केंद्रीय स्वनिम है। इसके विपरीत ऑ, क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ये परिधीय है। क्योंकि (क) का प्रयोग बहुत कम लोगों द्वारा होता है, (ख) सामान्य भाषा में यह व्यतिरेकी न होकर मुख्य परिवर्तन है : अर्थात उनके स्थान पर क्रमशः आ, क, ख, ग, ज, फ, आ सकते हैं, (ग) सामान्य भाषा में यह अर्थभेदक नहीं है, कानून–कानून, खबर–खबर, जहाज–जहाज आदि।

किंतु जो थोड़े से लोग इन स्वनों (ध्वनियों) का प्रयोग करते हैं; उन भाषा में यह अर्थभेदक तथा व्यतीरेकी हैं। क्योंकि इनके न्यूनतम युग्म मिलते हैं–

आ – ऑ : बाल – बॉल

क – क़ : तक – तक़

ख – ख़ : खाना – ख़ाना

ग – ग़ : बेगम – बेग़म

ज – ज़ : राज – राज़

फ – फ़ : फन – फ़न आदि।

ख) खंडेतर स्वनिम : (खंडेतर ध्वनिग्राम)

खंडेतर स्वनिमों का अलग–अलग उच्चारण नहीं हो सकता, अतः इन्हें ध्वनिग्राम न कहकर ध्वनिग्रामिक कहना कदाचित उपयुक्त होगा। यद्यपि बहुत से लोग इन्हें स्वनिम कहते हैं। हिंदी में खंडेतर स्वर पर बलाघात, अनुतान, दीर्घता, अनुनासिकता तथा सहिंता ध्वनिग्रामिक है, क्योंकि इनके न्यूनतम युग्म उपलब्ध है–

बलाघात : मुझे एक खिडकीवाला मकान चाहिए।

मुझे एक खिडकीवाला मकान चाहिए।

अनुतान : राम गया।

राम गया।

दिर्घता : बला – बल्ला

बचा – बच्चा

अनुनासिक : सांस – सॉस

सवार – सैवार

संहिता (संगम) : सिरका – सिर का

तुम्हारे – तुम हारे आदि।

– संदिग्ध युग्म (suspiciour pair) –

जिन दो स्वनों (ध्वनियों) के विषय में संदेह हो कि वे अलग–अलग स्वनिम है या एक ही स्वनिम के दो उपस्वन ऐसे युग्म को संदिग्ध युग्म कहते हैं। वितरण के आधार पर उन दोनों का स्वनिम या उपस्वन के रूप में निर्धारण होता है, जैसे ड – ड़ हमारे लिए संदिग्ध युग्म थे और हमने वितरण के आधार पर सिद्ध किया कि ये पहले तो एक स्वनिम के दो उपस्वन थे, किंतु अब अलग–अलग स्वनिम हैं। ऐसे ही म – न, न– ण, न – ञ भी संदिग्ध युग्म थे, जिनमें तीन (म, न, ण) को न्यूनतम युग्म के द्वारा स्वनिम तथा शेष दो (ड़, ञ) को परिपूरक वितरण द्वारा 'न' के उपस्वन सिद्ध किया गया है।

2.3.1.5 हिंदी की स्वनिम व्यवस्था :

किसी भी भाषा की अपनी एक स्वनिम व्यवस्था होती है। प्रत्येक भाषा में उस भाषा के अलग–अलग स्वनिम होते हैं। प्रत्येक स्वनिम की अपनी अलग पहचान होती है। स्वनिम शब्द का निर्माण स्वन (ध्वनि) से हुआ है। स्वन का अर्थ है ध्वनि करना या आवाज करना। हम जब किसी ध्वनि का उच्चारण करते हैं तब उससे स्वन होता है अर्थात आवाज होती है, उसमें ध्वन्यात्मकता होती है। ध्वनि में ध्वन्यात्मकता स्वतः सिद्ध है। भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि एक ही ध्वनि को हजार, लाख, करोड़ो बार उच्चारित करेंगे तब हजार, लाखों, करोड़ों तरह की ध्वन्यात्मकता होगी। किसी ध्वनि की ध्वन्यात्मकता की संख्या का निर्धारण करना असंभव है। ध्वन्यात्मकता को ही संस्वन कहते हैं। स्वनिम इन्हीं संस्वनो का प्रतिनिधि है। स्वनिम का अर्थ है वर्ण या ध्वनि। जैसे क और ख स्वनिम है। क, ग और घ ये भिन्न–भिन्न स्वनिम है। क का अनंत संस्वन होता है, जैसे – कमल, कलाम, कपाट, कला सभी शब्दों का आदि शब्द क है। हर एक शब्द क होकर भी प्रत्येक शब्द में भिन्नता है। प्रत्येक शब्द के आदि में क है फिर भी हर शब्द उच्चारण में भिन्नता है। ये उच्चारण वैभिन्न संस्वन है और एक ही वर्ण से लिखना स्वनिम है।

हिंदी भाषा में जितने स्वर, व्यंजन और अंतस्थ वर्ण है उतने ही हिंदी के अपने स्वनिम है। हिंदी स्वनिमों की कुल संख्या 48 है। ग्यारह स्वर स्वनिम,तैंतीस व्यंजन स्वनिम,दो अंतस्थ स्वनिम और अनुस्वार तथा विसर्ग दो कुल मिलाकर 48 होते हैं। अंग्रेजी भाषा का ऑ यह स्वर भी हिंदी भाषा में आया है। फारसी भाषा के व्यंजन स्वनिम क़ ख़ ग़ ज़ फ़ हिंदी भाषा के स्वनिमों व्यंजनों में आ मिले हैं। तब हिंदी भाषा के कुल स्वनिमों की संख्या 54 होती है। हिंदी के कुल स्वनिम इस प्रकार है–

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, ऋ, ऑ।

क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, म, य, र, ल, व, श, ष, स, ह ।

आगत फारशी स्वनिम क़, ख़, ग़, ज़, फ़

हिंदी के प्रयुक्त 54 स्वनिमों को खंड स्वनिम कहा जाता है। खंडेतर स्वनिम दीर्घता, अनुनासिकता, बलाघात, सुरलहर (अनुतान) और अंतराल (संगम) आदि है।

1) **दीर्घता –**

स्वर या व्यंजनों के उच्चारण में जो समय लगता है उसे लघु या दीर्घ कहा जाता है। अतः दीर्घता ध्वनि के उच्चारण के समय की सूचना देती है। इनमें संस्वानों के समूह का प्रश्न नहीं उठता, अर्थात ये स्वनिम नहीं हो सकते।

2) **अनुनासिकता –**

ध्वनि के साथ अनुनासिकता होती है। यह वस्तुतः स्वर ध्वनि नहीं है। अनुनासिकता पृथक स्वनिम नहीं है।, अॅ, ऑ, इॅ, ई स्वर ध्वनि के साथ ही है। 'अ' पृथक ध्वनि या स्वनिम है। अतः अनुनासिकता खंडेतर ध्वनि होती है, खंडेतर स्वनिम नहीं है।

3) **बलाघात –**

बलाघात भी स्वनिम नहीं है। बलाघात स्वर या व्यंजन जहाँ भी हो उसके अर्थ में परिवर्तन होता है। उच्चारण घात से अर्थ में परिवर्तन स्वनिम नहीं हो सकता।

4) **सुरलहर –**

सुरलहर भाषा गुण है, संस्वनों का प्रतिनिधि नहीं। सुरलहर में स्वनिम भिन्नता कहा होती है कि इसे स्वनिम की संज्ञा से अभिहित किया जाएगा।

5) **अंतराल –**

अंतराल में कालभेद और पद के स्थान-भेद से अर्थभेद होता। कालभेद स्वनिम नहीं हो सकता, जैसे - रुको, मत जाओ।

रुको मत, जाओ।

अंत में हिंदी में खंड स्वनिम है, खंडेतर स्वनिम नहीं। स्वनिम के लिए उसका अल्पतम विरोधी युग्म होना आवश्यक है। स्वनिम भाषा का उच्चरित लघुत्तम अंश है। स्वनिम के संदर्भ में वितरण शब्द की चर्चा रही है, अतः वितरण को समझना भी आवश्यक है।

2.4 सारांश

1. स्वनिम विज्ञान भाषाविज्ञान की एक महत्वपूर्ण शाखा है। इसमें स्वन याने ध्वनियों का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास के साथ आजकल ध्वनियों का अध्ययन बहुआयामी और सूक्ष्म होता जा रहा है। स्वनिम शब्द का प्रयोग 'भाषा ध्वनि' के अर्थ में होता है। इस आधार पर स्वन याने भाषा ध्वनि का सूक्ष्म तथा विस्तृत और मूलगामी अध्ययन करना संभव हुआ है।

2. भाषा विचार विनिमय का साधन है। उसमें ध्वन्यात्मकता भाषा और भी अधिक महत्व रखती है। ध्वनियंत्र द्वारा निर्मित मौलिक ध्वनियों से शब्द, पद, वाक्य तथा भाषा बनती है। ध्वनियंत्र द्वारा निर्मित विभिन्न भाषा ध्वनियों का सूक्ष्म रूप में अध्ययन स्वनिम विज्ञान के माध्यम से किया जाता है। साथ ही स्वर, व्यंजन, संस्वन व्यवस्था आदि का अध्ययन स्वनिम विज्ञान करता है।

3. स्वनिम विज्ञान के अंतर्गत स्वनिम की परिभाषा, स्वनिम विज्ञान का स्वरूप, स्वनिम के भेद, वर्गीकरण, हिंदी कि स्वनिम व्यवस्था, स्वनिमिक विश्लेषण आदि विषयों का सूक्ष्म तथा विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

2.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. भाषा की लघुतम इकाई ..... है।

   क) स्वन ख) शब्द ग) पद घ) वाक्य

2. संस्कृत में ध्वनि विज्ञान का दूसरा नाम..... था।

   क) स्वनविज्ञान ख) ध्वनिशास्त्र। ग) शिक्षाशास्त्र घ) वर्णविज्ञान

3. 'प'वर्ग की ध्वनियाँ ..... कहलाती है।

   क) दंत्य ख) ओष्ठ्य ग) मूर्धन्य घ) तालव्य

4. भाषा ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले मुख्य अंग को ..... कहते हैं।

   क) कंठद्वार ख) कंठपिटक ग) काकल घ) अभिकाकल

5. बलाघात के..... भेद किए जाते हैं।

   क) चार ख) पाँच ग) छः घ) सात

6. ..... स्वर को 'संध्यस्वर' कहते हैं।

   क) संवृत ख) विवृत ग) संयुक्त घ) असयुक्त

7. हिंदी के सभी स्वर ..... हैं।

क) महाप्राण ख) अल्पप्राण ग) घोष घ) अघोष

8. स्वनिम के ..... भेद माने जाते हैं।

क) तीन ख) चार ग) पाँच घ) दो

9. हिंदी में स्वर स्वनिम..... हैं।

क) सात ख) आठ ग) दस घ) बारह

10. हिंदी में व्यंजन स्वनिम ..... हैं।

क) पच्चीस ख) पैंतीस ग) चालीस घ) तीस

11. दो स्वरों के संयुक्त उच्चारण को ..... कहते हैं।

क) स्वरगुच्छ ख) स्वरसंयोग ग) स्वरक्रम घ) स्वरानुक्रम

12. ..... भाषा की लघुतम इकाई है।

क) शब्द ख) पद ग) स्वनिम घ) ओष्ठ्य

13. ..... को ध्वनिग्राम भी कहा जाता है।

क) स्वनिम ख) खंड ग) खंडेतर घ) पद

14. किसी भी भाषा में..... से अधिक स्वनिम नहीं है।

क) 60 ख) 70 ग) 80 घ) 90

15. ..... स्वनिम के अंतर्गत स्वर, व्यंजन आते हैं।

क) खंडेतर ख) खंड ग) पद घ) शब्द

16. किसी भी ..... में अपनी स्वनिम व्यवस्था अलग होती है।

क) शब्द ख) भाषा ग) पद घ) स्वन

17. एक ही स्वनिम के ..... उपस्वन होते हैं।

क) 1 ख) 2 ग) 3 घ) 4

18. हिंदी भाषा में कुल ..... व्यंजन है।

क) 55 ख) 52 ग) 56 घ) 54

ब) उचित मिलान कीजिए।

1) स्वन अ) ध्वनिग्राम

2) वागेंद्रीय ब) ध्वनि

3) ओष्ठ्य क) मुख

4) स्वनिम ड) प

क) सही या गलत लिखिए।

1) स्वन को शब्द कहा जाता है।

2) भाषा की लघुतम इकाई स्वन है।

3) स्वनिम का अर्थ संगीत है।

4) हिंदी के सभी स्वर घोष है।

5) स्वनिम के दो भेद है।

2.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

स्वन – ध्वनि

वागेंद्रीय – मुख

अभ्यंतर – अंतर्गत, भीतर

संवृत – बंद हुआ

स्वराघात – स्वर पर अधिक बल देना

पृथक – अलग

वाग्यंत्र – ध्वनि यंत्र

कर्णेंद्रिय – कान

निवृत – खुला हुआ

सादृश्य – एक जैसा, समान

प्रयत्न लाघव – प्रयत्न की लघुता

बलाघात – अधिक बल देना

2.7 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर:

अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) स्वन

2) शिक्षाशास्त्र

3) ओष्ठ्य

10) पैंतीस

11) स्वरगुच्छ

12) स्वनिम

4) कंठपिटक
5) पांच
6) संयुक्त
7) घोष
8) दो
9) दस
13) स्वनिम
14) 60
15) खंड
16) भाषा
17) 2
18) 54

ब) उचित मिलान कीजिए।

1) स्वन – ध्वनि

2) वागेंद्रीय – मुख

3) ओष्ठ्य – प

4) स्वनिम – ध्वनिग्राम

क) सही या गलत लिखिए।

1) गलत 2) सही 3) गलत 4) सही 5) सही

2.8 स्वाध्याय :

अ) दीर्घोत्तरी आलोचनात्मक प्रश्न –

1. स्वनिम विज्ञान की परिभाषा देते हुए स्वनिम विज्ञान के भेदों का परिचय दीजिए।
2. स्वनिम विज्ञान का स्वरुप, परिभाषा, वर्गीकरण स्पष्ट कीजिए ।
3. स्वनिम विज्ञान का स्वरूप स्पष्ट करते हुए हिंदी की स्वनिम विज्ञान व्यवस्था विशद कीजिए।
4. हिंदी की स्वनिम व्यवस्था स्पष्ट करें।
5. स्वनिम विज्ञान का स्वरूप और भेद स्पष्ट करें।

ब) लघुत्तरी प्रश्न / टिप्पणियाँ –

1. स्वनिम विज्ञान का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
2. स्वनिम विज्ञान की परिभाषा दीजिए।
3. स्वनिम विज्ञान का वर्गीकरण कीजिए।
4. स्वनिम विज्ञान के भेद स्पष्ट करें।

5. हिंदी की स्वनिम विज्ञान व्यवस्था संक्षिप्त में बताइए।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. स्वनिम विज्ञान का स्वरूप, परिभाषा को जानना।
2. स्वनिम विज्ञान का स्वरूप तथा स्वनिमों की उपयोगिता को जानिए।
3. स्वनिम विज्ञान के विश्लेषण को समझिए।
4. स्वनिम विज्ञान के वर्गीकरण को समझिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. सामान्य भाषा विज्ञान – बाबूराव सक्सेना
2. भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
3. आधुनिक भाषा विज्ञान – डॉ. भोलानाथ तिवारी
4. भाषा विज्ञान और हिंदी भाषा – डॉ. जितेंद्र वत्स
5. भाषा विज्ञान हिंदी भाषा – डॉ. शंकर रामभाऊ पजई

❑❑❑

इकाई– 3
रुपिम विज्ञान स्वरूप और परिभाषा, रुपिम के भेद रुप परिवर्तन के कारण और दिशाएँ

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय – विवेचन

3.3.1 रुपिम विज्ञान का स्वरूप और परिभाषा

3.3.2 रुपिम के भेद

3.3.3 रूप परिवर्तन के कारण और दिशाएँ

3.4 सारांश

3.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.7 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई पढने के उपरांत आप–

1) रुपिम विज्ञान के स्वरूप से परिचित होंगे।

2) रुपिम विज्ञान की परिभाषाओं को जान सकेंगे।

3) रुपिम के भेदों से परिचित होंगे।

4) रूप परिवर्तन के कारणों को समझेंगे।

5) रूप परिवर्तन के दिशाओं से परिचित होंगे।

3.3.1 रुपिम विज्ञान का स्वरूप और परिभाषा:–

परंपरागत भाषाविज्ञान में व्याकरणात्मक वर्णन में मुख्यत: दो इकाईयों शब्द और वाक्य का वर्णन किया जाता रहा है। शब्द को ही व्याकरणिक स्तर की लघुत्तम सार्थक इकाई के रूप में मान्यता प्राप्त रही, परंतु आज इससे अधिक न्यूनतम इकाई रुपिम पर भी विचार किया जा रहा है। रुपिम विज्ञान या भाषाओं का रुपिम अध्ययन रूपविज्ञान का एक प्रमुख अंग है। इसका विकास अपेक्षाकृत आधुनिक है। जिसप्रकार स्वन के आधार पर स्वनिम विज्ञान नाम पडा उसी प्रकार रूप के आधार पर रुपिम विज्ञान नाम पडा है। रुपिम को 'रुपग्राम' भी कहा जाता है। इसमें किसी भाषा के रुपों का अध्ययन– विश्लेषण करके उनके अर्थ एवं वितरण के आधार पर रुपग्राम का निर्धारण किया जाता है। रूप या पद वाक्य की सार्थक इकाई है। उससे भी सबसे छोटी वाक्य की सार्थक इकाई 'रुपिम' या 'रुपग्राम कहलाती' है, और भाषा विज्ञान की जिस शाखा में रुपिम का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है, उसे रुपिम विज्ञान कह सकते है। अत: यह रुपिम क्या है? उसका स्वरूप कैसा है? उसके भेद क्या होते हैं? रूप परिवर्तन क्यों होता है? रूप परिवर्तन की दिशाएँ कौन–सी होती है? इसे ही प्रस्तुत अध्याय में समझाया गया है।

3.3.1.1 रुपिम विज्ञान का स्वरूप:–

रुपिम विज्ञान इसमें दो शब्द हैं– रुपिम और विज्ञान अत: रुपिम का वैज्ञानिक अर्थात विशिष्ठ अध्ययन करनेवाली शाखा को 'रुपिम विज्ञान' कह सकते हैं। परंतु इसके लिए पहले रुपिम के स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है।

3.3.1.1.1 रुपिम का स्वरूप

'रुपिम' रूप या पद का एक अंग है। पद वाक्य की सार्थक इकाई है, जो अर्थतत्व और संबंध तत्व से बनती है। अर्थतत्व और संबंध तत्व ध्वनियों का समूह हैं अर्थात रुपिम शुद्ध रूप से स्वनिमों का समूह हैं। परंतु ऐसे ध्वनि खंडों को ही रुपिम कहा जाता है, जो सार्थक होते हैं। यदि किसी भाषा का उच्चारण केवल स्वनिमों की रचना है, तो उसे बोलने और सुनने की कोई उपयोगिता नहीं किंतु लोग बोलते और सुनते हैं, परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। क्योंकि भाषा में स्वनिम के अतिरिक्त एक दूसरे प्रकार संरचना भी मौजूद हैं इसी संरचना को 'रुपिम' कहते हैं।

वाक्य के व्याकरणिक इकाई को रूपांश या रुपिम कहा जाता है। किसी भी भाषा के रुपिमों का निर्धारण करने के लिए उनके घटकों को पृथक किया जाता है, इसके लिए प्रत्येक शब्द को पूर्णत: एक या एकाधिक स्वनिमों में विश्लेषित कर लिया जाता है। इससे रुपिम के स्वरूप को हम सहजता से समझ सकते हैं। एक उदाहरण से यह बात हम समझा सकते हैं। जैसे–

'उसके रसोईघर में सफाई होगी' इस वाक्य में पाँच पद या रूप है, जिन्हें सामान्य भाषा में 'शब्द' कहते हैं। इन रुपों में सभी एक प्रकार के नहीं हैं। कुछ तो छोटे से, छोटे से, टुकडे हैं, उन्हें और छोटे खंडों में नहीं विभाजित किया जा सकता, जैसे – 'में'। कुछ को छोटे खंडों में बाँटा जा सकता है, जैसे रसोईघर को

'रसोई' और 'घर' में यदि घर को और छोटे टुकडों में बाँटना चाहे तो 'घ' और 'र' कर सकते हैं। यद्यपि इनमें न तो 'घ' को कोई अर्थ है और न 'र' का। ये केवल दो खंड हैं, किंतु सार्थक (विशेषत: इस प्रसंग में) नहीं है। इसलिए यह रुपिम नहीं है। कारण 'रुपिम 'भाषा' या 'वाक्य' की लघुत्तम सार्थक ईकाई को कहा जाता है।' इस अर्थ में प्रस्तुत वाक्य में उस, के, रसोई, घर, में, साफ, ई, हो, गई ये नौ रुपिम हैं। निष्कर्षत: रुपिम के स्वरूप को उसके अर्थभेदक संरचना के आधार पर इसतरह निर्धारित कर सकते हैं।

1) उस (सर्वनाम)

2) के (कारक प्रत्यय)

3) रसोई (संप्रदान तत्पुरुष समास)

4) घर(संप्रदान तत्पुरुष समास)

5) में (कारक प्रत्यय)

6) साफ (भाववाचक)

7) ई (प्रत्यय)

8) हो (क्रिया)

9) गई (वर्तमानकालिन क्रिया का चिह्न है)

इसप्रकार रुपिम की संरचना एक या एक से अधिक स्वनिमों से होती हैं और इन स्वनिमों का प्रयोग व्यवस्थित रूप में होता है। ऊपर कहीं बात को अगर और स्पष्ट करना है, तो हम उसका विश्लेषण इस प्रकार कर सकते हैं- सार्थक ध्वनियों के समूह को 'शब्द' कहते हैं। जब वही शब्द परसर्ग, विभक्तियों या प्रत्ययों का सहारा लेकर सार्थक वाक्य के लिए योग्यता प्राप्त करते हैं, तब उसे रूप या पद कहते हैं। जैसे- उस, रसोईघर, सफाई, होगी आदि केवल सार्थक ध्वनि संपन्न शब्द है। परंतु जब उसमें क्रमश: 'के' में आदि परसर्ग या प्रत्यय जोड देते हैं, तब रूप या पद बनते हैं और एक सार्थक वाक्य बनता है। जैसे- 'उसके रसोईघर में सफाई होगी।' यदि उक्त वाक्य का अर्थ के आधार पर विभाजन किया जाए, तो इसमें 'उस', 'के', 'रसोई', 'घर', 'में', 'साफ', 'ई', 'हो', 'गई' ए नौ सार्थक खंड दिखाई देंगे यदि अब इन वाक्यों के शब्दों को और खंडों में विभाजित करें, तो उ, स, क, ऐ, र, स, ओ, घ, र, में, सा, फ, ई, हो, ग, ई आदि अनेक खंड हो सकते, किंतु ये सारे खंड निरर्थक हैं, इनका कोई अर्थ नहीं हैं। इनमें से अकेले 'उ' , 'स' का कोई अर्थ नहीं जबकी उसके, रसोई आदि का अर्थ है। इसमें से 'उसके रसोईघर' संबंध कारक है अत: वाक्य संबंधकारक है। 'में' कारक प्रत्यय है। 'सफाई' भाव है। 'होगी' वर्तमानकालिक क्रिया है।

दूसरे और एक उदाहरण से रुपिम के स्वरूप को समझा सकते हैं। जैसे - 'राम ने रावण को बाण से मारा'। यदि उक्त वाक्य को अर्थ के आधार पर विभाजित किया जाए तो इस प्रकार उसके खंड हो सकते हैं-

'राम', 'ने', 'रावण', 'को', 'बाण', 'से', 'मार', 'आ'। अर्थात इस वाक्य में कुल आठ सार्थक खंड दिखाई देते हैं। कारण प्रत्येक खंड को व्याकरणिक दृष्टि से अर्थ है। इसमें –

1) राम – व्यक्ति तथा वाक्य का कर्ता कारक है।

2) ने – कर्ता कारक का द्योतक है अर्थात विभक्ति कारक है।

3) रावण – व्यक्ति तथा वाक्य का कर्म कारक है।

4) को – कर्म कारक का द्योतक है अर्थात विभक्ति कारक है।

5) बाण – साधन है तथा करण कारक है।

6) से – करण कारक द्योतक है।

7) मार – क्रिया है।

8) आ – भूतकाल की क्रिया का चिह्न है।

इस प्रकार उपर्युक्त पहले वाक्य में नौ तो दूसरे वाक्य में आठ सार्थक खंड हैं, जो भाषाविज्ञान की दृष्टि से वाक्य की सार्थक लघुत्तम इकाई है, जिसे रुपिम कहा जाता है। भाषा विज्ञान की जिस शाखा में इन रुपिमों का अध्ययन होता है, उसे 'रुपिम विज्ञान' कह सकते हैं।

इस पर आधारित रुपिम का स्वरूप निम्न है–

1) रुपिम विज्ञान रूप विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है, जो रुपिमों का अध्ययन करता हैं।

2) रुपिम ध्वनियों अर्थात् स्वनिमों से बनते हैं, जो सार्थक होते हैं।

3) रुपिम भाषा उच्चारण की लघुत्तम अर्थवान इकाई है।

4) रुपिम के स्वरूप को उसके अर्थभेद संरचना के आधार पर निर्धारित कर सकते हैं, परंतु रुपिम को अर्थिम का पर्याय नहीं माना जा सकता। जैसे 'परमेश्वर' एक अर्थिम है, जबकि इसमें 'परम' और 'ईश्वर' दो रुपिम है।

4) सभी रुपिम स्वनों के अनुक्रम होते हैं किंतु सभी स्वनों के अनुक्रम रुपिम नहीं होते हैं। जैसे प्रबंध, प्रचलन, प्रकांड आदि शब्दों में 'प्र' एक अर्थवान न्यूनतम इकाई होने के कारण रुपिम हैं। किंतु प्रश्न और प्रथा शब्दों में 'प्र' अर्थवान इकाई नहीं है क्योंकि पूर्व 'प्र' की तरह इसे विखंडीत नहीं किया जा सकता।

5) शब्दों का विखंडन या निर्बंधन करके रुपिमों को प्राप्त करना कठिन समस्या है। कारण कुछ शब्दों का विखंडन तो आसनी से हो जाता है; जैसे – लघुत्त्व = लघु+त्त्व, दीर्घता = दीर्घ+ता। तो कुछ शब्दों में विखंडन कठिन होता है। जैसे अंग्रेजी Men, Went आदि। मैंन से मेन, तथा गो से वेंट शब्दों का निर्माण अर्थतत्त्व सूचक शब्द तथा रूपतत्त्व सूचक शब्द एक जटील संरचना है। इससे ज्ञात होता है कि

कुछ भाषाओं में ऐसे शब्द मौजूद हैं जिनका खंडों में विभाजन नहीं किया जा सकता हैं। यदि उनका कोई विभाजन किया जाता है तो उसे स्वेच्छाचारित ही कही जायेगी।

संक्षेप में कह सकते हैं रुपिम का स्वरूप शब्द के सार्थक खंडों के रूप में होता है, जो अर्थपूर्ण होता है। इसीलिए इसे 'पदग्राम', 'रुपग्राम' या 'रूपांश' कहा जाता है।

3.3.1.1.2 रुपिमों के निर्धारण की प्रक्रिया पर आधारित रुपिम का स्वरूप:–

रुपिमों के निर्धारण की प्रक्रिया होती है। भाषावैज्ञानिक नाइडा ने छ: सूत्रों के आधार पर रुपिमों के निर्धारण की व्यवस्था दी है–

1) स्वनिमिक आकार और अर्थ में समानता रखने वाले रुपों (रुपकल्पों) के द्वारा रुपिम का निर्माण होता हैं; जैसे– शीघ्रता, दीर्घता, लघुता।

2) स्वनिमिक आकार भिन्न हो परंतु अर्थ में समानता हो तो रुपिम का निर्माण होता है; जैसे– सन्तोष (संतोष), संत्र्चालन (संचालन), सङ्मम (संगम), इनमें सम् रूप अलग–अलग रुपों में उपलब्ध हो रहा है, जो ध्वन्यात्मक पर्यावरण के कारण है। अत: सं एक रुपिम है सम्, सन उसके उपरूप है।

3) स्वनिमिक आकार में भिन्नता रखनेवाले रूप यदि समान अर्थ को सूचित करते हैं किंतु यह भिन्नता स्वनात्मक और रूपात्मक संदर्भो में प्रवचनीय (Definable); जैसे– Look, Reject आदि। धातुओं में ed जोडकर भूतकाल रूप बनाया जाता है। जैसे Looked, Rejected आदि। किंतु put, cut, में ed नहीं लगता इन धातुओं में शून्य प्रत्यय जुडता है। ढाँचे की एकरूपता बनाये रखने के लिए उस उपरूप की मान्यता आवश्यक है। Sheep में शून्य रूप है। ध्वनि गुणात्मक दृष्टि से विश्लेषण करके रूपकल्पों को और अधिक आसनी से प्रदर्शित किया जा सकता है। अंग्रेजी के बहुवचनांत प्रत्ययों जैसे–एन (चिल्ड्रेन, आक्सेन) में दृष्टिगत होता है। इसी सूत्र से ये रुपिम के अंतर्गत उपरूप है। किंतु इनको ध्वनि प्रक्रियात्मक संरचना या किसी अन्य दृष्टि से किसी सामान्य नियम के अंतर्गत बांधने में कठिनाई अवश्य होती है। क्स से अंत होनेवाले रुपों का बहुवचन इज होता है। अन् की उपस्थिति ध्वनि वैज्ञानिक दृष्टि से सानुबंध नहीं कह सकते हैं। इसी तरह के शब्द अनियमित है।

4) किसी संरचना श्रेणी का प्रत्यक्ष आकार भेद एक स्वतंत्र रुपिम (रूपांश) बन सकता है। शर्त यह है कि आकार –भेद तथा परवर्ती शून्य मिलकर रूप और अर्थ की भिन्नता की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। अंग्रेजी Foot -Feet (u-i) में संरचना श्रेणी का आकार भेद प्रकट होता है। फूट शब्द के अंत में कोई बहुवचनात्मक प्रत्यय नहीं लगता है। यह आकार भेद अंतिम शून्य संरचनात्मक भेद से मिलकर भेदक बन जाता है। इसी तरह Run-Ran, Sing-Sang, Man-Men में होता है। इनमें i, a, e को रुपिम माना जा सकता है। रूप और स्वन – प्रक्रिया की इन स्थितियों को सही ढंग से विश्लेषित करने के लिए रूप–स्वन प्रक्रिया का आश्रय लिया जा रहा है। अमेरिका में व्याकरण के इसी पक्ष के लिए रूप– स्वन – विज्ञान का प्रयोग किया जाने लगा है।

5) संदर्भ के अंतर से अलग-अलग अर्थ देनेवाले एक ही रूप को दो रुपिम माना जाता है; जैसे - जलज का अर्थ बादल और कमल दोनों होता है, इसीलिए ये दो रुपिम हैं।

3.3.1.1.3 रुपिम का उपरूप या संरूप:-

अर्थतत्व और संबंधतत्व अलग-अलग रुपिम होते हैं, इसकी जानकारी उपर्युक्त विवेचन से मिलती है। सारांशत: शब्दों से पद बनते हैं और पदों को खंडित करने से रुपिम मिलते हैं। परंतु कभी-कभी ऐसा देखा जाता है कि कई रुपों का अर्थ एक होता है। जो परिपूरक वितरण के रूप में होते है।

जैसे - हिंदी में अनेक शब्दों का बहुवचन बनाने के लिए 'ओंफ', 'एफ', 'एंफ', 'यांफ' आदि रुपिमों का प्रयोग किया जाता है। घरों, घोडों, माताएँ, नदियाँ आदि।

इनका अर्थ एक है, इसलिए संभावना यह हो सकती है, ये अलग- अलग रुपिम न होकर एक ही रुपग्राम के अंग या विभिन्न रूप हो। जिन दो या दो से अधिक समानार्थी रुपों के एक रुपिम के अंग होने का संदेह होता है, उन्हें 'संदिग्ध समूह' या 'संदिग्ध युग्म' कहा जाता है। लेकिन केवल 'संदिग्ध समूह' या 'संदिग्ध युग्म' होने के आधार पर उन्हें एक रुपिम के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। संदेह मिटाने के लिए यह देखना पडता है कि यह परिपूरक वितरण में है या नहीं। इसका अर्थ यह है कि जिन ध्वन्यात्मक या रूपात्मक परिस्थितियों में एक रूप का प्रयोग होता है, दूसरों का भी उन्हीं में होता है, या सबका अलग-अलग। यदि सबका एक ही परिस्थितियों में प्रयोग होता है तो इसका आशय यह है कि उनका आपस में विरोध है। एक स्थान पर दूसरा भी आ जाता है। यदि ऐसा हो तो उन्हें एक रुपिम का अंग (जिन्हें उपरूप या संरूप कहते हैं) नहीं माना जा सकता। वे सभी अलग-अलग रुपिम हैं किंतु, यदि परिपूरक वितरण में हैं, अर्थात वितरण या प्रयोग की दृष्टि से सभी का स्थान अलग-अलग बंटा, जहाँ एक आता है वहाँ दूसरा नहीं, और जहाँ दूसरा आता है, वहाँ तीसरा नहीं, तो इसका अर्थ यह है कि उनका आपस में विरोध नहीं है और ऐसी स्थिति में वे सभी एक ही रुपिम के उपरूप है। अर्थात रुपिम हर स्थान पर एक ही तरह के रूप के द्वारा प्रतिनिधित्व नहीं पाता है। ''रूपांश (रुपिम) के विभिन्न प्रतिनिधिक रूप को 'उपरूप' कहते हैं।''

संक्षेप में कह सकते हैं जिसका प्रयोग परिपूरक वितरण में होता है उसे संरूप कहते हैं। परिपूरक वितरण से तात्पर्य है कि एक ही रूप के (संरूप) रुपिम प्रयोग की दृष्टि से अलग-अलग बंटे होते हैं। बहुधा यह देखा जाता है कि कई रुपिम देखने में तो अलग-अलग जान पडते हैं किंतु उनके अर्थ में कोई अंतर नहीं होता, उनमें पारस्परिक कोई विरोध नहीं होता और वाक्य में उसके आने की स्थिति भी निश्चित रहती है। इसप्रकार एक ही रुपिम के समानार्थक रुपों को संरूप कहते हैं। उन संरुपों में जो अधिक प्रचलित होता है, उसे रुपिम मान लेते हैं, शेष को संरुप।

इसप्रकार रुपिम वाक्य की लघुत्तम सार्थक इकाई है, जो पद विज्ञान एक अंग है। इसीलिए इसे भी रुपिम विज्ञान कहते हैं। रुपिम के स्वरूप को ध्यान में लेकर विविध पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों ने इसे परिभाषित किया हैं। उन परिभाषाओं को यहाँ दिया गया हैं-

अ) पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी रुपिम की परिभाषाएँ :–

1) **हॉकेट :–**

"Morphemes are smallest individually meaning full elements in the utterance of a language. अर्थात ''किसी भाषा के उच्चार में रुपिम न्यूनतम स्वत: अर्थवान तत्व होते हैं।''

2) **ब्लूमफील्ड:–**

"A linguistic from which bears no partial phonetic semantic resemblance to any other form in a language is morpheme. अर्थात ''रुपिम वह भाषाई रूप है, जिसकी भाषा विशेष के किसी अन्य रूप से किसी प्रकार की ध्वन्यात्मक और अर्थगत समानता नहीं होती।''

3) **ग्लीसन:–**

"Morpheme is the smallest unit grammatically pertinent." अर्थात ''रुपिम परिपूरक क्रिया की इकाइयों का समूह है।''

4) **एडम्स :–**

"A morpheme may be defined as a unit representing one or more morphs, which occur indifferent context which exactly the same meaning and function." अर्थात 'रुपिम एक या एक से अधिक ऐसे रुपों का समूह है, जो भिन्न संदर्भों में (भिन्न शब्दों में) एक ही अर्थ एवं एक ही प्रकार्य के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।'

5) **ब्लाक अंड ट्रेगर:–**

"Any form whether bound or free, which can not be divided into smaller meaning full parts is a morpheme." अर्थात कोई भी भाषाई रूप चाहे, मुक्त हो या आबद्ध, जिसे और लघुत्तर अर्थवान रुपों में खंडित न किया जा सके, रुपिम होता है।

आ) भारतीय विद्वानों द्वारा दी गयी रुपिम की परिभाषाएँ :–

1) **डॉ. रत्न शर्मा:–**

''वाक्य की सार्थक लघुत्तम इकाई को, जिसका संबंध भाषा के रूप पक्ष से रहता है और अर्थ पक्ष से भी रुपिम कहा जाता है।''

2) **डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना:–**

''वाक्य की सार्थक लघुतम इकाई को रुपिम कहते हैं।''

3) **डॉ. उदय नारायण तिवारी:–**

''रुपिम वस्तुत: परिपूरक वितरण या मुक्त वितरण में आए हुए सहपदों का समूह हैं।''

4) **डॉ. कर्ण सिंह:–**

''वाक्य में प्रयुक्त छोटी से छोटी सार्थक इकाई रुपग्राम या रुपिम होती है।''

5) **डॉ. भोलानाथ तिवारी:–**

''भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई रुपिम है।''

रुपिम की परिभाषाओं पर आधारित उसके स्वरूप को निम्न रूप में बता सकते हैं।

1) रुपिम भाषा या वाक्य की छोटी से छोटी सार्थक इकाई होती है।

2) रुपिम अर्थतत्व और संबंध तत्त्व दोनों से जुडी रहती है।

3) रुपिम परिपूरक या मुक्त वितरण में आए हुए सहपदों का समूह हैं।

4) रुपिम भाषा या वाक्य का ऐसा सार्थक खंड है, उसे पुनश्च्य खंडित नहीं किया जा सकता।

5) रुपिम भिन्न संदर्भों में (भिन्न शब्दों में) एक ही अर्थ एवं एक ही प्रकार्य के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।''

6) किसी भाषा के उच्चार में रुपिम न्यूनतम स्वत: अर्थवान तत्व होते हैं।

7) रुपिम प्रत्यय – परसर्ग को अर्थवान बनाने में सहायक होते हैं। कारण प्रत्यय– परसर्ग स्वत: तो अर्थवान नहीं हैं, किंतु इन्हें अर्थहीन भी नहीं कहा जा सकता। कारण अर्थतत्वों को अर्थात सार्थक शब्दों को संबंध तत्वों अर्थात प्रत्यय – परसर्ग के कारण ही अर्थ प्राप्त होता है, जिसे व्याकरणिक भाषा में 'पद' या 'रूप' कहते हैं। परिमाणस्वरूप प्रत्यय – परसर्ग को अर्थवान बनाने में रुपिम ही सहायक होते हैं। कारण वह 'पद' या 'रूप' को खंडित करते हैं।

3.3.2 रुपिम के भेद

रुपिम के स्वरूप में देखा कि रुपिम निर्धारण के अनेक सूत्र होते हैं। इसीलिए रचना, उनके प्रयोग, अर्थ तथा संबंध तत्व एवं खंडता या अखंडता के आधार पर रुपिम के भेद किए जाते हैं।

अ) प्रयोग के आधार पर रुपिम के भेद :–

वाक्य में रुपिम का कभी स्वतंत्र, तो कभी बद्ध तो कभी मुक्त–बद्ध रूप में प्रयोग होता है। अत: इस प्रयोग के आधार पर रुपिम के तीन भेद किए जाते हैं। वह इसप्रकार –

1) मुक्त रुपिम

2) बद्ध रुपिम

3) मुक्त–बद्ध रुपिम

1) **मुक्त रुपिम:–**

जो रुपिम या रुपग्राम वाक्य में स्वतंत्र रूप से प्रयोग में आते हैं, उन्हें 'मुक्त रुपिम' कह सकते हैं। जिसे खंडित नहीं किया जा सकता कारण उसे खंडित करने से उसका अर्थ सुरक्षित नहीं रह सकता। अत: मुक्त रुपिम वाक्य में किसी भी शब्द का स्वतंत्र अर्थवान रूप है। उसे अपना महत्व कायम करने के लिए किसी अन्य सहायता की आवश्यकता नहीं होती, वह पूर्णत: अपने अर्थ के साथ मुक्त रूप में होते हैं।

जैसे – 'आदमी घर में रहता है'। इस वाक्य में 'आदमी', 'घर' पूर्णत: मुक्त रुपिम है।

जब ये मुक्त रुपिम या रुपग्राम अन्य रुपिम या रुपग्रामों के साथ भी आते हैं। तब भी अर्थ को बनाने रखते हैं, वे रुपिम भी मुक्त रुपिम ही होते हैं।

जैसे– पाठशाला, रसोईघर, राजदरबार आदि हैं। 'पाठशाला' में 'पाठ' और 'शाला', 'रसोईघर' में 'रसोई' और 'घर', 'राजदरबार' में 'राज' और 'दरबार' स्वतंत्र रुपिम है।

2) **बद्ध रुपिम :–**

'बद्ध रुपिम' शब्द से पता चलता है कि यह रुपिम बंधा–सा रहता है। अर्थात रूप का वह अंश है, जो किसी दूसरे के सहारे ही अर्थवान होता है। इसीलिए ''जो रुपग्राम अन्य तत्वों के सहयोग के बिना प्रयोग में नहीं आ सकते हैं,'' उन्हें ''बद्ध रुपिम कह सकते हैं।'' इनका उच्चारण तो स्वतंत्र रूप से हो सकता है, लेकिन एकाकी प्रयोग नहीं हो सकता। हिंदी के स्त्रीलिंग प्रत्यय, वचन प्रत्यय, भाववाचक प्रत्यय, गुणवाचक प्रत्यय, स्थानवाचक प्रत्यय, उपसर्ग, काल के प्रत्यय इसी प्रकार के हैं। समझने की दृष्टि से यहाँ प्रत्येक प्रकार के रुपिमों के उदाहरण नीचे दिये गए हैं–

1) स्त्रीलिंग प्रत्यय का उदा–

धोबी+ इन = धोबीन, शिक्षक+ इक = शिक्षिका आदि

2) वचन प्रत्यय का उदा–

पुस्तक+ ऐं = पुस्तकें, चाबी +यां = चाबियां आदि

3) भाववाचक संज्ञा के उदाहरण–

हिंदी के 'आई' (भलाई, अच्छाई), ता (गुरुता, प्रौढता), त्व (महत्व, स्वामित्व) आदि तथा अंग्रेजी के Ness (happiness), tion(Pollution) आदि, संस्कृत के सुप्, तिड् प्रत्यय इसी प्रकार के हैं।

4) गुणवाचक प्रत्यय का उदा–

जल+मय = जलमय, प्रामाणिक +ता= प्रामाणिकता आदि।

5) स्थान वाचक प्रत्यय का उदा–

मारवाड+ ई= मारवाडी, इलाहाबाद + ई = इलाहाबादी आदि।

6) उपसर्ग आश्रित रुपिम के उदा–

आ+हार= आहार, अन +जाना = अनजाना आदि।

3) **मुक्त–बद्ध रुपिम:–**

जो रुपिम स्वतंत्र तो लगते हैं, परंतु वाक्य में किसी दूसरे शब्द के अस्तित्व के लिए ही प्रयुक्त होते, उन्हें 'मुक्त– बद्ध रुपिम' कह सकते हैं। हिंदी में सारे विभक्ति प्रत्यय स्वतंत्र रूप में लिखे जाते हैं, किंतु वह किसी न कसी शब्द के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। वह उस शब्द के साथ ही बद्ध रहते हैं वह वाक्य में स्वतंत्र रूप से होते हैं, परंतु उनके बगैर उस शब्द का अर्थ पूरा नहीं होता, अर्थात वह उस शब्द के साथ ही बंधा होता है। अर्थात् दिखने में तो मुक्त है, परंतु उस शब्द पर आश्रित होता है, इसलिए इसे 'मुक्त–बद्ध रुपिम' कह सकते हैं।

जैसे– 'पत्ते पेड से गिरते हैं।' इस वाक्य में 'पेड', 'से' दोनों भी मुक्त रुपिम है, परंतु दोनों तब ही अर्थ पूर्ण होते जब वह बद्ध होते हैं, जैसे– 'पेड से'। इसी तरह 'मोहन ने किताब पढ ली।' इस वाक्य में 'मोहन ने' तो 'गुरु शिष्य को पढाते हैं' इस वाक्य में 'शिष्य को' 'मुक्त–बद्ध रुपिम' है।

आ) रचना के आधार पर रुपिम के भेद :–

रचना के आधार पर रुपिम के दो भेद होते हैं वह इसप्रकार –

1) मिश्रित रुपिम

2) संयुक्त रुपिम

1) **मिश्रित रुपिम:–**

इसमें मुक्त रुपग्रामों के साथ एक या एक से अधिक बद्ध रुपग्रामों का योग होता है। अर्थात एक से अधिक अर्थतत्वों से जब रुपिमों की रचना होती है, उसे 'मिश्रित रुपिम' कहते हैं।

जैसे – पाठशालाएं (पाठशाला+आएं), अनियमितता (अ+नियमित+ता), राष्ट्रपति (राष्ट्र+पति) आदि मिश्रित रुपग्राम हैं।

2) **संयुक्त रुपिम:–**

जिसमें एक से अधिक रुपिम संयुक्त होते हैं, किंतु केवल एक ही अर्थतत्व हो। इनमें से एक अर्थतत्त्व होता है, बाकी सभी संबंध तत्व होते, अर्थात अर्थतत्व और संबंध तत्वों से बने रुपिम को 'संयुक्त रुपिम' कहते हैं।

जैसे– हमारे नगरों की सफाई होगी इसमें हमारे, नगरों, सफाई, होगी चार रुपिम हैं, जिसमें अर्थतत्व के साथ संबंध तत्व जुडे है। यथा–हमारे (हम+आ+मेरे), घरों (घर+ओं), सफाई (साफ+आई), होगी (होना+गी)।

इ) अर्थ तथा संबंध तत्त्व के आधार पर रुपिम के भेद:–

अर्थ तथा संबंध तत्त्व के आधार पर रुपिम के दो भेद हैं–

1) **अर्थग्राम या अर्थतत्त्व प्रतिपादक रुपिम :–**

इससे स्पष्ट है कि यह रुपिम अर्थतत्व से जुडे होते हैं। शब्दकोश में पाए जानेवाले मूल शब्द को अर्थतत्व कहा जाता है। एक अर्थ से यह मुक्त होते हैं इसीलिए मुक्त रुपग्रामों को ही अर्थग्राम कहते हैं। धातु और प्रतिपादिक इस प्रकार के अर्थग्राम है।

जैसे– हो, खा, राम, किताब, सुंदर, वह, तुम आदि।

साथ ही संज्ञा, क्रिया एवं विशेषण आदि व्याकरणिक कोटियाँ अर्थतत्व प्रतिपादक रुपिम के अंतर्गत आते हैं।

जैसे – 1) संज्ञाएँ – मीरा, कृष्ण, तुकाराम, कबीर आदि।

2) क्रियाएं – गाना, रोना, सोना, जीना आदि।

3) विशेषण – सुंदर, मीठा, बुरा, अच्छा रंगीन आदि।

2) **संबंधग्राम तथा संबंधतत्व प्रतिपादक रुपिम :–**

नाम से पता चलता है कि वाक्य में केवल संबंधतत्व का प्रतिपादन करनेवाले रुपिम 'संबंध तत्व प्रतिपादक रुपिम' कहलाते हैं। यह रुपिम अर्थतत्व से बंधे रहते हैं। इसीलिए इसे 'बद्ध रुपिम' कहते हैं। बंध रुपग्रामों को ही 'संबंधग्राम' कहते हैं। इन्हें 'प्रकार्यात्मक रूपग्राम' भी कहा जाता है। संस्कृत के सुप्, तिड् प्रत्यय इसी प्रकार के हैं। हिंदी के परसर्ग, प्रत्यय आदि इसीप्रकार के हैं।

1) परसर्ग के उदाहरण– ने, को, से, में, का, की, के आदि।

2) प्रत्यय के उदाहरण – असमानताएँ, मुक्तता, पवित्रता आदि।

ई) खंडता या अखंडता के आधार पर रुपिम के भेद:–

खंडता या अखंडता के आधार पर रुपिम के दो भेद होते हैं। वे इसप्रकार–

1) **खंडात्मक रुपिम या रुपग्राम (Segmental morpheme)** :-

जिन रुपिमों का खंडन संभव होता उन्हें 'खंडात्मक रुपिम' या 'रुपग्राम' कहते हैं। ऊपर जितने भी रुपग्रामों के भेद बताए गए, वे सभी इसके अंतर्गत आते हैं।

2) **अधिखंडात्मक रुपिम या रुपग्राम (Supra Segmental morpheme)**:-

अधिखंडात्मक रुपग्रामों में खंडन संभव नहीं होता। मात्रा, भेद, बलाघात, सुर, सुरलहर अधिखंडात्मक रुपग्राम है।

जैसे–	क्रिया	संज्ञा
	Counduct	Counduct
	Important	Important
	Contact	Contact
	Transfer	Transfer

प्रस्तुत उदाहरणों में क्रिया और संज्ञा एक ही रूप में नजर आ रहे हैं, परंतु स्थान विशेष पर बल देने से अर्थ में परिवर्तन होता है। इन शब्दों में जब हम प्रथम अक्षर पर बल देते हैं, तब संज्ञा का रूप नजर आता है और जब हम द्वितीय अक्षर पर बल देते हैं, तब क्रियापद निष्पन्न होता है।

मात्रा– भेद से भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता है जैसे–

गदा – गद्दा

पता – पत्ता

खिल– खील

3.3.3 रूप परिवर्तन के कारण और दिशाएँ :–

रूप परिवर्तन के कारण और दिशाओं पर प्रकाश डालने से पूर्व रूप क्या है? इस पर संक्षेप में प्रकाश डालना आवश्यक है।

वाक्य में प्रयुक्त शब्दों में दो तत्व होते हैं– अर्थतत्व और संबंध तत्व। दोनों में प्रधान अर्थ तत्व है।

मूल शब्द, प्रकृति, धातु या प्रातिपादिक तथा पद में यह अंतर है कि मूल शब्द में वाक्य में प्रयुक्त होने की योग्यता नहीं होती तथा 'पद' में संबंध तत्व जोडने के कारण योग्यता आ जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि –

मूल शब्द+ संबंध तत्व = पद या रूप

संस्कृत में मूल शब्द को प्रातिपादिक कहते और भाषा विज्ञान में इस मूल शब्द को ही अर्थतत्त्व कहा जाता है, क्योंकि मूल शब्द में अर्थ निहित रहता है। संबंधतत्व का कार्य है अर्थ तत्वों का आपस में संबंध दिखाना। यथा–

'राम ने रावण को बाण से मारा' इस वाक्य में चार अर्थ तत्व हैं– राम, रावण, बाण, मारना। पद बनाने के लिए इन चार अर्थतत्वों में संबंध तत्त्वों की आवश्यकता है, इसीलिए यहाँ पर चार संबंधतत्त्व भी हैं। ने, को, से, आ यह संबंध तत्व हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि संबंध तत्व के योग से ही अर्थतत्त्व में निहित अर्थ की स्पष्ट रूप से प्रतीति होती हैं, जिसे पद कहते हैं। संस्कृत 'पद' शब्द का अर्थ है 'पैर' और पैर का काम

है चलना। अत: जब शब्द वाक्य में चलने लगते हैं, तब उसे पद कह सकते हैं। अत: यह पद भाषा या वाक्य की लघुत्तम सार्थक इकाई है। इसीलिए भाषा परिवर्तन के साथ वह भी परिवर्तित होती है।

3.3.3.1 रूप परिवर्तन के कारण:–

भाषा की विशेषताओं के अंतर्गत हमने देखा है कि भाषा चिरपरिवर्तनशील होती है। यह परिवर्तन भाषा के प्रत्येक अंग के स्तर हैं जिसमें रूप या पद एक अंग है। शब्दों के रूप सर्वथा एक नहीं होते, जिसमें परिवर्तन होता रहता है। रूप परिवर्तन का क्षेत्र अपेक्षा कृत सीमित होता है, कारण वह उसी रूप या पद को प्रभावित करता है। उसका भाषा के पूरे ढाँचे से कोई संबंध नहीं। इस रूप परिवर्तन के कई कारण होते हैं–

1) **नियमन:–**

'नियमन' का अर्थ है किसी विषय को नियमों में बांधना भाषा में कुछ तो नियम होते हैं, जो अधिकांश रुपों पर लागू होते हैं। इसके विपरीत कुछ अपवाद होते है जो इन बहुचर्चित नियमों का उल्लंघन करते हैं। स्पष्ट ही नियमित रुपों को स्मरण रखना तथा भाषा बोलते समय उनका प्रयोग करना सरल होता है। इसके विपरीत नियम– विरोधी रुपों का स्मरण रखना तथा यथावसर उनका प्रयोग करना कठिन होता है। अत: ऐसे समय में पदों में परिवर्तन होता है। इस कठिनाई से बचने के लिए हर भाषाभाषी का अंतर्मन जाने–अनजाने अनियमित रुपों के स्थान नियमित रुपों का प्रयोग करना चाहता है।

जैसे – हिंदी में पुराने मानक रूप 'हूजिए' तथा 'कीजिए' हैं किंतु ये अपवाद नियम विरोधी है। सामान्य नियम धातु में 'इए' जोडकर रूप बनाने का है। यथा– आइए, चलिए, बैठिए आदि। इसका परिमाण यह हो गया कि अब इस दिशा में नियमन हो गया है और 'हूजिए' के स्थान पर 'होइए' तथा 'कीजिए के स्थान पर 'करिए' रूप प्रयुक्त होने लगे। 'मर' का 'मरा', 'चल' का 'चला', 'बैठ' का 'बैठा' नियमित हैं, किंतु 'कर' का 'किया' अपवाद है। परिमाणत: बहुत से लोग इसका नियमन कर 'कर' से 'करा' का प्रयोग कर देते हैं या कर जाते हैं, या कर देते हैं।

2) **बहुप्रयुक्त रुपों का अभाव:–**

भाषा के सामान्य नियमों के अनुसार नियमन होता है, परंतु भाषा के बहुप्रयुक्त रुपों पर आधारित भी नियमन तय होते हैं। बहुप्रचलित रुपों से प्रभावित होकर भी परवर्ती भाषा में उसी प्रकार के रुपों को बनाया जाता है और उसे भाषा में स्वीकार भी किया जाता है । वस्तुत: नियमन और यह प्रभाव एक ही क्रिया के दो पक्ष हैं। इन्हें एक साथ भी रखा जा सकता है।

जैसे– 'कीजिए' पद 'करिए बनकर अपनी रचना में नियमित हो गया है। कारण चलिए, पढिए, बैठिए, लिखिए जैसे सैकडों रुपों के प्रभाव से 'कर' से 'कीजिए' के स्थान पर 'करिए' बना गया। कभी अन्य रुपों में भी प्रभाव काम करता है। संस्कृत में अकारांत शब्दों का प्रयोग अन्यों की तुलना में बहुत अधिक था। इसका परिमाण यह हुआ कि परवर्ती भाषाओं में अन्य ध्वनियों से अंत होनेवाले शब्दों के रूप भी अकारांत शब्दों की तरह बनने लगे। उदाहरण के लिए, संस्कृत में संबंध एकवचन में 'पुत्र' का 'पुत्र्यस्य', 'सर्व का सर्वस्य',

'अग्नि का अग्ने' तथा 'वायु का वायो' बनता है। किंतु प्राकृतों में 'अग्निस्स', 'वाउस्स' रूप मिलते हैं। 'अग्ने' या 'वायो' से यह रूप विकसित नहीं हो सकते। स्पष्टत: बहुप्रयुक्त अकारांत शब्दों के प्रभाव के कारण इनके रूप परिवर्तित हो गए हैं।

3) **सरलता:–**

प्रत्येक मनुष्य की यह स्वाभाविक आकांक्षा होती है कि वह कम–से–कम परिश्रम द्वारा अधिक–से–अधिक सफलता प्राप्त करे। इसी कारण जटिल रुपों को सरल बना दिया जाता है। कारक एवं वचन तथा लिंग के रुपों की संख्या कम करना सरलता की ही प्रवृत्ति है। सरलता की इस प्रवृत्ति के कारण कभी–कभी अनेक रुपों में से किसी एक ही रूप को प्रयोग में लाया जाता है। हिंदी में मेरे, तेरे, के साथ को, से, मैं, पर आदि का प्रयोग इसी कारण है।

मेरे को (मुझे), तेरे को (तुझे), मेरे पर (मुझ पर), तेरे में (तुझमें) आदि प्रयोग चलने लगे हैं और 'मुझ', 'तुझ', वाले रूप लुप्त होते जा रहे हैं। अंग्रेजी में बहुवचन बनाने के लिए अनेक प्रत्ययों का प्रयोग होता था।

जैसे – Cow- Kine, Eye- Fine, Brother- Brethren परंतु आज 'S' प्रत्यय ही अधिकांश शब्दों में लगता है। जैसे – Cow- Cows, Eye- Eyes, Brother- Brothers.

4) **नवीनता का आग्रह:–**

नित नवीन बनाने की प्रवृत्ति मनुष्य की होती है। इस कारण परंपरागत रुपों के स्थान पर नए रुपों का प्रयोग करता है। जैसे– मृदुता के स्थान पर मार्दव, सुंदरता के स्थान पर सौंदर्य, उदारता के स्थान पर औदार्य, प्रचुरता के स्थान पर प्राचुर्य का प्रयोग करता है। प्रभावशाली के स्थान पर प्रभावी, व्यंजना के स्थान पर अभिव्यंजना का प्रयोग भी नवीनता के आग्रह के कारण हुआ है। साहित्यकार कभी–कभी केवल नवीनता के लिए भी नये रूप बना लेते हैं। जैसे प्रभावशाली के स्थान पर 'प्रभावी' का प्रयोग इसी प्रकार का है। 'स्वीकार' किया' के स्थान पर 'स्वीकारा' या 'फिल्म बनाया' के स्थान पर 'फिल्माया' जैसे रूप सामन्य दृष्टि से रूप– परिवर्तन के नहीं है, किंतु दो रुपों के स्थान पर एक रूप होने के कारण परिवर्तन के अंतर्गत रखे जा सकते हैं। इधर नये कवियों ने इस प्रकार के सैकडों प्रयोग किए हैं: नोटा, हथियाया, लतियाया, गरियाया आदि।

5) **अज्ञान:–**

कुछ अस्पष्टताएँ अज्ञान के कारण होती हैं, अत: ऐसी अस्पष्टताओं को दूर करने के लिए जो नए रूप आते हैं, उनके पीछे अज्ञान भी एक कारण के रूप में अवश्य काम करता है। इसीलिए अज्ञान के कारण कभी तो नए रुपों का निर्माण हो जाता है और कभी अनेक परिवर्तन भी हो जाते हैं। यथा 'कागजात' बहुवचन ही हैं, किंतु कुछ लोग इसका कागजातों के रूप में प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार श्रेष्ठ के साथ –साथ श्रेष्ठतम, श्रेष्ठत्तर, उपर्युक्त के स्थान पर उपरोक्त, आदि रूप अज्ञानता के उदाहरण हैं।

हिंदी में धातु 'आ' प्रत्यय लगाकर भूतकालिक कृदंत बनाये जाते हैं। कुछ भूतकालिक क्रियाएँ हिंदी में संस्कृत से आयी हैं। यथा - कृत - किया, गत- गया अर्थात इनका संबंध हिंदी धातुओं से नहीं। हिंदी की धातुएं 'कर' और 'जा' है। अब 'कर' का भूतकालिक कृदंत चला, लिखा, दिया, पढा आदि की तरह 'करा' चलने लगा है। सिद्धांत रूप में इसमें कोई दोष नहीं है। कभी-कभी अनावश्यक प्रत्यय भी लगा दिए जाते हैं। यथा कृपणताई (कृपणता), कोमलताई (कोमलता), पंडित्यता (पांडित्य), और्दाता (औदार्य), औचित्यता (औचित्य) आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं।

6) **सादृश्य:-**

रूप परिवर्तन में सादृश्य एक महत्त्वपूर्ण कारण है। जैसे -'करिणा' के सादृश्य (करिन +आ) पर वारि + आ = वारिणा, हरि + आ= हरिणा, कवि+आ = कविना आदि रूप बनते हैं। 'पाश्चात्य' शब्द के सादृश्य पर 'पौरस्त', 'पौरात्य' और 'द्वादश' शब्द के सादृश्य पर 'एकदश' भी इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप है।

7) **बल:-**

बलाघात भाषा परिवर्तन का एक कारण हैं। वह कारण पद में भी कार्य करता है बल के कारण भी रूप परिवर्तित होता है। जैसे बल कारण 'अनेक' परिवर्तित होकर 'अनेकों' हो गया है। 'मैं' पर 'बल' देने के कारण 'हम' बना दिया गया है और 'हम' के लिए 'हम लोग' का प्रयोग होने लगा है। जैसे उ' ठ उ' पर बल देते हैं। 'मैं उठा' संज्ञा के रूप में अर्थ निहित होता है, तो उठा' 'ठा' पर बल देने से 'उठाओं' क्रिया के रूप में अर्थ होता है।

8) **स्पष्टता:-**

भाषा का प्रयोग करता अपनी कोई बात कहने के लिए ही भाषा का प्रयोग करता है। इसीलिए वह चाहता है कि उसकी अभिव्यक्ति अधिक से अधिक स्पष्ट हो, कहीं कोई अस्पष्टता न हो, ताकि उसकी बात ठीक से समझी जा सके। इसीलिए जब भी किसी रूप में स्पष्टता का अभाव होता है तो नए रुपों का प्रयोग शुरू हो जाता है- ऐसे नए रूप जो पुराने रूप की तुलना में ही अधिक स्पष्ट है।

जैसे हिंदी-उर्दू में फारसी के रूप चलते रहें : 'दर हकीकत' 'दर अस्ल'। इधर जब फारसी का प्रचार-प्रसार समाप्त हुआ, दर (=में) शब्द लोगों का अस्पष्ट हो गया। इसका परिमाण हो गया कि 'दर हकीकत' 'दर अस्ल' यह शब्द भी अस्पष्ट हो गए। परिमाणत: नए रूप चल पडे है, जैसे - 'दर हकीकत में' 'दर अस्ल में'। ऐसे ही श्रेष्ठ का अर्थ है 'सबसे अच्छा' किंतु संस्कृत व्याकरण की जानकारी कम होने के साथ 'श्रेष्ठ' शब्द अस्पष्ट हो गया और परिमाणत: नए रूप उसके स्थान पर प्रयुक्त होने लगे- 'सर्वश्रेष्ठ', 'श्रेष्ठतम' 'उत्तम' 'सर्वोत्तम' में भी यही बात है।

ध्वनि परिवर्तनों से भी विभक्तियों के लुप्त होने पर भी अस्पष्टता का संकट उपस्थित हो जाता है, तब नए शब्दों की सहायता से नए रूप बनाकर अभिव्यक्ति में अस्पष्टता लाई जाती है। 'हम', 'तुम', 'वे', 'ये' मूलत: बहुवचन है, किंतु आगे चलकर 'हम', 'तुम' का तो यों ही और 'वे', 'ये' आदर के लिए एकवचन

में प्रयोग होने लगा। इसप्रकार अस्पष्टता का संकट आया है। 'हम आ रहे हैं', 'तुम आओ', 'वे गये' , ये सो रहे हैं' जैसे वाक्यों को एकवचन का समझा जाए या बहुवचन का, अत: इस स्थिति से छुटकारा पाने के लिए बहुवचन में नए प्रयोग प्रयुक्त होने लगे हैं, जैसे- 'हम लोग', 'तुम लोग', 'ये लोग' आदि।

9) **आवश्यकता:-**

आवश्यकता होने पर भी कभी- कभी रूप में परिवर्तन कर देते है, यद्यपि यह बहुत कम है हिंदी में मैं का बहुवचन 'हम' तथा 'हम लोग' होता है। परंतु भोलानाथ तिवारी ने अपनी कविता में 'मैं' का बहुवचन 'मैंओ' बनाया है, क्योंकि वहाँ वे अपनी बात 'मैं', 'हम' अथवा 'हमलोग' से व्यक्त नहीं कर पा रहे थे- जैसे 'चार मैंओं के नीचे दबी यह मेरी लाश।'

10) **ध्वनि परिवर्तन:-**

ध्वनि परिवर्तन के कारण भी रूप परिवर्तन होता है। संयोगात्मक भाषाओं में ध्वनि- परिवर्तन के कारण जब विभक्तियाँ परिवर्तित होते-होते लुप्त हो जाती है तो उनके स्थान पर नई भाषिक इकाईयों का प्रयोग करना पडता है, जिनके कारण नए रूप बन जाते हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत के कारकीय रुपों के साथ यही हुआ। धीरे-धीरे विभक्तियाँ घिसते-घिसते लुप्त हो गई हैं। अत: परसर्ग - युक्त नये रूप प्रयोग में आए 'राम:' के स्थान पर 'राम ने', 'राम के', स्थान पर 'राम को' या 'रामस्य' के स्थान पर 'राम का' जैसे नये रूप इसी के परिमाण है।

11) **रूपों का लोप होना:-**

कुछ रुपों के लोप होने से नये रूप उनका स्थान ले लेते हैं, इसप्रकार प्रतिस्थापन- रूप हो जाता है। संस्कृत में 'या' धातु का भूतकालिक कृदंत का रूप था 'यात'। हिंदी में 'या' का 'जा' (जाता) हुआ किंतु 'यात' से विकसित रूप लुप्त हो गया। अत: 'जाना' का भूतकालिक कृदंती रूप 'गया' मान लिया गया है, जो वस्तुत: 'गम्' धातु के भूतकालिक कृदंती रूप 'गत' से विकसित है। इसी प्रकार अंग्रेजी में go का भूतकाल went है, जो मूलत: wend का भूतकाल है। हिंदी में तत्सम शब्द 'इंद्रिय' है जिसका मूल रूप बहुवचन 'इंद्रियें' बनेगा। मध्यकाल में 'इंद्री' शब्द चलता था जिसका मूल रूप बहुवचन 'इंद्रियों से बनता था। अब 'इंद्रियें' का लोप हो गया और 'इन्द्रियों को ही 'इंद्रिय' का मूल रूप बहुवचन मान लिया गया है, जो वस्तुत: है नहीं, न नियमानुसार हो सकता है।

3.3.3.2 रूप परिवर्तन की दिशाएँ :-

ऊपर रूप परिवर्तन के अनेक कारणों पर प्रकाश डाला है। इन कारणों से जो परिवर्तन होता है, उसकी भी विशिष्ट दिशाएँ होती है। विशेषत: रूप परिवर्तन की मुख्य दो दिशाएँ हैं -

1) एकरूपता की प्रधानता।

2) नवीन रुपों की उत्पत्ति।

1) **एकरूपता की प्रधानता:–**

वैविध्यगत जटिलताओं को दूर करने के लिए विविध रुपों में से किसी एक रूप को ही प्रचलित कर दिया जाता है, कभी अनेक रुपों में से कुछ ही रुपों को प्रचलित कर दिया जाता है, तब इस दिशा को 'एकरूपता की प्रधानता' कहा जाता है। यथा–

संस्कृत में 'तुभ्यं' का विकास तुज्झ्म > तुज्झ > तुझ क्रम में हुआ है, इसी प्रकार नियमानुसार 'मह्यं' का मज्झ्म > मज्झ > मझ होना चाहिए लेकिन हुआ है – मुझ। 'मझ' के स्थान पर 'मुझ' स्पष्ट करता है कि मानव क्लिष्टता को दूर कर सरल रूप बनने का आग्रह करता है।

अंग्रेजी में बहुवचन बनाने के लिए अनेक 'प्रत्ययों का प्रयोग होता था, लेकिन 'ड' प्रत्यय ही अब अधिकांश शब्दों में लगता है। इससे भी स्पष्ट होता है कि रूप– परिवर्तन वैविध्यमूलक जटिलता से एकरूपता की प्रधानता की ओर होता है।

2) **नवीन रुपों की उत्पत्ति:–**

इस दिशा को 'एकरूपता में अनेकरुपता' भी कहा जाता है। रुपों में जब अधिक एकरूपता आ जाती है जब अर्थ में अनिश्चयता आने के साथ – ही– साथ संदेह भी उत्पन्न हो जाता है। तब इस संदेह को दूर करने के लिए रुपों की एकरूपता को अनेकरुपता में विभाजित किया जाता है। विविधता, अस्पष्टता तथा अनावश्यक कष्ट से मानसिक मुक्ति मिलने के लिए ऐसा करना आवश्यक होता है। कभी–कभी नवीनता का आग्रह भी इसमें सहायक होता है। उदाहरण– हिंदी के परसर्ग, प्राकृत और अपभ्रंश में घिसकर अधिकांशत: एक रूप हो जानेवाली विभक्तियों के विरुद्ध नवीन एवं अनेक रुपों में विकसित जान पडते हैं

इसके अतिरिक्त भोलानाथ तिवारी जी की रूप परिवर्तन की दिशाएँ इस प्रकार है–

1) **पुराने संबंधों का लोप तथा नए का प्रयोग:–**

ध्वनि परिवर्तन से प्राय: पुराने संबंधतत्व जब लुप्त हो जाते हैं तो अर्थ की स्पष्टता के लिए नए संबंध तत्व जोडे जाने लगते हैं, और इस प्रकार परिवर्तित रूप प्रयोग में आने लगता है। संस्कृत राम:, रामस्य, रामे आदि के स्थान पर आज राम ने, राम को, राम का, राम में आदि का प्रयोग इसी का उदाहरण है।

2) **सादृश्य के कारण नये संबंधतत्व के साथ नए रूप:–**

संस्कृत 'अग्रे' का 'अग्गे' होना चाहिए था, किंतु प्राकृत में मिलता है 'अग्गिस'। स्पष्ट ही अकारांत शब्दों का प्रत्यय 'स्स' सादृश्य के कारण आ गया है। इसी प्रकार संस्कृत का 'वायों' का प्राकृत 'वाउस्य' भी। चला, पढा, आदि के सदृश्य पर 'क्रिया' के स्थान पर 'करा' अथवा चलिए, पढिए आदि के सादृश्य पर 'कीजिए' के स्थान पर 'करिए' अन्य उदाहरण है।

3) **अतिरिक्त प्रत्यय का प्रयोग:–**

अर्थात एक प्रत्यय के रहते दूसरे का भी प्रयोग – जवाहरात– जवाहरातों। यहाँ बहुवचन 'आत्' के रहते 'ओं' भी प्रयुक्त हुआ है। ऐसे ही जेवरातों, कागजातों, आदि अनेकों में 'ओं' प्रत्यय अतिरिक्त हैं जो वस्तुत: वही काम कर रहा है जो 'आत' 'दर असल में' में या 'दर' भी अतिरिक्त है।

4) **अतिरिक्त शब्द प्रयोग –**

सर्वश्रेष्ठ , सर्वोत्तम ऐसे ही तम बोधक रूप हैं, जिनका उल्लेख आठवें में किया जा चुका है।

5) **गलत प्रत्यय का प्रयोग:–**

'इंद्रियें' के स्थान पर 'इंद्रियां' रूप इसी प्रकार का है। ऐसा सादृश्य के कारण नहीं हुआ है। 'इंद्री' शब्द का प्रयोग लुप्त हो गया और दूसरी ओर 'इंद्रियें' का अंत 'इंद्रिय–इंद्रियां' को संबंध मान लिया गया।

6) **नया प्रत्यय:–**

'प्रभावशाली' के स्थान पर 'प्रभावी'। पहले 'प्रभाव'–शाली ही चलता था।

7) **आधा पुराना प्रत्यय या आधा नया:–**

'छठा' के स्थान पर 'छठवां' में 'छ' मूल शब्द है, 'छ' 'छठा', का पुराना प्रत्यय है तथा 'वां', 'पांचवां', 'सातावां' आदि के सादृश्य पर आया नया प्रत्यय है।

8) **मूल में परिवर्तन :–**

इससे भी रूप – परिवर्तन होता है। ' मुझको' के स्थान पर 'मेरे को' अथवा 'तुझको' के स्थान पर 'तेरे को' में वही प्रत्यय है, केवल मूल बदल गया है।

9) **मूल और प्रत्यय दोनों का परिवर्तन:–**

ऐसा कम होता है, अंग्रेजी में go का भूतकाल went इसी प्रकार का है।

3.7 सारांश

रूप विज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग रुपिम विज्ञान है। रुपिम भाषा की सबसे लघुत्तम सार्थक इकाई है, जिसे पुनश्च्य खंडित नहीं कर सकते। रुपिम के इस स्वरूप को विविध उदाहरणों माध्यम से स्पष्ट किया गया है। इसके साथ पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों द्वारा जो रुपिम की परिभाषाएं दी गयी है उसे प्रस्तुत कर, रुपिम के स्वरूप को बताने का प्रयास किया है। इन परिभाषाओं से यही स्पष्ट होता है कि वाक्य में प्रयुक्त छोटी से छोटी सार्थक इकाई रुपिम होती है, जो अर्थतत्व और संबंध तत्व दोनों से जुडी रहती हैं।

रुपिम के स्वरूप को देखने के बाद यह ज्ञात हुआ कि रुपिम निर्धारण के अनेक सूत्र होते हैं जिनपर आधारित रुपिम का रूप तैयार होता है। परिणामस्वरूप रुपिम के अनेक भेद मिलते हैं। जो रचना, उनके

प्रयोग, अर्थ तथा संबंध तत्व एवं खंडता या अखंडता के आधार पर किए जाते हैं। प्रयोग के आधार पर तीन भेद मिलते हैं- मुक्त रुपिम, बद्ध रुपिम, मुक्त-बद्ध रुपिम तो रचना, अर्थ तथा संबंध तत्व एवं खंडता या अखंडता के आधार पर दो-दो भेद मिलते हैं।

रुपिम रूप का एक अंग है, इसीलिए यहाँ रूप को भी समझने का प्रयास किया है। रूप के परिवर्तनों कारणों पर प्रकाश डाला है। जिसमें नियमन, स्पष्टता, बहुप्रयुक्त रुपों का प्रभाव, अज्ञान, बल, आवश्यकता, नवीनता, रुपों के लोप, ध्वनि परिवर्तन आदि कारणों पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

यह रूप परिवर्तन किन दिशाओं में होता हैं, इसे भी इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया हैं। रूप परिवर्तन मुख्यत: दो दिशाओं में होता हैं- 1) एकरूपता की प्रधानता 2) नवीन रुपों की उत्पत्ति। इसके अतिरिक्त भोलानाथ तिवारी जी ने जो रूप परिवर्तन जो दिशाएं दी हैं, उनपर भी विस्तार से विवेचन किया है।

इसतरह रुपिम में रूपग्रामों, संरुपों, संयुक्त रूपग्रामों, मिश्रित रुपग्रामों का अध्ययन किया जाता है जिसमें रुपों की अपनी भूमिका है।

3.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

अ. उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) परंपरागत भाषाविज्ञान में व्याकरणात्मक वर्णन में मुख्यत: ..... इकाईयाँ होती है।

अ) एक आ) दो इ) तीन ई) चार

2) ..... को ही व्याकरणिक स्तर की लघुत्तम सार्थक इकाई के रूप में मान्यता प्राप्त है।

अ) शब्द आ) वाक्य इ) रुपिम ई) पद

3) ..... का अध्ययन रूपविज्ञान का एक प्रमुख अंग है।

अ) शब्द आ) वाक्य इ) रुपिम ई) पद

4) रुपिम को..... भी कहा जाता है।

अ) शब्द आ) रुपग्राम इ) रुपिम ई) पद

5) रुपिम की संरचना एक या एक से अधिक..... से होती हैं।

अ) शब्दों आ) स्वनिमों इ) रुपों ई) वाक्यों

6) रुपिम भाषा उच्चारण की ..... अर्थवान इकाई है।

अ) व्यापक आ) महत्तम इ) लघु ई) लघुत्तम

7) 'परमेश्वर' एक अर्थिम है, जबकि इसमें 'परम' और 'ईश्वर' दों..... है।

अ) शब्द आ) वाक्य इ) रुपिम ई) पद

8) सभी रुपिम ..... के अनुक्रम होते हैं।

अ) शब्दों आ) वाक्यों इ) स्वनों ई) पदों

9) भाषावैज्ञानिक नाइडा ने ..... सूत्रों के आधार पर रुपिमों के निर्धारण की व्यवस्था दी है।

अ) एक आ) दो इ) छः ई) पाँच

10) ..... अलग-अलग रुपिम होते हैं।

अ) अर्थतत्व और पदतत्व आ) वाक्य और संबंधतत्व

इ) अर्थतत्व और रूपतत्व ई)अर्थतत्व और संबंधतत्व

11) जिन दो या दो से अधिक समानार्थी रुपों के एक रुपिम के अंग होने का संदेह होता है, उन्हें ..... या 'संदिग्ध युग्म' कहते हैं।

अ) संदिग्ध समूह आ) संदिग्ध प्रत्यय इ) संदिग्ध पद ई) संदिग्ध रूप

12) रूपांश या रुपिम के विभिन्न प्रतिनिधिक रूप को ..... कहते हैं।

अ) स्वरूप आ) पदरूप इ) उपरूप ई) प्रारूप

13) 'राम ने रावण को बाण से मारा' इस वाक्य में रावण ..... द्योतक है।

अ) कर्म आ) कर्ता इ) करण ई) क्रिया

14) एक ही रुपिम के समानार्थक रुपों को .....कहते हैं।

अ) स्वरूप आ) पदरूप इ) प्रारूप ई) संरूप

15) किसी भाषा के उच्चार में..... न्यूनतम स्वतः अर्थवान तत्व होते हैं।

अ) शब्द आ) वाक्य इ) रुपिम ई) पद

16) ..... भाषा या वाक्य का ऐसा सार्थक खंड है, उसे पुनश्च्य खंडित नहीं किया जा सकता।

अ) शब्द आ) वाक्य इ) रुपिम ई) पद

17) 'रुपिम परिपूरक क्रिया की इकाइयों का समूह है' रुपिम की यह परिभाषा ..... ने की है।

अ) एडम्स आ) ग्लीसन इ) भोलानाथ तिवारी ई) बाबूराव सक्सेना

18) ''रुपिम एक या एक से अधिक ऐसे रुपों का समूह है, जो भिन्न संदर्भों में (भिन्न शब्दों में) एक ही अर्थ एवं एक ही प्रकार्य के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।' रुपिम की यह परिभाषा ..... ने की है।

अ) एडम्स आ) बाबूराव सक्सेना

इ) भोलानाथ तिवारी ई) ग्लीसन

19) "Any form whether bound or free, which can not be divided into smaller meaning full parts is a morpheme." रुपिम की यह परिभाषा ..... ने की है।

अ) एडम्स आ) ग्लीसन इ) ब्लाक अंड ट्रेगर ई) बाबूराव सक्सेना

20) ''वाक्य की सार्थक लघुत्तम इकाई को, जिसका संबंध भाषा के रूप पक्ष से रहता है और अर्थ पक्ष से भी रुपिम कहा जाता है।'' रुपिम की यह परिभाषा ..... ने की है।

अ) भोलानाथ तिवारी आ) हणमंतराव पाटील

इ) ब्लाक अंड ट्रेगर ई) डॉ. रत्न शर्मा

21) ''रुपिम वस्तुत: परिपूरक वितरण या मुक्त वितरण में आए हुए सहपदों का समूह हैं।'' रुपिम की यह परिभाषा ..... ने की है।

अ) भोलानाथ तिवारी आ) हणमंतराव पाटील

इ) डॉ. उदय नारायण तिवारी ई) डॉ. रत्न शर्मा

22) ''वाक्य में प्रयुक्त छोटी से छोटी सार्थक इकाई रुपग्राम या रुपिम होती है।'' रुपिम की यह परिभाषा ..... ने की है।

अ) भोलानाथ तिवारी आ) डॉ. कर्ण सिंह इ) डॉ. उदय नारायण तिवारी ई) डॉ. रत्न शर्मा

23) ''भाषा या वाक्य की लघुतम सार्थक इकाई रुपिम है।'' रुपिम की यह परिभाषा ..... ने की है

अ) भोलानाथ तिवारी आ) डॉ. कर्ण सिंह

इ) डॉ. उदय नारायण तिवारी ई) डॉ. रत्न शर्मा

24) प्रयोग के आधार पर रुपिम के ..... भेद किए जाते हैं।

अ) एक आ) दो इ) तीन ई) चार

25) जो रुपिम या रुपग्राम वाक्य में स्वतंत्र रूप से प्रयोग में आते हैं, उन्हें ..... कह सकते हैं।

अ) बद्ध रुपिम आ) मुक्त रुपिम इ) बद्ध-मुक्त रुपिम ई) मुक्त-बद्ध रुपिम

26) 'पाठशाला' ..... रुपिम का उदाहरण है।

अ) बद्ध आ) मुक्त इ) बद्ध-मुक्त ई) मुक्त-बद्ध

27) जो रुपग्राम अन्य तत्वों के सहयोग के बिना प्रयोग में नहीं आ सकते हैं, उन्हें ..... कह सकते हैं।

अ) बद्ध रुपिम आ) मुक्त रुपिम इ) बद्ध-मुक्त रुपिम ई) मुक्त-बद्ध रुपिम

28) जो रुपिम स्वतंत्र तो लगते है, परंतु वाक्य में किसी दूसरे शब्द के अस्तित्व के लिए ही प्रयुक्त होते, उन्हें ..... कह सकते है।

अ) बद्ध रुपिम आ) मुक्त रुपिम इ) बद्ध-मुक्त रुपिम ई) मुक्त-बद्ध रुपिम

29) रचना के आधार पर रुपिम के ..... भेद होते हैं।

अ) एक आ) दो इ) तीन ई) चार

30) "Counduct' ..... रुपिम का उदाहरण है।

अ) अधिखंडात्मक आ) विखंडात्मक इ) खंडात्मक ई) प्रखंडात्मक

31) संस्कृत में मूल शब्द को ..... कहते हैं।

अ) प्रातिपादिक आ) प्रातिनिधिक इ) प्रारंभिक ई) प्रागैतिहासिक

32) रूप परिवर्तन की मुख्य..... दिशाएँ हैं।

अ) एक आ) दो इ) तीन ई) चार

33) ..... का कार्य है अर्थ तत्वों का आपस में संबंध दिखाना।

अ) संबंधतत्व आ) मूल तत्व इ) अर्थतत्व ई) प्रातिपादिक

34) 'कीजिए' के स्थान पर 'करिए' यह रूप ..... कारण प्रयुक्त होने लगा है।

अ) नियमन आ) स्पष्टता इ) ध्वनि ई) प्रातिपादिक

35) ध्वनि- परिवर्तन के कारण जब विभक्तियाँ परिवर्तित होते-होते लुप्त हो जाती है, तो उनके स्थान पर नई ..... इकाईयों का प्रयोग करना पडता है।

अ) रूपिक आ) क्रमिक इ) भाषिक ई) प्रातिपादिक

ब. 'गुट अ' का 'गुट ब' के साथ उचित मिलान कीजिए।

गुट अ	गुट ब
1) राम	अ) भूतकाल की क्रिया का चिह्न है।
2) ने	आ) करण कारक द्योतक है।
3) रावण	इ) साधन है तथा करण कारक है।

4) को ई) क्रिया है।

5) बाण उ) व्यक्ति तथा वाक्य का कर्म कारक है।

6) से ऊ) कर्ता कारक का द्योतक है अर्थात विभक्ति कारक है।

7) मार ए) कर्म कारक का द्योतक है अर्थात विभक्ति कारक है।

8) आ ऐ) व्यक्ति तथा वाक्य का कर्ता कारक है।

क. निम्नलिखित वाक्यों में से सही और गलत वाक्य की पहचान कीजिए।

1) रुपिम वाक्य की सबसे लघुत्तम सार्थक अर्थवान इकाई नहीं है।

2) रूप विज्ञान में वाक्यों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

3) जिन रुपिमों का खंडन संभव होता उन्हें खंडात्मक रुपिम कहते हैं।

4) मुक्त रुपिम को खंडित नहीं किया जा सकता।

5) रचना के आधार पर रुपिम के तीन भेद होते हैं।

3.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1) रुपिम :- वाक्य की सबसे लघुत्तम सार्थक इकाई।

2) रुपग्राम :- शब्दों का रूप समूह।

3) स्वनिमिक :- उच्चारण करते वक्त कभी एक अक्षर पर तो कभी दूसरे अक्षर पर बल अधिक होता है, उच्चारण के इस गुण को स्वनिमिक कहते हैं।

4) संरूप :- एक ही रुपिम के समानार्थक रुपों को संरूप कहते हैं।

5) सानुबंध :- अनुबंधयुक्त।

6) तुभ्यं :- तुम्हारे लिए।

7) परिपूरक :- परिपूर्ण करनेवाला।

8) प्रतिपादक :- किसी मत को स्थापित करनेवाला।

9) अर्थग्राम :- अर्थतत्व को ही अर्थग्राम कहते हैं।

10) रसोईघर :- भोजनालय।

11) अधिखंडात्मक:- स्वनिमों का भाषा व्यवहार में प्रयोग करते समय उनके साथ कुछ ऐसे भाषिक तत्व भी आ जाते हैं जो स्वयं 'स्वन' या 'ध्वनि' नहीं होते, किंतु शब्द या वाक्य पर उनका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पडता है, ऐसे भाषिक अभिलक्षणों को अधिखंडात्मक कहा जाता है।

3.7 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए

1) दो	2) शब्द	3) रुपिम	4) रुपग्राम
5) स्वनिमों	6) लघुत्तम	7) रुपिम	8) स्वनों
9) छ:	10) अर्थतत्व और संबंधतत्व		11) संदिग्ध समूह
12) उपरूप	13) कर्म	14) संरूप	15) रुपिम
16) रुपिम	17) ग्लीसन	18) एडम्स	19) ब्लाक अंड ट्रेगर
20) डॉ. रत्न शर्मा	21) डॉ. उदय नारायण तिवारी		22) डॉ. कर्ण सिंह
23) भोलानाथ तिवारी	24) तीन	25) मुक्त रुपिम	26) मुक्त
27) बद्ध रुपिम	28) मुक्त-बद्ध रुपिम	29) दो	30) खंडात्मक
31) प्रातिपादिक	32) दो	33) संबंधतत्व	34) नियमन
35) भाषिक			

ब) उचित मिलान कीजिए।

गुट अ	गुट ब
1) राम	ऐ
2) ने	ऊ
3) रावण	उ
4) को	ए
5) बाण	इ
6) से	आ
7) मार	ई
8) आ	अ

क) सही या गलत स्पष्ट कीजिए।

1) गलत	2) गलत
3) सही	4) सही

5) गलत

3.8 स्वाध्याय

प्रश्न 1:- रुपिम के स्वरूप पर प्रकाश डालकर, उसके भेदों का संक्षेप में परिचय दीजिए।

प्रश्न 2 :- रूप परिवर्तन के कारण और दिशाओं का विवेचन कीजिए।

3.9 क्षेत्रीय कार्य

1) रुपिमों के भेदों पर आधारित रुपिमों की सूची बनाइएँ।

2) रूप - परिवर्तनों के कारण परिवर्तित हुए शब्दों का संग्रह कीजिए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1) तिवारी भोलानाथ (1993) - भाषाविज्ञान - किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद

2) डॉ. पाटील हणमंतराव (2005) - भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा - विद्या प्रकाशन, कानपुर

3) डॉ. शर्मा रामकिशोर (2016) - आधुनिक भाषा विज्ञान के सिद्धांत - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

4) डॉ. शास्त्री मंगलदेव (1956) - तुलनात्मक भाषाशास्त्र अथवा भाषा विज्ञान- बनारस इंडियन प्रेस प्राइवेट लिमिटेड, प्रयाग

5) डॉ. पाठक जितराम (1991) - भाषाविज्ञान सिद्धांत और स्वरूप- अनुपम प्रकाशन, पटना

6) सक्सेना बाबूराम (2000) -सामान्य भाषा विज्ञान - हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

❑❑❑

इकाई–4
वाक्य विज्ञान

अनुक्रम– रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 विषय विवरण

4.2.1 वाक्य विज्ञान संकल्पना और स्वरूप

4.2.2 वाक्य विश्लेषण और प्रकार

4.3.3 वाक्य परिवर्तन के कारण

4.3 सारांश

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 स्वाध्याय

4.8 क्षेत्रीय कार्य

4.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई पढ़ने के उपरांत आप --

- वाक्य विज्ञान की संकल्पना और स्वरूप को जान सकेंगे।
- वाक्य विश्लेषण और प्रकारों को समझ सकेंगे।
- वाक्य परिवर्तन के कारणों को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना :

भाषा विज्ञान के प्रधान चार अंग है– ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान और अर्थ विज्ञान। वाक्य भाषा की सहज और स्वाभाविक इकाई है। वाक्यों द्वारा ही पारस्परिक विचार विनिमय होता है। अतः वाक्य विज्ञान भाषा विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है। वाक्य विज्ञान के अंतर्गत वाक्य की परिभाषा, वाक्यों की

संरचना, वाक्यों के मूल आधार, वाक्यों का विश्लेषण और प्रकार, वाक्य परिवर्तन के कारण आदि का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक अध्ययन होता है। वाक्य की संकल्पना और स्वरूप क्या है ? वाक्य विश्लेषण और प्रकार तथा वाक्य परिवर्तन के कारण आदि प्रश्नों के संदर्भ में हम प्रस्तुत इकाई में अध्ययन करेंगे।

4.2 विषय विवरण :

4.2.1 वाक्य विज्ञान संकल्पना और स्वरूप :

भाषा का मुख्य व्यापार विचारों का अदान-प्रदान है, जो वाक्यों के द्वारा होता है। वाक्य भाषा की सबसे सहज और स्वाभाविक इकाई है। भाषा का कार्य विचार विनिमय है। इसका माध्यम वाक्य है। वाक्यों के द्वारा ही पारस्परिक विचार विनिमय होता है। वाक्य विज्ञान भाषा विज्ञान का महत्वपूर्ण अंग है। भाषा विज्ञान में वाक्य के अध्ययन के विभाग को 'वाक्य विज्ञान' या 'वाक्य विचार' कहा जाता है। इसके अंतर्गत वाक्य की परिभाषा, वाक्यों की संरचना, वाक्यों के प्रकार, वाक्य के मूल आधार, उसके आवश्यक उपकरण, वाक्यों के निकटस्थ अवयव आदि का मनोवैज्ञानिक और सुक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है। यह अध्ययन करते समय भाषा में वाक्य प्रयोग की स्थिति और उसके अर्थ पर भी विचार किया जाता है। वस्तुत: विविध पदों से वाक्य का निर्माण होता है, अत: वाक्य विज्ञान के अंतर्गत वाक्य के पद-विन्यास संबंधी अध्ययन एवं विवेचन होता है।

भाषा का मुख्य कार्य भावों की अभिव्यक्ति है। भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य के माध्यम से होती है। वाक्य के अभाव में भाव या विचार की स्थिति संदिग्ध हो जाएगी। वास्तव में भाव मन में अव्यक्त वाक्य के रूप में विद्यमान होते हैं। ध्वनि-प्रतीकों या लिपि चिह्नों का आधार पाने पर वाक्य का व्यक्त रूप सामने आता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मनुष्य जो भी सोचता या अभिव्यक्त करता है, जो भी बोलता है, किसी भाव को हृदयगम करता है, वह सब वाक्य के ही माध्यम से होता है। भावाभिव्यक्ति के संदर्भ में वाक्य भाषा की सहज तथा प्रथम इकाई है।

वाक्य रचना का स्वरूप:

'वाक्य विज्ञान' में 'वाक्य गठन' का अध्ययन, विश्लेषण होता है। 'वाक्य विज्ञान' से तात्पर्य है - पद से वाक्य बनाने की प्रक्रिया। यह अध्ययन तीन प्रकारों से होता है। इस प्रक्रियाओं के आधार पर तीन उपशाखाएँ बनती है।

(i) वर्णनात्मक वाक्य विज्ञान, (ii) तुलनात्मक वाक्य विज्ञान, (iii) ऐतिहासिक वाक्य विज्ञान।

(i) **वर्णनात्मक वाक्य विज्ञान :-** इसमें किसी भाषा में किसी एक काल में प्रचलित वाक्य गठन का अध्ययन किया जाता है।

(ii) **तुलनात्मक वाक्य विज्ञान :-** इसमें दो या अधिक भाषाओं का वाक्य गठन की दृष्टि से किए गए अध्ययन की तुलना करके साम्य और वैषम्य देखा जाता है।

(iii) **ऐतिहासिक वाक्य विज्ञान:–** इसमें एक ही भाषा के विभिन्न कालों का अध्ययन कर वाक्य गठन की दृष्टि से उसका इतिहास प्रस्तृत किया जाता है।

वाक्य की परिभाषा :

विभिन्न विद्वानों ने वाक्य की परिभाषा देकर वाक्य संकल्पना और स्वरुप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वाक्य को प्राय: लोग सार्थक शब्दों का समूह मानते हैं जो भाव को व्यक्त करने की दृष्टि से अपने आप में पूर्ण हो।

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों की परिभाषाएँ –

1. **पतंजलि –** के 'महाभाष्य' में वाक्य की परिभाषा इस प्रकार मिलती है, ''आख्यात साव्यकारक विशेषण वाक्यम्।'' अर्थात जहाँ क्रिया अव्यय, कारक तथा विशेषण पद एकत्र हो, उसे वाक्य कहते हैं।
2. **आ. विश्वनाथ** – ने 'साहित्य दर्पण' में लिखा है, ''वाक्यं स्यासद् योग्यता कांक्षासक्ति युक्त: पदोच्चयः।'' अर्थात पदों का वह समूह जो योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति से युक्त हो उसे वाक्य कहते हैं।
3. **डॉ. भोलानाथ तिवारी** – ने 'भाषा विज्ञान' में वाक्य की परिभाषा इस प्रकार की है – ''वाक्य भाषा की सहज इकाई है, जिसमें एक या अधिक शब्द हो, जो अर्थ की दृष्टि से पूर्ण हो या अपूर्ण हो या अपूर्ण व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ठ संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है।''
4. **पं. कामताप्रसाद गुरू–** हिंदी के प्रसिद्ध व्याकरणकार ने 'हिंदी व्याकरण' में वाक्य की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''एक पूर्ण विचार व्यक्त करने वाला शब्द समूह वाक्य कहलाता है।''
5. **आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा**– के अनुसार, ''भाषा की न्यूनतम पूर्ण सार्थक इकाई वाक्य है।''
6. **डॉ. श्याम मिश्र** – ''संबंध तत्व और अर्थ तत्व से संयत ऐसे रूपों या पदों की संगठित ध्वनियों को वाक्य कहते हैं कि जो एक बात या विचार को पूर्णतया अभिव्यंजित करके श्रोता या पाठक तक संप्रेषित करता है।''
7. **आचार्य भर्तृहरी** – के अनुसार, ''पदे न वर्णा विद्यन्ते वर्णेषु अवयवा न च। वाक्यांत् पदानामत्यन्तं प्रविवेको न कश्चन।''

अर्थात पदों में वर्णों की स्वतंत्र सत्ता नहीं है और न वर्णों में अवयवों की। काव्य के अतिरिक्त पदों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है।

8. **डॉ. अंबाप्रसाद 'सुमन'**– ''वाक्य भाषा की लघुत्तम पूर्ण स्वतंत्र इकाई है, जो विचार की ध्वनिमयी सार्थक अभिव्यक्ति है। इस ध्वनिमयी सार्थक अभिव्यक्ति में शब्द समूह भी हो सकता है और एक शब्द भी।''

9. **डॉ. मनमोहन गौतम–** ''व्याकरण के अनुसार वाक्य सार्थक शब्दों का वह समूह है, जो एक भाव व्यक्त करता है।....भाव को व्यक्त करने के लिए एक शब्द भी वाक्य का कार्य कर सकता है।''

10. **डियोनिसियस थ्रॅक्स** – ''पूर्ण अर्थ की प्रतीति करानेवाला शब्द समूह वाक्य है।''

'वाक्य शब्दों का समूह है' का अर्थ है– वाक्य एक या अधिक शब्दों का होता है, पर यह बात भी पूर्णत: ठीक नहीं है। एक शब्द के भी वाक्य होते हैं। बातचीत में प्रायः वाक्य एक शब्द के होते हैं। छोटा बच्चा भूख लगने पर जब माँ से 'बिछकुट' (बिस्कुट) कहता है तो इस एक शब्द के वाक्य से ही वह अपना पूरा भाव व्यक्त कर देता है।

11. **प्रा. कृ. ज. वेदपाठक–** ''वाक्य उसे कहते हैं, कि जो भाषा की स्वतंत्र एवं सार्थक इकाई है, फिर चाहे संदर्भ के अनुसार उसमें एक या अनेक पद हो।''

12. **अरस्तू के अनुसार** – "A Sentence is a composite significant sound of whic certain parts of themselves signify themselves for every sentences is composed from nouns and verbs, but there may be sentence without verb."

अर्थात वाक्य सार्थक ध्वनियों का समूह है, जिससे किसी भाव की अभिव्यक्ति होती है। प्रत्येक वाक्य संज्ञा और क्रिया से बनता है, किंतु क्रिया के बिना भी वाक्य रचना हो सकती है।

13. **ब्लूमफील्ड** – ''वाक्य एक स्वतंत्र रूप है, जो किसी भी व्याकरणात्मक रचना के कारण किसी भी बृहत्तर भाषात्मक (आकृति) में अंत: निर्विष्ट नहीं होता।'' जैसे– रोहन क्रिकेट में भाग नहीं लेगा, कल कौन दिन पड़ेगा। दोनों वाक्य स्वतंत्र इकाई के उदा. है।

14. **जान लियोन्स –** ''वाक्य व्याकरण – वर्णन की सबसे बड़ी इकाई है।''

15. **आर. एच. रोबिन्स** – ''वाक्य वह वाक्खंड है, जिसका उच्चारण परिपूर्ण अतुलनीय लय के साथ किया जा सकता है।''

मीमांसको के अनुसार वाक्य की परिभाषा :

1. **अभिहितान्वयवाद** – इस वाद के प्रवर्तक आचार्य कुमारिल भट्ट है। मीमांसकों में पद और वाक्य को लेकर विवाद रहा है। कुमारिल भट्ट के अनुसार, ''वाक्य में पद की सत्ता प्रधान मानी जाती है, पदों के मिलने से ही वाक्य बनता है। अतः पदों या शब्दों का समूह ही वाक्य है। पद के अतिरिक्त वाक्य का कोई महत्त्व नहीं है।''

2. **अन्विताभिधानवाद** – इस वाद के प्रवर्तक आचार्य प्रभाकर गुरू है, जो कुमारिल भट्ट के शिष्य है। उनके अनुसार, ''वाक्य की ही सत्ता मुख्य है। वाक्य को तोड़ने से पद बनते हैं।'' इस प्रकार इस वाद में वाक्य को महत्त्व दिया गया है। अभिहितान्वयवाद को 'पदवाद' और अन्विताभिधानवाद को 'वाक्यवाद' कह सकते हैं।

वाक्यवाद के अनुसार पदों की अलग से सत्ता नहीं है। वे वाक्य के ही अंग है। अतः वाक्य ही भाषा की सार्थक इकाई है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि वाक्य वह है जो शब्द रूप में पूर्ण उच्चार है। इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने अपने– अपने विचारों के आधार पर वाक्य की परिभाषा देकर वाक्य विज्ञान की संकल्पना और स्वरूप को स्पष्ट किया है। वस्तुतः वाक्य की कोई परिपूर्ण ऐसी परिभाषा दे पाना काफी कठिन है, जो दुनिया की सभी भाषाओं पर लागू हो।

इन परिभाषाओं में ध्यान देने योग्य बातें–

1. वाक्य भाषा की सहज इकाई है :–

भाषा की लघु या छोटी इकाई ध्वनि है, क्योंकि ध्वनियों के योग से शब्द बनते हैं और शब्दों के योग से वाक्य, किंतु भाषा की सहज इकाई वाक्य है। रूप, शब्द, अक्षर, ध्वनि आदि इकाईयाँ उसकी तुलना में कृत्रिम है। आधुनिक भाषाविज्ञान में भी अन्विताभिधानवाद (वाक्यवाद) के समान वाक्य भाषा की सर्वप्रथम इकाई के रूप में विवेचन किया जाता है। उसके पश्चात पद और ध्वनि का अध्ययन होता है। इस मत के अनुसार वाक्य भाषा की वास्तविक इकाई है। अन्य इकाईयाँ काल्पनिक है।

मनोवैज्ञानिक चिंतन – करने से यह तथ्य तर्क संगत लगता है कि विचार एक अखंड भाव प्रवाह है, जो किसी प्रकार बाधित नहीं होता है। ऐसी अभिव्यक्ति मात्र वाक्य से ही संभव है, अन्य इकाईयों से नहीं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव मन में वाक्य अव्यक्त रूप में विद्यमान होते हैं, ध्वनि–प्रतीकों या लिपि चिह्नों का आधार पाने पर वे व्यक्त रूप में सामने आते हैं। भावाभिव्यक्ति के संदर्भ में वाक्य भाषा की सहज और प्रथम इकाई है। प्राचीन भारतीय भाषा चिंतन के आधार पर ध्वनि भाषा की लघुत्तम इकाई थी।

आधुनिक भाषा चिंतन– में भावाभिव्यक्ति को सर्वाधिक महत्त्व देने के कारण वाक्य भाषा की प्रथम इकाई सिद्ध हुई। भाषा को भावाभिव्यक्ति का साधन कहते हैं, अतः उक्त विचार तर्कसंगत लगता है। बच्चा भाषा प्रयोग के प्रारंभिक चरण में वाक्य का ही प्रयोग करता है। ऐसे क्षण बच्चे के मन में विचार–प्रवाह चलता रहता है। प्रारंभ में इस विचार प्रवाह का वाक्यात्मक रूप मात्र एक ध्वनि के रूप में प्रकट होता है। बच्चा अपने परिवेश के निकट के व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त भाषा की सरल ध्वनि को अपनाता है। भूख लगने पर बच्चा 'आ' ध्वनि निकालता है। बच्चे की इस ध्वनि का वाक्यात्मक स्वरूप होगा आओ, भूख लगी है, दूध दे दो। श्रोता ध्वनि के संदर्भ में उसका वाक्यात्मक रूप पूरी तरह समझ जाता है। संदर्भ – ज्ञान

के अभाव में बच्चे के मन का विचार या ध्वनि का वाक्यात्मक रूप समझना कठिन हो सकता है, किंतु संदर्भ से जुड जानेपर सहज ज्ञान हो जाता है। उद्देश्य और विधेय वाक्य के दो अंग है।

बुद्धि–विकास– क्रम– में बच्चा भाषा–अर्जन के माध्यम से शब्दों के अशुद्ध रूप का प्रयोग करने लगता है। उसके उच्चारण की विशेष प्रक्रिया में भी वाक्यात्मक रूप छिपा होता है। उदा. देखिए– 1) बच्चे का वाक्य 'पा' / संदर्भ –विशेष – 'प्यास की स्थिति' / सामान्य वाक्य रूप 'मुझे प्यास लगी है।' 2) बच्चे का वाक्य – 'हप्पा' / संदर्भ– विशेष – भूख की स्थिति / सामान्य वाक्य रूप 'भूख लगी है। मुझे –खाना दो।'

बालक जब एक–एक शब्द का शुद्ध उच्चारण करने लग जाता है, तब वाक्य का एकपदीय रूप सामने आ जाता है। जैसे– प्यास लगने पर बालक के वाक्य का एकपदीय रूप–'पानी' / मैं पापा के साथ जाऊँगा, इस संदर्भ में बालक के वाक्य का एकपदीय रूप 'पानी' 'पापा' आदि है।

2) वाक्य में एक या एक से अधिक शब्द (पद) :–

प्रायः भाषा में एक से अधिक शब्द होते हैं, किंतु बातचीत में प्रायः वाक्य एक शब्द के भी होते हैं। विशिष्ट संदर्भ में 'हाँ', 'आवों', 'जाओ', 'खाओं', 'बैठो', 'लिखो', 'नहीं' वाक्य ही है। ये 'एक शब्दीय वाक्य' पूरे वाक्य के अन्य शब्दों के लोप से बने होते हैं।

3) वाक्य में अर्थ की पूर्णता हो सकती है और नहीं भी :

अर्थ की पूर्णता वाक्य में हो भी सकती है। जैसे –

1) दो और दो चार होते हैं। 2) सूरज पश्चिम में डूबता है।

अर्थ की पूर्णता वाक्य में नहीं भी। जैसे–

1) उसने उससे कहा था। 2) उस समय वह भी गायब था।

उपर्युक्त दो वाक्य है, लेकिन अर्थ की दृष्टि से ये स्पष्ट और अपूर्ण है। इस तरह वाक्य के लिए आर्थ की पूर्णता आवश्यक नहीं है।

4) व्याकरणिक दृष्टि से वाक्य पूर्ण होता है :–

व्याकरण की पूर्णता अर्थ की पूर्णता से भिन्न होती है। व्याकरण की पूर्णता का अर्थ है – ''विशिष्ठ संदर्भ में वाक्य के लिए व्याकरण की दृष्टि से अपेक्षित सभी पदों अथवा शब्दों का होना।'' ऊपर के उदा. 'उसने उससे कहा था।' 'उस समय वह भी गायब था।' आदि वाक्य अर्थ की दृष्टि से पूरी बात का बोध कराने में असमर्थ होते हुए भी व्याकरण की दृष्टि से पूर्ण है, क्योंकि उनमें कर्ता, कर्म, क्रिया आदि अपेक्षित सभी क्रम से है। इस प्रकार की व्याकरण की पूर्णता सभी वाक्यों के लिए आवश्यक है।

5) व्याकरणिक पूर्णता कभी – कभी संदर्भ पर भी निर्भर करती है :–

व्याकरणिक दृष्टि से वाक्य कभी– कभी पूर्ण होते हैं, किंतु कभी–कभी बोलचाल में, साहित्यिक रचनाओं में कथोपकथन आदि में व्याकरण की दृष्टि से अपेक्षित सारे शब्द नहीं होते। वे लुप्त रहते हैं। ऐसे

वाक्यों की व्याकरणिक पूर्णता संदर्भ विशेष पर निर्भर रहती है। पाठक संदर्भ लेकर उनके लुप्त शब्दों को जोड़कर अर्थ को समझ लेता है।

उदा. प्रेम – तुमने चाय पी ली?

साकेत – नहीं। और तुमने?

प्रेम – हाँ।

वाक्य की आवश्यकताएँ, वाक्य के मूलाधार अनिवार्य तत्त्व :

भारतीय आचार्यो एवं भाषा वैज्ञानिकों ने समय– समय पर वाक्य के अनिवार्य तत्त्वोंपर विचार किया है। भारतीय दृष्टि से वाक्य के लिए पाँच बातें आवश्यक है– सार्थकता, योग्यता, आकांक्षा, सन्निधि और अन्विति। आचार्य कुमारिल भट्ट ने काव्य के तीन अनिवार्य तत्त्व बताए हैं – आकांक्षा, योग्यता और आसक्ति। आचार्य विश्वनाथ ने भी 'साहित्य दर्पण' में इन्हीं तीन अनिवार्य तत्त्वों की ओर संकेत किया है। ''वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासत्ति' युक्तः पदोच्चयः।''

1) **योग्यता :** वाक्य के संबंध में योग्यता का अर्थ है– अर्थ की दृष्टि से एक पद का दूसरे पद के साथ संबंध भाव में बाधा न होना। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार योग्यता का आशय यह है कि शब्दों की आपस में संगति बैठे। शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव का बोध कराने की योग्यता या क्षमता हो। जब कोई वाक्य व्याकरण की दृष्टि से योग्य हो, लेकिन अर्थ की दृष्टि से अयोग्य हो, तो वह वाक्य नहीं होगा। उदा.

1) ''वह पेड़ के पत्थर से सिंचता है।'' इस वाक्य में शब्द तो सार्थक है, किंतु पत्थर से सिंचता नहीं होता, इसीलिए यह वाक्य अर्थ की दृष्टि से अयोग्य है, क्योंकि पत्थर से सिंचन का कार्य नहीं होता है। सिंचन का कार्य पानी से होता है।

2) ''वह पानी खा रहा है।'' यह वाक्य व्याकरण की दृष्टि से योग्य है, किंतु अर्थ की दृष्टि से अयोग्य है, क्योंकि पानी खाया नहीं जाता। पानी पिया जाता है। दोनों में शब्दों की परस्पर योग्यता की कमी है, इसलिए यह सामान्य अर्थ में वाक्य नहीं है। ऊपर के दोनों पद समूह तभी वाक्य की योग्यता प्राप्त कर पाएंगे जब वे इन रूपों में होंगे – 'वह पेड को पानी से सिंचता है।' और 'वह पानी पी रहा है।' इनमें शब्दों की आपस में संगति है। शब्दों में प्रसंगानुकूल भाव का बोध कराने की योग्यता या क्षमता होती है। ऐसे वाक्यों को ही समाज की मान्यता होती है। संक्षेप में, शब्दों में भाव या विचार को प्रकट करने की योग्यता होनी चाहिए।

2) **सार्थकता :** सार्थकता का अर्थ यह है कि वाक्य के शब्द सार्थक होने चाहिए। वाक्य का उद्देश्य है– पूर्ण और सार्थक अभिव्यक्ति । वाक्य की सार्थकता का अर्थ है– वाक्य में प्रयुक्त सभी शब्दों और पदों का सार्थक रूप में प्रयोग। उदा,– ''गाय को गो माता कहते हैं'' में सार्थकता है।

3) **आकांक्षा :** इसका अर्थ है- 'इच्छा', 'अपेक्षा' या जिज्ञासा की असमाप्ति। वाक्य में शब्द या पद एक - दूसरे से संबंधित होते हैं। यह संभव भाव वाक्य के आकांक्षा तत्त्व के ही कारण संभव होता है। वाक्य में प्रयुक्त शब्दों की अर्थ अभिव्यक्ति के संदर्भ में एक- दूसरे की अपेक्षा रहती है।

मानक हिंदी में कर्ता + कर्म + क्रिया का क्रम से प्रयोग होता है। वाक्य में इनको एक दूसरे की अपेक्षा होती है। कर्ता को कर्म और क्रिया की अपेक्षा होती है। वैसे कर्म और क्रिया को भी अपेक्षा होती है। इसी अपेक्षा पूर्ति पर ही वाक्य की संरचना और अर्थ की अभिव्यक्ति संभव हैं। इस प्रकार आकांक्षा अपूर्ण होगी तो वाक्य भी अपूर्ण होता है।

उदा.- 'लता' कहने से वाक्य पूरा नहीं होता है। यहाँ मन में यह जानने की इच्छा होती है कि वह क्या करती है, या क्या करेगी ? 'गाती है' कहेंगे तो कर्ता-संबंध में यह जिज्ञासा होती है कि वह क्या गायेंगी? इसी प्रकार 'गीत' कहने से कर्ता + क्रिया के विषय में जानने की इच्छा होती है। ऊपर के तीनों पदों - लता / गीत / गाती है, में शब्द या पद एक-दूसरे से संबंध भाव से जुड़ गए। अपेक्षा पूर्ण होने से, ''लता गीत गाती है।'' पूर्ण वाक्य की संरचना हो गयी।

4) **सन्निधि या आसक्ति :** इसका शाब्दिक अर्थ है- समीपता वाक्य में प्रयुक्त शब्दों या पदों का एक विशेष अंतर और क्रम से प्रयोग होना चाहिए। 'अमरकलगाव जाना है' यहाँ सार्थकता अस्पष्ट है। इसे इस तरह लिखने पर 'अमर कल गाँव जाना है।' सार्थकता स्पष्ट होगी। इस तरह वाक्य के विभिन्न पदों का एक विशेष अंतर होना आवश्यक है। वाक्य के शब्द समीप होने चाहिए।

5) **अन्विति :** इसका अर्थ है व्याकरणिक दृष्टि से एकरूपता। अंग्रेजी में इसे Concordance कहते हैं। इसके अनुसार वाक्य के विभिन्न पदों में वचन, लिंग, पुरुष आदि संदर्भों में समानता होनी चाहिए। डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'वाक्य में दो या दो से अधिक पदों की आपसी एकरूपता को अन्वय कहते हैं।' विभिन्न भाषाओं में इसके विभिन्न रूप मिलते हैं। यह समानरूपता प्रायः वचन, कारक, लिंग और पुरुष आदि की दृष्टि से होती है। हिंदी में क्रिया प्राय: लिंग, वचन, पुरुष में कर्ता के अनुकूल होती है। उदा.- 'सीता गए', 'राम जा रही है।' ये दोनों ठीक वाक्य नहीं है। क्योंकि यहाँ न तो 'सीता' और 'गए' में अन्विति है और न 'राम' और 'जा रही है' में।

अंग्रेजी में क्रिया पुरुष, वचन की दृष्टि से कर्ता के अनुसार होती है, किंतु लिंग की दृष्टि से नहीं। उदा. - King goes, Queen goes आदि।

इसके लिए अन्वय शब्द का भी प्रयोग होता है। अन्वय का विचार कर्ता- क्रिया, विशेषण-विशेष्य, सर्वनाम- संज्ञा संबंधों में कर सकते हैं।

1) **कर्ता और कर्म से निरपेक्ष क्रिया :** जब कर्ता और कर्म दोनों के साथ कारक चिह्न हो, तो क्रिया सदा पुल्लिंग एक वचन में होती है। जैसे- 'लडकी ने लड़के को देखा', 'लडके ने लड़की को देखा।'

2) **सर्वनाम संज्ञा का अन्वय :** सर्वनाम सदा उसी संज्ञा के लिंग, वचन का अनुसरण करता है, जिसके स्थान पर प्रयुक्त हो। जैसे- वह (आशा) घर जाती है। वह (मनोज) बंबई से आ रहा है।

आदरसूचक वाक्य में सर्वनाम और क्रिया शब्द बहुवचन हो जाते हैं। जैसे- 'गुरू जी आ रहे हैं। वे संस्कृत पढ़ाएंगे।'

3) **कर्ता-क्रिया अन्वय :** यदि कर्ता के साथ कारक चिह्न प्रयुक्त न हो, तो क्रिया कर्ता के अनुसार होगी। जैसे- 'लडकी आम खाती है।', 'लड़का इमली खाता है।'

कर्ता आदरसूचक हो, तो क्रिया बहुवचन होगी। जैसे- महात्मा ज्योतिबा फुले स्त्री उद्धारकर्ता थे। पिताजी जा रहे हैं।

कर्ता के साथ ने, को, से आदि लगने पर क्रिया का अन्वय नहीं होगा। जैसे- 'सूरज ने रोटी खा ली', 'बालिका को जाना है।'

4.2.2 वाक्य विश्लेषण और प्रकार

वाक्य विश्लेषण :

वाक्य विश्लेषण हिंदी व्याकरण का एक महत्वपूर्ण अंग है । वाक्य विश्लेषण के बारे में हर किसी को अधिक जानकारी नहीं होती है । वाक्य विश्लेषण के बारे में यहाँ जानकारी प्राप्त होगी ।

वाक्य विश्लेषण परिभाषा :

किसी वाक्य में प्रयुक्त हुए शब्दों को उनके अंगों सहित अलग-अलग करके उनका पारस्परिक संबंध बताना ही हिंदी व्याकरण में वाक्य विश्लेषण कहलाता है।

सामान्य भाषा में कहे तो वाक्य प्रयोग किये गये सभी पदों को अलग - अलग करके प्रत्येक शब्द का पारस्परिक संबंध बताने की प्रक्रिया को वाक्य विश्लेषण कहते हैं।

वाक्य विश्लेषण के प्रकार :

वाक्य विश्लेषण के तीन प्रकार होते हैं, जो निम्नलिखित है-

1) सरल वाक्य विश्लेषण, 2) संयुक्त वाक्य विश्लेषण, 3) मिश्र वाक्य विश्लेषण

वाक्य विश्लेषण में सबसे पहले उद्देश्य और विधेय को अलग कर लिया जाता है। तथा उसके पश्यात शब्दों के विस्तार का विस्तृत वर्णन किया जाता है।

1) **सरल वाक्य विश्लेषण-**

साधारण और सरल वाक्य विश्लेषण में सबसे पहले साधारण बात करके उसके दो अंग उद्देश्य और विधेय के बारे में विचारों को स्पष्ट करना होता है।

इसमें सबसे पहले उद्देश्य (कर्ता) के बारे में विचारों को स्पष्ट करेंगे और उसके पश्यात पूरे उद्देश्य बताएँ। यदि वाक्य में क्रिया सकर्मक है तो विधेय में कर्म।

उदा. 'परिश्रमी व्यक्ति प्रत्येक क्षेत्र में सफल होता है।'

उद्देश्य (कर्ता) – व्यक्ति।

उद्देश्य का विस्तार (विशेषण) – परिश्रमी होना।

विधेय – प्रत्येक क्षेत्र में सफल होता है।

कर्म – सफल होना।

क्रिया – होता है।

क्रिया का विस्तार (क्रिया विशेषण) – प्रत्येक क्षेत्र में।

2. **सयुक्त वाक्य विश्लेषण –**

सयुक्त वाक्य विश्लेषण भी साधारण वाक्य विश्लेषण की तरह ही होता है। सयुक्त वाक्य में दो सरल (साधारण) व्याक्य होते हैं, जो की योजक अव्यय के द्वारा जुड़े रहते हैं। इसे अलग अलग करके दोनों वाक्यों का वाक्य विश्लेषण करते हैं।

उदा. 'रोहित लेटकर टी. व्ही. देख रहा है और रोहन बैठकर पुस्तक पढ़ रहा है।'

योजक – तथा।

उद्देश्य (कर्ता) – रोहित।

विधेय– लेटकर टी. व्ही. देख रहा है।

क्रिया – टी. व्ही. देख रहा है।

क्रिया का विस्तार (क्रिया विशेषण) – लेटकर देखना

उद्देश्य (कर्ता) – रोहन

विधेय – बैठकर पुस्तक पढ़ रहा है।

क्रिया – पुस्तक पढ़ रहा है।

क्रिया का विस्तार (क्रिया विशेषण) – बैठकर पढ़ना।

3. **मिश्र वाक्य विश्लेषण**

मिश्र वाक्यों का विश्लेषण करते समय प्रधान उपवाक्य तथा आश्रित उपवाक्य को अलग अलग कर लेना होगा। उसके बाद दोनों उपवाक्यों से उद्देश्य और विधेय की अलग–अलग व्याख्या करनी होगी।

उदा. 'हेमंत ने कहा कि उसका लड़का पढ़-लिखकर डॉक्टर बनेगा ।'

प्रधान उपवाक्य - हेमंत ने कहा।

आश्रित उपवाक्य - उसका लड़का पढ़-लिखकर डॉक्टर बनेगा।

योजक - कि।

उद्देश्य - हेमंत ने।

विधेय - कहा।

उद्देश्य - लड़का।

उद्देश्य का विस्तार क्या है - उसका।

विधेय - पढ़-लिखकर डॉक्टर बनेगा।

कर्म- डॉक्टर।

क्रिया - बनेगा।

क्रिया का विस्तार (क्रिया विशेषण) - पढ़-लिखकर।

वाक्य विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि, किसी वाक्य के भिन्न घटकों (पदों या पदबंधों) को अलग-अलग करके उनके परस्पर संबंध को बताना वाक्य विश्लेषण कहा जाता है।

वाक्य विश्लेषण - वाक्य में प्रयुक्त पदों को भिन्न-भिन्न क्रम के उनका पारस्पारिक संबंध बतलाना ही वाक्य विशलेषण कहलाता है। वाक्य विश्लेषण में प्रथम उद्देश्य एवं विधेय को छांट लिया जाता है। बाद में उसके विस्तार का उल्लेख अलग-अलग किया जाता है।

वाक्य के प्रकार :

वाक्य में उद्देश्य और विधेय के पारस्पारिक संबंध के अध्ययन से ही वाक्य के प्रकार स्पष्ट हो जाते हैं । कई विद्वानों ने इस पर विचार करते हुए कुछ प्रमुख वाक्य प्रकार निश्चित किए हैं। विभिन्न भाषाओँ में उपलब्ध वाक्यों के अध्ययन से विद्वानों ने वाक्य भेद के विभिन्न आधार बताकर उनका वर्गीकरण किया है, जो निम्नलिखित है -

(अ) आकृति के आधार पर।

(आ) व्याकरणिक गठन या रचना के आधार पर।

(इ) भाव या अर्थ की दृष्टि से।

(ई) क्रिया के आधार पर।

(उ) शैली के आधार पर।

(ऊ) रूप के आधार पर।

(ए) पूर्णता – अपूर्णता के आधार पर।

(ऐ) शुद्धता – अशुद्धता के आधार पर।

(अ) आकृति के आधार पर –

वाक्य का आकृतिमूलक वर्गीकरण पद, रचना या वाक्य रचना के अधार पर किया जाता है । अत: इसे रूपात्मक, रचनात्मक, पदात्मक या वाक्यात्मक वर्गीकरण आदि नामों से भी जाना जाता है । आकृति के आधार पर वाक्य के सामान्यतया चार प्रकार माने जाते हैं –

1) अयोगात्मक वाक्य।

2) प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य।

3) अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य।

4) श्लिष्ट योगात्मक वाक्य।

लेकिन डॉ. अंबाप्रसाद 'सुमन'जी ने अंतिम दो वाक्य प्रकारों को प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य प्रकार के अंतर्गत मानते हुए वाक्य के दो ही भेद प्रस्तुत संदर्भ में स्वीकार किए हैं।

1) **अयोगात्मक वाक्य –** विश्व में कुछ भाषाओं में केवल अर्थतत्व का ही दर्शन होता है। उनमें शब्दों का स्थान ही संबंध तत्व का काम करता है। ऐसी भाषा को ही अयोगात्मक भाषा कहते हैं। अयोगात्मक वाक्य के पदों का निर्माण स्थान से होता है, प्रकृति– प्रत्यय के योग से नहीं। डॉ. मनमोहन गौतम ने इसे व्यास प्रधान वाक्य कहा है। अयोगात्मक वाक्य रचना में वाक्य की सामान्य प्रकृति पर बल न देकर शब्दों को ही विशेष महत्त्व दिया जाता है। इसमें शब्द स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त होते हैं। प्रत्येक शब्द का स्थान निश्चित होता है। इस प्रकार की वाक्य रचना चीनी आदि एकाक्षरी भाषाओं में प्रमुख रूप से अधिक मात्रा में पायी जाती है। हिंदी, अंग्रेजी आदि आधुनिक भारतीय यूरोपीय (भारोपीय) भाषाओं में पदक्रम निश्चित होने के कारण उनमें कुछ ऐसी प्रवृत्ति दिखाई देती है कि उनका स्वरुप वियोगात्मक हो गया है। अत: इनमें स्थान परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन भी हो जाता है।

जैसे – 'शुभम' किताब को पढ़ता है।' यदि प्रस्तुत वाक्य को यों लिखा जाएँ की 'किताब शुभम को पढ़ता है।' तो स्पष्ट है कि इस वाक्य में अर्थ परिवर्तन हो गया है। अपवाद रूप से उदाहरण 'यह आप क्या करते हैं?' इस वाक्य को 'यह क्या करते हैं आप?' ऐसा लिखने पर अर्थ परिवर्तन नहीं होता।

निष्कर्ष यह है कि भाषा अयोगात्मक की ओर जितनी ही जाती है उसके वाक्यों में पदक्रम का महत्त्व उतना ही बढ़ता जाता है।

2) **प्रश्लिष्ट योगात्मक वाक्य –** योगात्मक वाक्य वे हुआ करते हैं, जिनमें शब्दों की रचना प्रकृति प्रत्यय के योगदान से हुआ करती है। इसे समास प्रधान वाक्य भी कहा जाता है। इन वाक्यों में कर्ता, कर्म, क्रिया अर्थात् उद्देश्य और विधेय का पृथकत्व दृष्टिगोचर नहीं होता, बल्कि ये सब पद मिलकर एक ही पद में अंतर्हित हो जाते हैं और संपूर्ण वाक्य एक समस्त शब्द के समान प्रतीत होता है।

जैसे – में मैक्सिकन भाषा में नेवत्ल = मैं, नेकत्ल = मांस, क = खाना यह अर्थ होता है। अब यदि इन तीनों का प्रयोग वाक्य में करना होगा तो कहा जायेगा 'नीतकक' अर्थात् 'मैं माँस खाता हूँ।' ऐसे वाक्यों को 'वाक्य शब्द' या 'शब्द वाक्य' भी कहा जा सकता है। इन वाक्यों का विश्लेषण आसानी से नहीं किया जा सकता, इसी से इनके शब्दों के योग को प्रश्लिष्ट कहा जाता है, जो इनकी इस संज्ञा का कारण है। यह वाक्य रचना अपने में संस्कृत सूत्रों के समान प्रतीत होती है।

3) **अश्लिष्ट योगात्मक वाक्य –** कुछ विद्वानों के मतों से यह योगात्मक वाक्य का ही उपभेद है। इनमें प्रत्ययों की प्रधानता रहती है। अतः इन्हें प्रत्यय प्रधान वाक्य भी कहते हैं। प्रत्यय प्रधान, वाक्य रचना बड़ी सरल और स्पष्ट होती है। इनमें मूल शब्द और संबंध तत्व को प्रकट करने के लिए जोड़े गये प्रत्यय भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। इसी कारण इनको पारदर्शक गठनवाले वाक्य भी कहा जाता है। ऐसे वाक्यों में एक प्रकार से प्रत्यय ही मेरूदंड है। तुर्की भाषा की वाक्य रचना इस दृष्टि से आदर्श है ।

जैसे – तुर्की में 'एव' शब्द का अर्थ है –'घर' । 'एव' में प्रत्यय लगने से 'एवलेर' = अनेक घर (बहुवचन), 'एवलेरिम' = मेरे घर ।

इस प्रकार भिन्न प्रत्यय से इसके अनेक रूप हो जाते हैं ।

4) **श्लिष्ट योगात्मक वाक्य –** कुछ विद्वानों ने इसे भी योगात्मक का ही एक उपभेद या रूप स्वीकार किया है। इन वाक्यों में कारक, वचन आदि के संबंधों का ज्ञान प्रत्ययों द्वारा ही होता है। किंतु वे प्रत्यय स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त न होकर धातु की प्रकृति में ही समाविष्ट हो जाते हैं। प्रत्ययों के विभक्ति रूप का बोध कराने के लिए ऐसी वाक्य रचना को विद्वानों ने 'विभक्ति प्रधान वाक्य' की संज्ञा से भी अभिहित किया है। संस्कृत में विभक्ति रचना प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती है। जैसे – संस्कृत में प्रथम एकवचन मे 'सु' प्रत्यय जोड़कर पद बनाया जाता है, पर जोड़ने के बाद जो पद बनता है, उसमें 'सु' का बिल्कुल पता नहीं चलता– राम + सु = रामः कहीं–कहीं तो जोड़ने में प्रत्यय पूर्णतया लुप्त हो जाता है। सैमेटिक, हैमेटिक और भारोपीय परिवारों की अधिकांश भाषाएँ ऐसे ही हैं।

(आ) व्याकरणिक गठन या रचना के आधार पर डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. अंबाप्रसाद 'सुमन' और डॉ. देवेंद्र शर्मा जी ने वाक्य के व्याकरणिक गठन या रचना के आधार पर वाक्य के तीन भेद मान्य किए हैं– 1. साधारण वाक्य 2. संयुक्त वाक्य 3. मिश्र या मिश्रित वाक्य

1. **साधारण वाक्य –** सरल या साधारण वाक्य में एक उद्देश्य और एक विधेय अर्थात् एक संज्ञा और एक क्रिया होती है। दूसरे शब्दों में जिन वाक्यों में केवल एक उद्देश्य और एक विधेय होता है, उन्हें साधारण

वाक्य कहा जाता है। इस दृष्टि से इस वाक्य के मुख्यतः दो भाग होते हैं- क) उद्देश्य और ख) विधेय। जिसके संबंध में कुछ कहा जाता है, वह उद्देश्य होता है। उद्देश्य के बारे में जो कुछ कहा जाता है, वह विधेय होता है। जैसे- 'मोहन विद्यालय गया ।' इस वाक्य में 'मोहन' के बारे में कुछ कहा जा रहा है, अतः वह उद्देश्य है और 'विद्यालय गया' विधेय है।

2. **संयुक्त वाक्य –** जिस वाक्य में एक प्रधान वाक्य के साथ-साथ एक या अधिक प्रधान उपवाक्य भी जुड़े हो, उसे संयुक्त वाक्य कहा जाता है। जैसे- 'रोहन स्टेशन पहुँच गया लेकिन उससे पहले गाड़ी चली गयी थी।' इसमें 'रोहन स्टेशन पहुँच गया' प्रधान वाक्य है, जब कि 'लेकिन गाड़ी चली गयी थी' प्रधान उपवाक्य है।

3. **मिश्र या मिश्रित वाक्य –** मिश्र वाक्य में एक मुख्य उपवाक्य रहता है, किंतु आश्रित उपवाक्य एक या अनेक उपवाक्य हो सकते हैं। जैसे- 'जो विद्वान होता है, उसका सर्वत्र आदर होता है ।' इसमें, जो विद्वान होता है- प्रधान उपवाक्य है। उसका सर्वत्र आदर होता है - यह आश्रित उपवाक्य है।

(इ) भाव या अर्थ के आधार पर वाक्य भेद अर्थ को 'वृत्ति' भी कहते हैं । यह अंग्रेजी 'Mood' शब्द का पर्यायवाची शब्द है। वाक्य के भाव या अर्थ के आधार पर निम्नलिखित भेद हैं-

1. **विधान सूचक वाक्य** - इससे किसी कार्य के करने का बोध होता है। जैसे- 'वह पढ़ता है।', 'मैं जाता हूँ ।'
2. **निषेधात्मक वाक्य** - जिससे किसी बात के न होने या इन्कार किए जाने का बोध हो, उसे निषेधात्मक वाक्य कहते हैं। जैसे- 'मैं नहीं जाऊँगा ।'
3. **आज्ञासूचक वाक्य** - इसमें स्पष्टतः आज्ञा या निदेश का भाव रहता है। जैसे- 'यह काम करो।'
4. **इच्छार्थक वाक्य** - अर्थात् विधि विहित इच्छा की सूचना देने वाला वाक्य । जैसे- 'भगवान तुम्हें सद्बुद्धि दे ।'
5. **संभावनार्थक वाक्य** - इस वाक्य में किसी संदर्भ या घटना के विषय में संभावना व्यक्त होने की सूचना मिलती है । जैसे - 'हरि आता होगा।' 'शायद आज पानी बरसे ।'
6. **संदेहार्य सूचक वाक्य**- जिस वाक्य से किसी प्रकार के संदेह का बोध होता है, उसे संदेहार्य सूचक वाक्य कहते हैं । जैसे - वह आया होगा, वह कहीं गया होगा।
7. **प्रश्नार्थक वाक्य** - जिस वाक्य से किसी प्रकार के प्रश्न पूछे जाने का बोध होता है, उसे प्रश्नवाचक वाक्य कहते हैं। जैसे- 'कथा करते हो? 'पढ़ते क्यों नहीं?'
8. **विस्मयादिबोधक वाक्य** - आश्चर्यवाचक भाव की स्थिति इस वाक्य से व्यक्त होती है।

   उदा. 'अरे! क्या कहते हो!', 'अरे! तुम खा रहे हो!'

9. संकेतात्मक वाक्य – जिससे कोई संकेत प्रकट होता है, उसे संकेतवाचक वाक्य कहते हैं।

जैसे – 'यदि वह गाना गाए तो मैं भी गाऊँ।', 'यदि वह पढ़ता तो उत्तीर्ण होता।'

इस प्रकार इनके अतिरिक्त भाव तथा अर्थ के अनुसार और भी वाक्य भेद हो सकते हैं, किंतु ये प्रमुख है।

(ई) क्रिया के आधार पर भाषा में क्रिया का स्थान प्रमुख है। वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में वाक्य में अवश्य वर्तमान रहती है। संस्कृत, लैटिन आदि पुरानी तथा बंगला, रूसी आदि आधुनिक भाषाओं में बिना क्रिया के भी वाक्य मिलते हैं। इस प्रकार इस आधार पर वाक्य के दो भेद हो सकते हैं –

1. क्रियायुक्त वाक्य 2. क्रियाविहीन वाक्य

1. **क्रियायुक्त वाक्य –** स्पष्ट है कि जिस वाक्य में क्रिया विद्यमान रहती हैं, उसे क्रियायुक्त वाक्य कहा जाता है। अधिकांश वाक्य इसी प्रकार के होते हैं। जैसे– 'सुशांत पानी पीता है।'

2. **क्रियाविहीन वाक्य –** कभी–कभी कुछ वाक्यों में क्रिया का प्रयोग नहीं किया जाता। विज्ञापनों, मुहावरों, समाचार पत्रों के शीर्षकों, लोकोक्तियों तथा काव्य भाषा में क्रिया विहीन वाक्य प्रायः दिखाई पड़ते हैं । जैसे– 'देश की आजादी खतरे में', 'जिसकी लाठी उसकी भैस' आदि ।

संस्कृत का एक उदाहरण देखिए – 'इदं मम पुस्तकं' (यह मेरी पुस्तक है ।) स्पष्ट है कि संस्कृत के इस वाक्य में कोई सहायक क्रिया नहीं है । कहा जा सकता है कि भाषा विशेष की प्रवृत्ति के अधार पर क्रिया विहीनता पायी जाती है ।

(उ) शैली के आधार पर – शैली के अनुसार वाक्य के तीन भेद होते हैं–

1. शिथिल 2. समीकृत 3. आवर्त्तक

इन तीनों भेदों के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना संभव नहीं है। कभी–कभी इनमें परस्पर सांकर्य भी देखा जाता है। किंतु स्थूल दृष्टि से ये भेद व्यवहारिक उपयोग के हैं–

1. **शिथिल वाक्य –** शिथिल वाक्य में वक्ता या लेखक के मन में जिस क्रम से विचार आते हैं, उसी क्रम से, उन्मुक्त भाव से वह कहता जाता है। इसमें वह कला या अलंकरण का सहारा नहीं लेता। जैसे– 'अयोध्या सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी थी। उस समय महाराज दशरथ अयोध्या के राजा थे। महाराज बूढ़े हो गये, किंतु उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ। एक दिन महाराज ने अपने कुलगुरू महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में जाकर गुरूदेव से संतान के लिए प्रार्थना की।'

2. **समीकृत वाक्य –** समीकृत वाक्य संगति और संतुलन की नैसर्गिक, मानवीय इच्छा की पूर्ति करता है। जैसे– 'जैसा राजा वैसी प्रजा ।' समीकृत वाक्य वैषम्यमूलक भी होता है।

3. **आवर्तक वाक्य –** आवर्तक वाक्य में चरम सीमा अंत में आती है। यह शैली वक्ता या नेताओं के अधिक काम की मानी जाती है। इस शैली से श्रोता या पाठक की उत्सुकता अंत तक बनी रहती है। जैसे –

'यदि हम चाहते हैं कि हमारी स्वतंत्रता सुरक्षित रहे, यदि हम चाहते हैं कि भारत शिक्षा, कृषि और उद्योग के क्षेत्र में निरंतर प्रगति करता रहे, तो हमें आपसी भेदभाव भुलाकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ बनाना होगा।'

शैली की दृष्टि से वाक्य विचार भाषा विज्ञान के क्षेत्र में नहीं पड़ता, उसका विचार काव्यशास्त्र में होता है। साथ-ही-साथ वाक्य के भेदों पर विचार करते समय उसकी भी चर्चा आवश्यक है। इसका विश्लेषण शैली विज्ञान में किया जाता है।

(ऊ) रूप के आधार पर रूप के आधार पर वाक्य के मुख्यतः दो भेद होते हैं-

1. मूल वाक्य 2. रूपांतरित अथवा विपरिवर्तित वाक्य

1. **मूल वाक्य-** मूल वाक्य से तात्पर्य यह है कि ऐसे वाक्य जो अपने मूल रूप में अरूपांतरित होते हैं, उन्हें मूल, वाक्य कहते हैं। इसमें मूल वाक्य का प्रारूप यथावत रहता है।

2. **रूपांतरित वाक्य-** जो वाक्य मूल वाक्य में रूपांतर होने से बनते हैं उन्हें रूपांतरित या विनिर्मित विपरिवर्तित वाक्य कहते हैं।

(ए) पूर्णता - अपूर्णता के आधार पर इस आधार पर वाक्य के तीन भेद होते हैं-

1. पूर्ण वाक्य 2. अपूर्ण वाक्य 3. लघु वाक्य

1. **पूर्ण वाक्य -** जिस वाक्य से वक्ता अथवा लेखक की बात पूर्ण रूप से व्यक्त होती है, उन्हें पूर्ण वाक्य कहा जाता है। जैसे- 'विधानसभा के चुनाव ठीक तरह से संपन्न हुए।'

2. **अपूर्ण वाक्य -** पूर्ण वाक्य के विपरीत अपूर्ण वाक्य की स्थिति होती है । इसमें वक्ता या लेखक की बात पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं हो पाती। जैसे- 'आपके सब काम हमसे अच्छे हैं।' वास्तव में पूर्ण बात ऐसी होनी चाहिए कि, 'आपके सब काम वस्तुतः हमसे नहीं बल्कि हमारे सब कामों से अच्छे हैं।'

3. **लघु वाक्य -** अगर संदर्भ से अधूरे वाक्य का अर्थ भी स्पष्ट हो तो उसे लघुवाक्य कहते हैं। जैसे- 'क्या वहाँ जावोगे?'- 'हाँ'

(ऐ) शुद्धता-अशुद्धता के आधार पर इस दृष्टि से भी हम प्रधानतः दो प्रकारों को देख सकते हैं-

1. शुद्ध वाक्य 2. अशुद्ध वाक्य

1. **शुद्ध वाक्य -** जो वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण निर्दोष हो, व्याकरण - समंत हो, उसे शुद्ध वाक्य कहते हैं। जैसे- 'लताजी की आवाज बहुत सुरीली है।'

2. **अशुद्ध वाक्य -** जो वाक्य व्याकरण के नियमों और भाषा की सहज प्रकृति के विरूद्ध हो वे वाक्य अशुद्ध माने जाते हैं। उदाहरणार्थ उपर्युक्त वाक्य अपने अशुद्ध रूप में यों हो सकता है- 'लताजि कि आवाज बहोत सुरिला हैं।'

इस प्रकार हमने देखा कि विभिन्न आधारों की दृष्टि से वाक्य के कई भेद या प्रकार विभिन्न विद्वानों ने स्पष्ट किए हैं।

4.2.3 वाक्य परिवर्तन के कारण :

किसी भी भाषा की वाक्य-रचना हमेशा एक सी नहीं रहती। उसमें परिवर्तन आते रहते हैं। इसी तरह मूल भाषा की तुलना में उससे निकली भाषा की वाक्यरचना में भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए, संस्कृत वाक्य रचना में कर्ता या कर्म के लिंग का क्रिया पर प्रभाव नहीं पड़ता था, किंतु संस्कृत से ही निकली हिंदी में ऐसा प्रभाव पड़ता है। जैसे- गच्छति, सीता गच्छति; राम जाता है, सीता जाती है।

वाक्य रचना में परिवर्तन के निम्नलिखित मुख्य कारण माने जाते हैं -

1) **अन्य भाषा का प्रभाव :** विभिन्न संस्कृतियों के पारस्परिक संपर्क के कारण विभिन्न भाषाएँ एक-दूसरे के संपर्क में आती है। परिणामतः उनके वाक्य गठन भी प्रभावित होते हैं। भारत में यवनों के साथ अरबी-फारसी आयी और अंग्रेजों के साथ जों हिंदी वाक्य रचना पर दोनों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वाक्य गठन में 'कि', 'चूकि' के प्रयोग फारसी के प्रभाव के फल स्वरूप है।

मध्यकाल में मुगल दरबार की भाषा फारसी थी, अतः उसका पठन-पाठन काफी होता था। इसी कारण उसका हिंदी की काव्य रचना पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में आदर के लिए बहुवचन के प्रयोग की परंपरा विशेष नहीं थी, किंतु फारसी में यह परंपरा पूरी तरह से थी। उसी के प्रभाव स्वरूप हिंदी में यह परंपरा आयी, जिसका परिणाम है। यथा-

'मेरे पिता आ रहे हैं।'

'मेरे अध्यापक आ रहे हैं।'

फारसी के प्रभाव से 'कि' का प्रयोग भी हिंदी पर हुआ। ''मैं चाहता हूँ कि वह चला जाए।''

अंग्रेजी का प्रभाव : अंग्रेजी ने भी हिंदी को इसी तरह प्रभावित किया है। उदा. 'वह आदमी जो कल आया था, चोर था।' इस वाक्य में 'वह' पर अंग्रेजी के 'the' की छाया है - The man who had come yesterday was a thief.

हिंदी का मूल वाक्य था - जो आदमी कल आया था, चोर था।

इसी प्रकार कई संज्ञाओं और क्रियाओं के एक साथ आनेपर अंतिम दो के बीच में 'और' का प्रयोग अंग्रेजी का प्रभाव है। उदा.- ''राम, श्याम और मोहन आ रहे हैं।'', ''मैं बाल कटवाऊँगा, नहाऊँगा और खाऊँगा।''

भविष्यकाल के लिए अपूर्ण वर्तमान का हिंदी में प्रयोग अंग्रेजी का प्रभाव है, जो आज हिंदी में अधिक प्रचलित है। यथा- ''प्रधानमंत्री अगले महिने अमरिका जा रहे हैं।'', ''पिताजी कल आ रहे हैं।''

अंग्रेजी के प्रभाव के कारण ही हिंदी में भी संक्षेपण के लिए संबंधवाची प्रत्ययों के लिए योजक चिह्न (हाइफन) और अल्पविराम (काँमा) के प्रयोग होते हैं। यथा - लोक सभा के अध्यक्ष, लोकसभाध्यक्ष, अध्यक्ष।

2) **ध्वनि परिवर्तन से विभक्तियों और प्रत्ययों का घिस जाना :** विभक्तियों के घिस जाने से अर्थ को समझने में कठिनाई होने लगती है, अतः वाक्य में सहायक शब्द (परसर्ग, सहायक क्रिया) जोडे जाने लगते हैं, साथ ही वाक्य में पदक्रम निश्चित हो जाता है। यही कारण है कि संस्कृत की तुलना में हिंदी तथा अंग्रेजी में शब्दक्रम निश्चित है।

सीता राधा कहती है।

राधा सीता कहती है।

उपरी वाक्यों में स्थान के कारण 'सीता' एक स्थान पर कर्ता है, तो दूसरे स्थान पर कर्म। संस्कृत में कर्ता सीता होती तथा कर्म 'सीता' अतः शब्दक्रम के निश्चित होने की आवश्यकता नहीं थी। 'सीता' वाक्य में कहीं भी आती 'कर्ता' होती तथा 'सीता' कहीं भी आती कर्म होती।

3) **स्पष्टता तथा बल के लिए अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग :** हम अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए वाक्य में कुछ न कुछ परिवर्तन कर लेते हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में कभी एक ही वाक्य में कई उपवाक्य आ जाते हैं, तो कभी वाक्य के किसी पद के साथ कोष्ठक में स्पष्टता सूचक शब्द का प्रयोग करते हैं; यथा- स्वन (ध्वनि) भाषा की लघुत्तम इकाई है। स्पष्टता या बल के लिए अतिरिक्त शब्दों का प्रयोग होने से वाक्य में ऐसे अतिरिक्त शब्द आ जाते हैं, जो आर्थिक या व्याकरणिक दृष्टि से आवश्यक होते हैं। उदा.- ''कृपया कल आइएगा।'' 'आइएगा' अपने आप आदरसूचक है, अतः 'कृपया' शब्द की आवश्यकता नहीं थी। इसी प्रकार He is returning back में बॅक अनावश्यक है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में विभक्तियों के लुप्त होने पर स्पष्टता के लिए ही परसर्गो का प्रयोग हिंदी में होने लगा।

4) **नवीनता :** मनुष्य स्वभाव से ही नवीनता प्रेमी है। कभी-कभी नवीनता के आग्रह के कारण कुछ नये शब्द चल पड़ते हैं, जिनसे वाक्य रचना में अंतर आ जाता है। नये प्रयोग से वाक्य रचना पद्धति में परिवर्तन आते हैं। उदा. के लिए हिंदी में 'मात्र' शब्द का प्रयोग संज्ञा के बाद होता रहा है, अब नवीनता के लिए संज्ञा के पहले इसका प्रयोग होने लगा है। ''मुझे दस रुपये चाहिए : मुझे मात्र दस रुपए चाहिए।''

ऐसे विशेषण पदबंध जो संज्ञा शब्दों में पहले आते रहते हैं, अब बाद में रखे जाने लगे हैं।

रातभर की बात- बात रात भर की।

तीन दिन की बादशाहत- बादशाहत तीन दिन की।

पिया मन-भावन दुल्हन- दुल्हन पिया मन-भावन।

पुस्तकों, रचनाओं तथा फिल्मों के शीर्षकों में इस प्रकार परिवर्तन खूब प्रचलित हो गया है। वैसे अन्यत्र भी इसके प्रयोग कम नहीं मिलते।

5) **बोलनेवालों की मानसिक स्थिति में परिवर्तन :** वस्तुतः वाक्य रचना वक्ता की मानसिक स्थिति पर निर्भर करती है। मानसिक स्थिति के कारण वाक्यरचना में परिवर्तन हो जाता है। युद्धकालीन, प्रसन्न व्यक्ति की, दुःखी व्यक्ति की वाक्य रचना एक नहीं होती। यथा–

आप! बैठिए, जा कहाँ रहे हैं?

दुष्ट! तुम जाता कहाँ है?

इस प्रकार मनःस्थिति के कारण वाक्य में परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

6) **संक्षिप्तता :** संक्षिप्तता भी वाक्य में परिवर्तन ला देती है। इससे वाक्य छोटे–छोटे हो जाते हैं। यथा– 'नहीं जाता है' – नहीं जाता।

7) **भावुकता :** भावुकता के कारण भी वाक्य में परिवर्तन होता है। जब वक्ता या लेखक विशेष भाव प्रवाह में बोलता या लिखता है, तो उसके वाक्य में कर्ता, कर्म और क्रिया की सैद्धांतिक व्यवस्था न होकर विचित्र – सी भाव प्रधान वाक्यात्मक संरचना होती है; यथा – ''वाह रे माधुर्य! वाह रे लज्जा!'' आदि।

8) **अज्ञानता :** अज्ञानता के कारण भी वाक्य में परिवर्तन हो जाता है; यथा–

बाजार खुल रहा है– बाजार खुल रही है।

ट्रक जा रहा है – ट्रक जा रही है।

9) **परंपरा का प्रभाव :** हिंदी का उद्भव संस्कृत भाषा से हुआ है। हिंदी में संस्कृत के परंपरागत गुण है। वर्तमान समय के हिंदी प्रयोग में पर्याप्त नवीनता आ रही है, किंतु हम किसी न किसी रूप में परंपरा से जुड़े हैं। अतः संदर्भ में एकवचन कर्ता के साथ क्रिया तथा सर्वनाम आदि का बहुवचन रूप प्रयुक्त होता है; यथा– 'आचार्य शुक्ल महान साहित्यकार थे।', 'वे बस्ती में रहते थे', 'गुरुजी आ रहे हैं', 'वे आज किस विषय पर व्याख्यान देंगे?'

वाक्य परिवर्तन की दिशाएँ :

वाक्य रचना में परिवर्तन मुख्य रूप से निम्नांकित रूपों या दिशाओं में होता है।

1) **वचन संबंधी परिवर्तन –** भाषाओं के विकास में वाक्य रचना में वचन संबंधी परिवर्तन प्रायः हो जाते हैं। संस्कृत में द्विवचन भी था, अतः दो के लिए अलग कारकीय रूप होते थे और उसके साथ क्रिया के द्विवचन के रूप प्रयुक्त होते थे। हिंदी में आते–आते द्विवचन का लोप हो गया तो 'दो' की संख्या 'बहुवचन' कारकीय रूप में लगाकर द्विवचन का भाव व्यक्त किया जाने लगा। यथा– संस्कृत – 'तौ' /

हिंदी – वे, दो / संस्कृत– बालकौ / – हिंदी – दो बालक । किंतु क्रिया रूप द्विवचन के स्थानपर बहुवचन का प्रयोग होने लगा – दो बालक आए हैं।

पुरानी हिंदी में आदर के लिए भी एकवचन की क्रिया तथा एकवचन के विशेषण का ही प्रयोग होता था, किंतु अब हिंदी में आदर के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है। जैसे– शर्मा (नौकर) अच्छा है। श्रीवास्तव (अध्यापक) अच्छे हैं। अंग्रेजी में You मूलतः बहुवचन है, किंतु अब एक वचन में आता है। हिंदी में 'तुम' की यहीं स्थिति है।

2) **लिंग संबंधी परिवर्तन :** लिंग संबंधी परिवर्तन वाक्यपरिवर्तन की मुख्य दिशा है। संस्कृत में कर्ता या कर्म के लिंग के अनुसार क्रिया परिवर्तित नहीं होती थी, किंतु हिंदी में परिवर्तित होती है। यथा –

रामः गच्छति, = राम जाता है।

सीता गच्छति = सीता जाती है।

पहले हिंदी में स्त्रीलिंग प्रयोग था– उदा. 'अब हम जा रही है। अब प्रायः लड़कियाँ और महिलाएँ प्रयोग करने लगी है– हम जा रहे हैं।

3) **पुरुष संबंधी परिवर्तन :** पहले प्रयोग चलता था – ''शाम ने कहा कि मैं स्कूल नहीं जाऊँगा।'' अब – अंग्रेजी के प्रभाव के कारण होता है– शाम ने कहा कि वह स्कूल नहीं जाएगा।

4) **लोप :** पूर्ववर्ती प्रयोगों में कुछ लुप्त हो जाने से वाक्य अपेक्षा कृत छोटे हो जाते हैं। जैसे हिंदी में–

प्राचीन प्रयोग – राम नहीं आता है।

नवीन प्रयोग – राम नहीं आता।

प्राचीन प्रयोग – शाम नहीं आ रहा है।

नवीन प्रयोग – शाम नहीं आ रहा।

प्राचीन प्रयोग – आँखों से देखी घटना।

नवीन प्रयोग – आखों–देखी घटना।

प्राचीन प्रयोग – वह पढ़ेगा लिखेगा नहीं।

नवीन प्रयोग – वह पढ़े–लिखेगा नहीं।

5) **आगम:** अतिरिक्त शब्दों के आ जाने से वाक्य बड़े हो जाते हैं। हिंदी में पुराना प्रयोग था 'राम ने कहा मैं जाऊँगा।' फारसी के प्रभाव के कारण 'कि' आ गया–राम ने कहा कि मैं जाऊँगा।

हिंदी का प्राकृत प्रयोग है– 'जो लड़का आया था, चला गया। अब अंग्रेजी प्रभाव के कारण एक अतिरिक्त शब्द– 'वह' प्रयोग में होने लगा– 'वह लड़का जो आया था, चला गया।'

6) **पदक्रम में परिवर्तन :** वाक्य रचना पदक्रम से भी परिवर्तित हो जाती है। विभक्ति-लोप, नये प्रयोग आदि के कारण पदक्रम परिवर्तित होता रहता है। संस्कृत और हिंदी की तुलना करें तो संस्कृत में पदक्रम बहुत निश्चित नहीं था, किंतु हिंदी में वह काफी निश्चित हो गया है। यह बड़ा परिवर्तन है। इधर हाल में नवीनता के कारण हिंदी में, पदक्रम संबंधी कई परिवर्तन हुए हैं। हिंदी में विशेषण पदबंध संज्ञा शब्दों के पहले आते रहते हैं, अब बाद में रखे जाते है। जैसे 'रात भर की बात - बात रात भर की।'

बल देने के लिए भी कभी -कभी पदक्रम में परिवर्तन किए जाते हैं। जैसे- 'आज बंबई जाऊँगा, बंबई आज जाऊँगा।' 'वह पीछे-पीछे चल रहा था, चल रहा था वह पीछे- पीछे।'

4.3 सारांश :

भाषा विज्ञान के प्रधान चार अंग है- ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, वाक्य विज्ञान और अर्थ विज्ञान। इन चार विज्ञानों का स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया जाता है। प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत वाक्य विज्ञान पर विस्तृत विवेचन किया गया है। वाक्य विश्लेषण प्रकार, वाक्य विज्ञान संकल्पना और स्वरूप आदि पर विस्तार से विवेचन किया है। वाक्य भाषा की सबसे स्वाभाविक सहज इकाई है। पारस्परिक विचार विनिमय वाक्यों द्वारा ही होता है, अतः वाक्य विज्ञान भाषा विज्ञान का महत्त्वपूर्ण अंग है।

वाक्य विज्ञान में वाक्य की परिभाषा, संरचना, वाक्य के मूल आधार, वाक्यों के प्रकार, वाक्य परिवर्तन के कारण इन सबका सूक्ष्म अध्ययन होता है। भाषा का मुख्य कार्य भावों की अभिव्यक्ति है। भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति वाक्य के माध्यम से होती है। वास्तव में भाव मन में अव्यक्त वाक्य के रूप में विद्यमान होते हैं। ध्वनि-प्रतीकों या लिपि चिह्नों का आधार पाने पर वाक्य का व्यक्त रूप सामने आता है। पूर्ण अर्थ की प्रतीति करानेवाले शब्द समूह को वाक्य कहते हैं। वाक्य में पदक्रम का महत्त्व होता है। हिंदी में कर्ता + कर्म + क्रिया, इस तरह पदक्रम होता है। अन्य भाषा का प्रभाव, स्पष्टता, बलाघात, मानसिक स्थिति, नवीनता, भावुकता, मुखसुख परंपरा का प्रभाव आदि वाक्य परिवर्तन के कारण है।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. वाक्य विश्लेषण के ..... प्रकार है।

   क) एक ख) दो ग) तीन घ) चार

2. भाषा का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग ..... है।

   क) शब्द ख) वाक्य ग) ध्वनि घ) रूप

3. वाक्य को लोग ..... शब्दों का समूह मानते हैं।

   क) अपूर्ण ख) पूर्ण ग) संपूर्ण घ) सार्थक

4. वाक्य ..... का समूह होता है।

क) शब्दों ख) ध्वनि ग) पदों घ) वाक्यों

5. आकृति के आधार पर वाक्य के सामान्यतया ..... प्रकार माने जाते हैं।

क) एक ख) दो ग) तीन घ) चार

6. भाषा की सहज इकाई ..... है।

क) ध्वनि ख) वाक्य ग) पद घ) रूप

7. वाक्य के अंग ..... है।

क) दो ख) एक ग) तीन घ) चार

8. भाषा में क्रिया का स्थान ..... है।

क) प्रमुख ख) गौण ग) मिश्र घ) सरल

ब) उचित मिलान कीजिए।

अ	**ब**
1) भाषा का अंग	अ. वाक्य
2) भाषा का मुख्य कार्य	ब. भावों की अभिव्यक्ति
3) वाक्य भाषा की	क. इकाई है।
4) पतंजलि	ड. महाभाष्य
5) कर्ता	इ. ने
6) भाषा	ई. भाष्

क) सही या गलत लिखिए।

1) वाक्य शब्दों का समूह है।

2) वाक्य ध्वनियों का समूह है।

3) भाषा का कार्य विचार-विनिमय नहीं है।

4) वाक्य भाषा की सहज इकाई है।

5) 'महाभाष्य' यह ग्रंथ आ. वामन का है।

6) वाक्य के दो अंग है।

4.5 पारिभाषिक शब्द शब्दार्थ :

अन्विताभिधावाद = वाक्यवाद, वाक्य की सत्ता

अभिहितान्वयवाद = पदवाद, पद की सत्ता

अन्विति = व्याकरणिक रूप में एकरूपता

अन्वय = पारस्परिक एकरूपता

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

अ) उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) ग. तीन 2) ख. वाक्य 3) घ. सार्थक 4) क. शब्दों

5) घ. चार 6) ख. वाक्य 7) क. दो 8) क. प्रमुख

ब) उचित मिलान कीजिए।

	अ	**ब**
1)	भाषा का अंग	ई. वाक्य
2)	भाषा का मुख्य कार्य	इ. भावों की अभिव्यक्ति
3)	वाक्य भाषा की	ड. इकाई है।
4)	पतंजलि	क. महाभाष्य
5)	कर्ता	ब. ने
6)	भाषा	अ. भाष्

क) सही या गलत लिखिए।

1) सही 2) गलत 3) गलत

4) सही 5) गलत 6) सही

4.7 स्वाध्याय :

1) वाक्य विज्ञान के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

2) वाक्य की परिभाषा देकर वाक्य विश्लेषण के प्रकारों का विवेचन कीजिए।

3) वाक्य परिवर्तनों के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

4) वाक्य के प्रकारों को स्पष्ट कीजिए।

5) वाक्य की आवश्यकताएँ स्पष्ट कीजिए।

4.8 क्षेत्रीय कार्य :

भाषाविज्ञान के अंगों – ध्वनि विज्ञान, पद विज्ञान, अर्थ विज्ञान आदि को प्राप्त करके उसका अध्ययन करें। भाषाविज्ञान के अन्य ज्ञान–विज्ञान के संबंधों का अध्ययन करें।

4.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

1) श्रीमाल डॉ. नेमीचंद – 'भाषा विज्ञान', श्रुति पुब्लिकेशन्स, जयपुर.

2) पाटील हणमंतराव – 'आधुनिक भाषा विज्ञान', प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली.

3) पाण्डेय लक्ष्मीकांत – 'भाषा विज्ञान एवं हिंदी भाषा', आशिष प्रकाशन, कानपूर.

4) मौर्य डॉ. राजनारायण – 'भाषा विज्ञान के तत्त्व', साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद संस्करण – सन् 1984 ई.

5) चौधरी तेजपाल – 'भाषा और भाषा विज्ञान', विकास प्रकाशन, कानपूर.

6) तिवारी डॉ. भोलानाथ – 'भाषाविज्ञान', प्र. किताब महल, 15, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद.

7) शर्मा देवेंद्रनाथ – 'भाषाविज्ञान की भूमिका', राधाकृष्ण प्रकाशन 2, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली– 1972 ई. तृतीय, संशोधित संस्करण.

❑❑❑

इकाई–1
अर्थ विज्ञान

अनुक्रम–रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 विषय विवरण

अर्थ विज्ञान

पाठ्यविषय

1.2.1 अर्थ की अवधारणा

1.2.2 शब्द और अर्थ का संबंध

1.2.3 अर्थ परिवर्तन के कारण

1.2.4 अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

1.3 सारांश

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 स्वाध्याय

1.8 क्षेत्रिय कार्य

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.0 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययनोपरांत

- अर्थविज्ञान की अवधारणा से परिचित हो जाएँगे।
- शब्द और अर्थ का संबंध बता पाएँगे।

- अर्थ परिवर्तन से परिचित हो जाएँगे।
- अर्थ परिवर्तन के कारणों को बता पाएँगे।
- अर्थ परिवर्तन की दिशाओं से परिचित हो जाएँगे।

1.1 प्रस्तावना :

प्रथम सत्र में हम भाषा के स्वरूप से परिचित हो चुके हैं। इसके साथ हमने पिछली सत्र में स्वनिम विज्ञान, रूपीम विज्ञान और वाक्य विज्ञान का अध्ययन किया है। अब इस सत्र की इस इकाई के अंतर्गत हम 'अर्थ विज्ञान' का अध्ययन करेंगे।

सामान्यत: अवलोकनार्थ ज्ञात होता है कि समस्त प्राणी अपने स्तर पर ध्वनि संकेतों में बोलते हैं। मनुष्य के मुख से निकली ध्वनि या ध्वनि-समूह जिसे अर्थ प्राप्त हो जो सार्थक हो वही भाषा का रूप प्राप्त करती है। मनुष्य के विचार-विनिमय का साधन भाषा है। अलग-अलग अभिव्यक्ति का माध्यम भी भाषा है। इसी भाषा का 'वैज्ञानिक अध्ययन' भाषा विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। भाषा की लघुत्तम इकाई, ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य आदि का वैज्ञानिक अध्ययन भाषा-विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत 'अर्थ विज्ञान' का भी अध्ययन किया जाता है। ज्ञान की महत्वपूर्ण शाखा 'भाषा विज्ञान' के अंतर्गत आती है। जैसे ध्वनि की उत्पत्ति, उच्चारण, शब्द व्युत्पत्ति, भाषा परिवर्तन आदि का वैज्ञानिक अध्ययन कर विचार व्यक्त किए जाते हैं, ठीक उसी तरह अर्थ विज्ञान के अंतर्गत भी 'अर्थ' का 'वैज्ञानिक' अध्ययन किया जाता है।

1.2 विषय विवरण :

अर्थ विज्ञान :

शब्द और अर्थ का संबंध स्वीकार किया गया है। बिना शब्द के अर्थ की प्रतीति संभव नहीं और बिना अर्थ के शब्द, शब्द नहीं। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। भर्तुहरि ने कहा है कि, 'शब्द और अर्थ' एक आत्मा के दो भेद हैं, जो सदैव साथ-साथ रहते हैं। जब हम 'पुस्तक' शब्द का उच्चारण करते हैं, तो श्रोता के मानस पटल पर एक 'छवि' उभर आती है। वहीं 'पुस्तक' शब्द का अर्थ है। सामान्य तौर पर कहा जाए, तो 'शब्द' ध्वनि रूप होता है और उसका अर्थ वस्तु रूप।

शब्द और अर्थ के इस नित्य संबंध को **'संकेत ग्रह'** कहते हैं। यह संबंध परंपरागत और यादृच्छिक होता है। संकेत ग्रह के चार आधार हैं। जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य।

जैसे कि- रेसकोर्स में एक सफेद घोडा दौड़ रहा है। उसका नाम 'जैक' है। इन चारों को ही क्रमश: जाति (घोड़ा), गुण (सफेद), क्रिया (दौड़ रहा है) और द्रव्य (जैक) कहते हैं। यहाँ 'द्रव्य' का अर्थ व्यक्तिवाचक संज्ञा है।

संकेत ग्रह के साधन आठ हैं- व्यवहार, उपमान, आप्तवाक्य, व्याकरण, कोश, निकटवर्ती शब्द, शेष वाक्य और विवृति।

अर्थ का स्वरूप एवं परिभाषा – भाषा विज्ञान की शाखा अर्थविज्ञान है। अर्थविज्ञान में 'अर्थ' के विषय में विचार किया जाता है। अर्थविज्ञान को **'शब्दार्थ विचार'**, **'अर्थ विचार'** भी कहा जाता है।

प्रो. पोस्ट गटे ने अर्थविज्ञान को 'रिहमटालाजी' और ब्रेअल ने 'सेमंटिक' नाम से संबोधित किया है।

परिभाषा – भारतीय विद्वान

1. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना – ''अर्थ शब्द की ऐसी आंतरिक शक्ति है, जो शब्द के उच्चारण करते ही उस वस्तु की प्रतीति कराया करती है, जिसके संदर्भ या प्रकरण में कोई शब्द बोला या लिखा जाता है।''

इस परिभाषा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि-

1. अर्थ शब्द की आंतरिक शक्ति है।

2. शब्दोच्चारण से अर्थ की प्रतीति होती है।

3. अर्थ का आधार परिणाम होता है।

4. शब्द विशेष का अर्थ उस संदर्भ के अनुसार होता है।

संक्षेप में कहा जाए तो – ''शब्द के द्वारा जो प्रतीति होती है उसे अर्थ कहते हैं।''

2. डॉ. भोलानाथ तिवारी – ''किसी भाषिक इकाई, ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्यांश, मुहावरा, वाक्य को किसी इंद्रिय-कान, आँख, त्वचा से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही मानसिक प्रतीति अर्थ है।''

पाश्चात्य विद्वान

1. एलर्फ्रेड सिजविक – ''Meaning depends on consequences and truth depends on meaning.'' अर्थात अर्थ परिणामों पर आधारित होता है और सत्य अर्थ पर आधारित होता है। उन्होंने परिणाम को ही अर्थ माना है।

2. शिलर – ''Meaning is the essentially personal what anything means depends on who means it.'' अर्थात् अर्थ अनिवार्यत: व्यक्तिगत होता है; क्योंकि किसी वस्तु का अर्थ उस व्यक्ति पर निर्भर करता है, जो उस वस्तु का अभिप्राय रखता है।''

1.2.1 अर्थ की अवधारणा :

अर्थविज्ञान के स्वरूपगत विश्लेषण के समय उसका मनोविज्ञान से संबंध विचारणीय है। ध्वनि तथा अन्य भाषा वैज्ञानिक शाखाएँ भाषा के बहिरंग से जुड़ी होने के कारण मानसिक दृष्टि से प्रभावित नहीं

करती; किंतु अर्थ का संबंध मनोविज्ञान से होता है। किसी वस्तु का बोध कराने के लिए प्रारंभिक प्रयोक्ताओं ने जो नाम दिया, वह कौन सी परिस्थितियों में दिया, इसके लिए व्यक्ति की मानसिकता का बोध होता है। प्रत्येक शब्द का अपना अर्थ, भाव या विचार होता है। इसी कारण उसे सार्थकता मिलती है। पारिभाषिक दृष्टि से उसे अर्थतत्व या अर्थग्राम कहा जाता है। लेकिन किसी शब्द का अर्थ सदैव एक-सा नहीं रहता, धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन होता रहता है।

अर्थविज्ञान में परिवर्तन का अध्ययन किया जाता है। इस विकासक्रम के अंतर्गत हम उस मूल कारण को ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं, जिनसे यह विकार आया है। इस मूल कारण में हमें युग और समाज की विकृति अथवा धारणाओं का आभास हो जाता है तथा समाज की मानसिकता कब किस रूप में परिवर्तित होती रहती है, इसका पूर्ण बोध ज्ञान होता है। जैसे कि 'लुच्चा' शब्द, आधुनिक संदर्भों में इसका अर्थ बुरा, उदंड, धृष्ट व्यक्ति होता है; लेकिन प्रारंभ में इसका अर्थ लुचित केशो वाला सिद्ध महात्मा होता था। पुराने अर्थ का अब कोई संबंध नहीं रहा। पूरी तरह से विपरीत बन गया है। इससे स्पष्ट होता है कि मूल अर्थ परिवर्तित क्यों हो गया। यह परिवर्तन किस दिशा में हुआ है। अर्थात् अर्थ पहले से श्रेष्ठ हुआ या अपकर्ष। पहले अर्थ से दूसरे अर्थ में कोई संबंध रहा है या नहीं।

गाय को गाय क्यों कहा गया, घोड़ा क्यों नहीं कहा गया। वस्तुत: इसका संबंध तद्युगीन मानव की स्थिति से है। वस्तु के नामकरण का आधार उस समय के लोगों की मानसिकता तथा वातावरण पर निर्भर करता है। बिना उसके ज्ञान के इसका विवेचन असंभव है। यद्यपि यह अध्ययन भी अर्थविज्ञान का विषय है, किंतु यहाँ तक पहुँचने के लिए उस युग की समस्त प्रामाणिक ऐतिहासिक सामग्री की उपलब्धि अत्यावश्यक है।

भाषा में नामकरण का आधार पूर्णत: वैज्ञनिक न होकर भावानुभूति से जुड़ा है और अधिकांश नाम यादृच्छिक हैं। यादृच्छिक इस अर्थ में कि उस शब्द का उस वस्तु से कोई सीधा संबंध नहीं होता, केवल शब्द संकेत मात्र देते हैं तथा लिखने, पढ़ने या सुनने में उस वस्तु का बोध स्वत: हो जाता है। यहीं अर्थ की प्रतीति है। कालांतर में समय के प्रवाह में अर्थ बनते बिगड़ते रहते हैं। अर्थविज्ञान के अंतर्गत अर्थ की उन सारी स्थितियों का अनुशीलन किया जाता है। इस तरह अर्थविज्ञान भाषा विज्ञान का ही अनुषंगिक विषय है तथा भाषाविज्ञान से हटकर उसका पृथक अस्तित्व भी अंतत: भाषाविज्ञान से ही जुड़ा रहता है।

1.2.2 शब्द और अर्थ का संबंध :

शब्द और अर्थ का घनिष्ठ संबंध है। यदि शब्द को हम शरीर मानते हैं, तो अर्थ उसकी आत्मा है। कवि कुलगुरू कालिदास ने 'रघुवंश' के प्रथम श्लोक में ही शब्द और अर्थ की भाँति संयुक्त पार्वती और शिव से शब्द और अर्थ के सम्यक ज्ञान की याचना की है-

''वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगत: पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरी।''

अर्थात् चौपाया पशु जो भूँकता है, नदी, सिंह, पहाड, पर्वत आदि की इसी तरह से अर्थ की प्रतीति होती है। अर्थप्राप्ति से तात्पर्य यह कि विचार या भाव पहले से मन में रहते हैं, इस विचार या भाव (अर्थ) को शब्दों द्वारा सिर्फ व्यक्त किया जाता है। यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि शब्द जैसे अर्थ प्राप्त हो, जो सार्थक हो उससे प्रकाशित होनेवाले अर्थ का ज्ञान वक्ता-श्रोता दोनों को हो। भर्तृहरि ने अर्थ का लक्षण निरुपण करते हुए लिखा है-

''यास्मिंस्तुच्चरिते शब्देयदायोऽर्थः प्रतीयते।
तमाहुरर्थ तरचेव नान्यदपरच लक्षणम्।।''

(वाक्यपदीय, 2/230)

''शब्दों के उच्चारण से जिस अर्थ की प्रतीति होती है- वही उसका अर्थ है, अर्थ का कोई दूसरा लक्षण नहीं है।''

डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार भर्तुहरि की बात अपने स्थान पर ठीक होते हुए भी कुछ आलोचना की अपेक्षा रखती है। क्या अर्थ केवल 'शब्द' का होता है? 'राम मारे शर्म के पानी-पानी हो गया' में 'पानी-पानी हो' शब्द तो नहीं हैं, किंतु यहाँ अर्थ की अपेक्षित प्रतीति केवल 'पानी' शब्द से नहीं हो सकती। वह 'पानी-पानी होना' से ही हो सकती है। अतः भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहावरा आदि) को किसी भी इन्द्रिय (प्रमुखतः कान, आँख) से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वहीं अर्थ है।'

अर्थ की प्रतीति दो प्रकार से होती है –

(क) आत्म-अनुभव से - अर्थात् स्वयं किसी चीज का अनुभव करके। उदा. 'चीनी मीठी होती है' में मीठी के 'अर्थ की प्रतीति स्वयं चीनी रखने से हो जाती है। पानी, गर्मी, धूप, ठंड, नमकीन, खट्टा आदि के अर्थ की प्रतीति भी इसी प्रकार हो सकती है।

(ख) पर-अनुभव से - अनेक क्षेत्र ऐसे भी हो सकते हैं जहाँ हमारी पहुँच नहीं होती, उस क्षेत्र में संबंध शब्दादि के अर्थ की प्रतीति के लिए हमें दूसरों के अनुभव या ज्ञान पर निर्भर रहना पड़ता है। उदाहरण के लिए, हम में से अनेक लोगों ने 'जहर' नहीं देखा होगा, किंतु दूसरों से ऐसा सुन रखा है कि जहर जीव को मार डालने वाला होता है। अतः 'जहर' शब्द के अर्थ की प्रतीति का मूलाधार आत्म-अनुभव न होकर पर-अनुभव है। ऐसे ही अन्य अनेक प्रकार के शब्द हो सकते हैं।

शब्द और अर्थ का संबंध :

यह सवाल हमेशा रहा है कि 'शब्द और अथ' का क्या संबंध है? क्यों पानी कहने से 'पानी' का ही बोध होता है। 'मिट्टी' का काठ का नहीं। क्या 'पानी शब्द और पानी द्रव्य का कोई संबंध है?' हम देख चुके हैं कि 'भाषा यादृच्छिक ध्वनि-प्रतिकों की व्यवस्था है।' तात्पर्य यह कि भाषा के शब्द प्रतीत हैं। डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार कुछ अपवादों को छोड़ दें तो शब्द और अर्थ का कोई स्वाभाविक एवं सहज

संबंध नहीं है। समाज ने यह संबंध मान लिया है, या कहें कि समाज ने विभिन्न शब्दों को विभिन्न अर्थों में प्रतीक रूप में स्वीकार कर लिया है। शब्द विशिष्ट अर्थों के प्रतीत या संकेत हैं, इसीलिए उन शब्दों के प्रयोग रे. श्रोता उन्हीं अर्थो को ग्रहण करता है। उदाहरण के लिए, समाज ने 'पानी' द्रव्य के लिए संकेत या प्रतीत मान रखा है, इसीलिए पानी कहने से उसी का बोध होता है, किसी और चीज का नहीं। हम जानते हैं कि, 'बाथरूम', 'टॉयलेट', 'क्लोकरूम' के अर्थ इसी प्रकार मान लेने से बदल गए हैं। संकेत-गृह के कारण ही शब्द अर्थ विशिष्ट का बोध कराता है। अर्थबोध में बाधा से परिचित होने से पूर्व हमें अर्थबोध के साधनों पर दृष्टि ड़ालना आवश्यक होगा।

अर्थबोध के साधन:

शब्द और अर्थ का संबंध अटूट है। शब्द के अर्थ को हम कैसे प्राप्त करते हैं, कैसे जान पाते हैं, कैसे ग्रहण करते हैं आदि बातों को जानना आवश्यक है। शब्द संकेत होते हैं अत: अर्थ संकेतक भी हम कह सकते हैं।

भारतीय परंपरा में अर्थबोध के आठ साधन माने गए हैं-

''शक्तिग्रहंव्याकरणोपमान-कोशान्तवाक्याद्
व्यवहारतश्यवाक्यस्य शेषाद् निवृतेर्वदंति
सिध्दपदस्य बृहा:।

1) व्याकरण, 2) उपमान, 3) कोश, 4) आप्तवाक्य, 5) व्यवहार, 6) वाक्यकोष-प्रकरण, 7) विवरण, व्याख्या (विवृत्ति), 8) ज्ञात पद का सानिध्य। विशेषज्ञों के अनुसार इनका विवेचन निम्नांकित है-

1) व्याकरण : व्याकरण से अर्थबोध होता है। शब्द रूपों के अर्थ-ज्ञान के लिए यह अन्यतम है। व्याकरण से रूपों का ज्ञान होता है। कुंती पुत्र की जगह इसका रूप हो ''कौन्तेय'' तब कौन्तेय का अर्थ व्याकरण द्वारा ही होता है और एक उदाहरण कि हमें 'मानव' का अर्थ क्या है यह पता हो और यह पता हो कि हिंदी में 'ता' प्रत्यय भावबोधक संज्ञा बनाने के लिए आता है तो हम 'मानवता' का अर्थ जान जाएँगे। इस तरह अर्थबोध के साधनों में व्याकरण महत्वपूर्ण है।

2) उपमान : उपमान का अर्थ सादृश्य होता है। किसी वस्तु के समान वस्तु का अर्थबोध उस वस्तु को उपमान बनाकर कराया जा सकता है। अत: उपमान का अर्थ सादृश्य होता है। जैसे-गाय के नीलगाय, कुत्ते से भेड़िया आदि।

3) कोश : भाषा पर अधिकार रखने वाले विद्वानों को भी कोश की आवश्यकता पड़ती है। कोश में शब्दों का अर्थ दिया होता है। पढ़ते समय जिन शब्दों का अर्थ हम नहीं जान सकते उन्हें कोश द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। कोश अर्थपक्ष को तो प्रकट करता है साथ ही व्याकरण पक्ष को भी। यानी कोश के अनुसार शब्द का अर्थ भी दिया जाता है, एक शब्द के कई अर्थ भी होते हैं। साथ ही वह एकवचनी है या अनेकवचनी,

संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया, स्त्रीलिंगी, पुल्लिंगी आदि बातों को भी दिया जाता है। इसलिए अर्थबोध के साधनों में कोश एहम् भूमिका निभाता है।

4) आप्तवाक्य : आप्त का अर्थ होता है यथार्थवक्ता। यथार्थवक्ता द्वारा जो कहा गया है वही आप्त वाक्य है। संसार की अनेक बातें हम पढ़कर आत्मसाथ कर सकते हैं लेकिन कुछ ऐसी बातें भी हैं जिन्हें जानने का प्रत्यक्ष साधन कुछ भी नहीं है। ऐसी दशा में किसी के कथन पर विश्वास करने के अतिरिक्त कोई साधन नहीं रहता। उदा. 'आत्मा' के अर्थ के लिए दार्शनिकों, आध्यात्मिकों के कथन पर विश्वास करना पड़ता है।

5) व्यवहार : व्यवहार को हम अर्थज्ञान का प्रथम सोपान मान सकते हैं क्योंकि भाषा व्यवहार से सीखी जाती है। आरंभ में माता-पिता से बच्चा अलग-अलग वस्तुओं का परिचय प्राप्त करता है। अत: व्यवहार के द्वारा ही वस्तुओं से परिचय होता है। धीरे-धीरे घर से समाज, पाठशाला आदि के जरिए मनुष्य शब्दकोश बढ़ाते हुए भाषा अर्जित करता जाता है। हम कह सकते हैं कि व्यवहार अर्थबोध का प्रमुख साधन है। समाज में तरह-तरह के व्यवहारों से वह भाषा के अनेक शब्दों के अर्थ को प्राप्त करता है।

6) वाक्यकोष : वाक्यकोष अर्थात 'प्रकरण' द्वारा हम आसानी से अर्थ-ज्ञान कर लेते हैं, जिसे 'वाक्य-कोष' भी कहा गया है। अनेकार्थी शब्दों का विशेष प्रयोग में प्रकरण या संदर्भ में अर्थ ज्ञात होता है। 'सैंधव' का अर्थ 'घोडा' और 'नमक' दोनों होता है – ''सैंधव ले आओ'' का अर्थ खाने के समय निश्चित रूप से नमक ही होगा।

7) विवरण : इसे 'व्याख्या' और 'विवृत्ति' भी कह गया है। बहुत से शब्दों का अर्थबोध व्याख्या के द्वारा ही कराया जा सकता है। जैसे-भाषाविज्ञान का 'अघोष', दर्शन का 'विशिष्टद्वैत'। इसी तरह रीति, वृत्ति, वक्रोक्ति, स्यादवाद, विवर्तवाद आदि शब्द जिनके अर्थज्ञान के लिए व्याख्या की आवश्यकता है।

8) ज्ञात पद का सानिध्य : अर्थबोध के लिए हमेशा ही कोश उलटने की जरूरत नहीं होती। आसपास के शब्दों के सान्निध्य से अज्ञात शब्दों का अर्थ कभी-कभी आसानी से प्राप्त हो जाता है। जैसे-बम्बैया, सुकुल, लंगड़ा, कलकतिया आदि। अर्थबोध का यह भी एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

अर्थबोध में बाधा :

अर्थबोध के साधनों का संक्षिप्त परिचय लेने के पश्चात, अब बाधक कारणों पर दृष्टि ड़ालते हैं। विशेषज्ञों के अनुसार- अर्थबोध के बाधक कारण-

1) समानाधिकरण्य का अभाव

2) संकेत विस्मरण

3) भ्रांत अर्थज्ञान

4) अनभ्यास

5) अतिदूरता

6) अतिसामीप्य

7) इन्द्रियघात

8) मन की अस्थिरता

9) व्यवधान

10) अभिभव

1) समानाधिकरण्य का अभाव : अर्थग्रहण के लिए वक्ता-श्रोता की कल्पना करें तो वक्ता के वाचिक कथन का श्रोता अर्थ ग्रहण करता है। वक्ता और श्रोता के बीच समानाधिकरण्य का अभाव होने पर अर्थग्रहण में बाधा आती है। वक्ता श्रोता के बीच भाषिक समानाधिकरण्य, बौद्धिक समानाधिकरण्य, भावात्मक समानाधिकरण्य आदि के कारण अर्थबोध में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

2) संकेत विस्मरण : किसी भाषा में शब्दों की संख्या दो-चार नहीं होती बल्कि हजारों, लाखों शब्दों को याद रखना आसान नहीं होता। अत: कभी-कभी ऐसा होता है कि ज्ञान शब्द तथा पढ़े हुए शब्द विस्मृत हो जाते हैं। जैसे किसी ने 'वज्र' शब्द पढ़ा हो और किसी के पूछने पर अथवा पढ़ते समय 'वज्र' शब्द का अर्थ स्मृति में न हो। तब ऐसी स्थिती में अर्थप्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है।

3) भ्रांत अर्थज्ञान : भ्रांत अर्थज्ञान से तात्पर्य है शब्द का गलत अर्थ जानना। गलत अर्थ या तो प्राप्त होता है या स्वयं होता है। यदि कच्चा गुरू हो और शब्द का अर्थ देते समय गलत अर्थ देता हो तो शिष्य के संस्कार में भ्रांत अर्थज्ञान बैठ जाता है। शिक्षक बहुत जानें-यह जरूरी नहीं है, लेकिन यह जरूरी है कि जो जाने ठीक जाने। सारांशत: शब्द का सम्यक् अर्थ प्राप्त न होने पर अर्थ की प्रतीति नहीं हो सकती।

4) अनभ्यास : ज्ञान तो अभ्यास से ही होता है। अक्षरज्ञान हो या हिसाब करना हो, भाषाविद् बनना हो अभ्यास प्राप्त ज्ञान भी ध्यान से उतर जाता है। शब्द का अर्थज्ञान भी अभ्यास की माँग करती हैं। प्रचलित शब्द का अर्थ याद में रहता है किंतु जो शब्द प्रचलित नहीं है। अभ्यास की कमी के कारण मन से उतर जाते हैं। शब्दों का अर्थज्ञान मस्तिष्क में रहने के लिए जरूरी है कि अभ्यास करें नहीं तो अनभ्यास के कारण अर्थबोध में बाधा उत्पन्न हो सकती है।

5) अतिदूरता : यंत्र की बात दूसरी है कि अमरिका में बोलने वाले को हम भारत में सून सकते हैं किंतु बगैर यंत्र के हम किसी बड़ी कक्षा का उदाहरण लेते हैं तो जान सकते हैं, पिछे बैठे हुए छात्राओं को अतिदूरता के कारण स्पष्ट सुनाई नहीं देता है तो अर्थ प्रतीति में बाधा उत्पन्न होती है। जब सुनाई ही नहीं देगा तब समझेगा कैसे?

6) अतिसामीप्य : कान में मुँह सटाकर कहने पर भी ठीक से सुनाई नहीं पड़ता। अत: अति दूर होने में भी बाधा और अति निकट होने में भी बाधा।

7) इन्द्रियघात : इन्द्रियघात से तात्पर्य है इन्द्रिय में खराबी होना। वक्ता ठीक हो, आवाज भी बड़ी हो किंतु श्रोता अगर बधिर हो तब भी अर्थ में बाधा होगी। अर्थग्रहण के लिए इन्द्रियों का ठीक होना जरूरी है।

8) मन की अस्थिरता : अस्थिर मन किसी चीज को ग्रहण नहीं करने देता। अगर मन स्थिर नहीं है तो सामने कोई बोलता भी होगा तो सुनाई नहीं देगा। सुनाई भी देगा तो ध्वनि सुनाई देगी– क्या बोल रहा है इसका ग्रहण अस्थिर मन से सम्भव नहीं है।

9) व्यवधान : वैसे तो व्यवधान कई तरह के होते हैं। इन्द्रियघात, मन की अस्थिरता आदि सब ही व्यवधान है। किंतु यहाँ व्यवधान के तात्पर्य ध्वनिबाधक चीज आदि से है। जैसे दीवार के इस पार बोलने वाला दीवार के उस पार को अपना अभिप्राय नहीं पहुँचा सकता।

10) अभिभव : अभिभव से तात्पर्य है दबा देना अत: दबा देने को अभिभव कहते हैं। तेज आवाज धीमी आवाज को दबा देती है। नगाड़े के कर्कश तीव्र ध्वनि में बाँसुरी के मधुर स्वर दबा जाते हैं। जहाँ कोलाहल हो वहाँ भाषा सम्प्रेषित नहीं कर सकते। कोलाहल में भाषण, वार्ता सुनाई नहीं देती। अत: अभिभव के कारण अर्थबोध में बाधा उत्पन्न होती है।

1.2.3 अर्थ परिवर्तन के कारण :

परिवर्तनशीलता प्रकृति का नियम है। अनेक युग आते गए, मानव बदलता गया, न जाने कितने चेहने बदले, भाषा बदली, संस्कृति बदली, सभ्यता और जीवन की ओर देखने का नजरिया भी बदलता गया। इन सबका सामना भाषा को करना पड़ा। भाषा में शब्द बदल, लहजा बदला और अर्थ भी बदलते गए। भाषाविद् 'ग्रे' के अनुसार ''केवल अभी गढ़े गए शब्दों को छोड़कर बहुत कम शब्द यदि कोई हों तो, अपने मूल अर्थ को बचाकर रख सके हैं और असंख्य उदाहरणों में उनके द्योत्यर्थ इतने बदल गए हैं कि केवल धैर्य और जटिल अनुसंधान ही उनके प्रारंभिक अर्थों को बता सकते हैं।'' प्रत्येक शब्द के अर्थ प्राप्त होते हैं। शब्द को प्राप्त अर्थ सर्वदा वहीं (एकही) रहें ऐसा नहीं होता। वह सर्वदा एक ही नहीं रहता बल्कि उसमें परिवर्तन होता रहता है। ध्वनि और भाषा की तरह अर्थ भी परिवर्तनशील रहा है। अर्थ समय की तरह स्थिर नहीं रह पाया है। इसमें निरंतर फिर वह लचीला क्यों न हों बदलाव होता रहा है। भाषाविदों ने यह भी कहा है कि, ''अर्थ, भाषा का सबसे अधिक परिवर्तनशील तत्त्व है।'' परिवर्तन के क्रम में किसी शब्द को पुरानी खाले हट जाती है और वह नये वस्त्र की भाँति नया अर्थ प्राप्त कर लेता है। उदाहरण के लिए अगर हम संस्कृत शब्द लेते हैं। 'आकाशवाणी' तो संस्कृत में इसका अर्थ 'देववाणी' है, किंतु आज आकाशवाणी का अर्थ परिवर्तित होकर (हिंदी में) 'रेडिओ' (ऑल इंडिया रेड़ियो) हो गया है। अर्थ परिवर्तन में भौगोलिक, भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा बौध्दिक कारणों की भूमिका सक्रिय रूप से पाई गई है। अर्थ परिवर्तन होता रहा है, हो रहा है और होता रहेगा। अत: कहा जा सकता है कि भाषा के शब्दों में अर्थ–परिवर्तन एक चिरंतन–प्रक्रिया है। अर्थ परिवर्तन का पता परिवर्तन हो जाने के पश्चात ही लगता है। अत: कुल मिलाकर अर्थ परिवर्तन के विशेषज्ञों के अनुसार दिए गए कारणों को इस रूप में रेखांकित किया जा सकता है–

अर्थ परिवर्तन के कारण:

1) बल का अपसरण
2) वातावरण में परिवर्तन
   (अ) भौगोलिक वातावरण, (ब) सामाजिक वातावरण, (क) प्रथा या प्रचलन-संबंधी वातावरण
3) नम्रता प्रदर्शन
4) आधार सामग्री के आधार पर वस्तु का नाम
5) निर्माण-क्रिया के आधार पर वस्तु का नाम
6) शब्द का एक भाषा के दूसरी भाषा में जाना
7) जानबुझकर नये अर्थ में प्रयोग
8) अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग
   (क) अशुभ या बुरा, (ख) अश्लील, (ग) कटुता या भयंकरता, (घ) अंधविश्वास, (ड) गंदे या छोटे कार्य
9) अधिक शब्दों के स्थान पर एक शब्द का प्रयोग
10) सादृश्य
11) अज्ञान
12) पुनरावृत्ति
13) एक शब्द के दो रूपों का प्रचलन
14) प्रयोगाधिक्य से अर्थ का घिस जाना
15) किसी राष्ट्र, जाति अथवा सम्प्रदाय के प्रति मनोभाव
16) एक वर्ग के एक शब्द में अर्थ परिवर्तन
17) साहचर्य
18) किसी शब्द, वर्ग या वस्तु में एक विशेषता का प्राधान्य
19) व्यंग्य
20) भावावेश
21) व्यक्तिगत योग्यता
22) शब्दों में अर्थ का अनिश्चय
23) वस्तु का नाम वर्ग को देना
24) आलंकारिक प्रयोग
25) दूसरी भाषा का प्रभाव
26) पीढ़ी परिवर्तन
27) एक भाषा-भाषी लोगों का अलग-अलग विकास

1) बल का अपसरण : शब्द का उच्चारण करते समय यदि केवल एक ध्वनि पर बल देने लगे तो धीरे-धीरे शेष ध्वनियाँ कमजोर पड कर लुप्त हो जाती हैं। ध्वनि की ही भाँति अर्थ में भी यह 'बल' काम करता है। किसी शब्द के अर्थ के प्रधान पक्ष से हटकर, बल यदि दूसरे पक्ष पर आ जाता है, तो धीरे-धीरे वही अर्थ प्रधान हो जाता है और प्रधान अर्थ लुप्त हो जाता है। जैसे- 'गोस्वामी' शब्द का आरंभ का अर्थ था, 'बहुत-सी गायों का स्वामी।' बहुत सी गायों का स्वामी 'धनी' होगा अत: माननीय भी हुआ। वहीं एक और भावना कार्य करने लगी वह यह कि जो अधिक गायों की सेवा करेगा, वह धर्मपरक भी होगा। इस प्रकार, बल के अपसरण से 'गोस्वामी' शब्द 'गायों के स्वामी' के अर्थ से चलकर 'माननीय धार्मिक व्यक्ति' का वाचक हो गया। इसी अर्थ में यह मध्ययुगीन संतों के नाम (गोसाई तुलसीराम) के साथ प्रयुक्त होता है। या बाद में 'गोस्वामी' की व्याख्या 'इन्द्रियों का स्वामी' के अर्थ में भी की गई, लेकिन वह बाद में व्याख्या मात्र है। मूल अर्थ वह था नहीं। अब तो गोस्वामी या गोसाई नाम की एक जाति भी हो गई है।

2) वातावरण में परिवर्तन : वातावरण परिवर्तन हो जाने से भी कुछ शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। वातावरण कई प्रकार के हैं अत: उन्हें अलग-अलग लेना उचित होगा।

अ) भौगोलिक वातावरण : प्राकृतिक सम्प्रदा प्राय: सभी स्थानों पर होती है, किंतु सभी स्थानों पर वह एक-सी नहीं हो सकती। नदी, पर्वत, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि में स्थान भेद के अनुरूप भेद होता है। उदाहरण के तौर पर हम मान ले कि हम एक ऐसे स्थान पर रह रहे हैं जहाँ 'क' नाम का पेड़ अधिक है और उससे हमें लाभ है। थोड़े दिन के लिए हम वहाँ से हटकर कहीं और चले गए जहाँ वह पेड़ तो नहीं है पर एक दूसरा पेड़ उसी प्रकार बहुतायत में मिलता है, साथ ही उसी पेड़ की भाँति लाभकर भी है। ऐसी दशा में यह स्वाभाविक है कि हम उसी पुराने नाम से नए पेड़ को भी पुकारने लगे। वेदों की प्राचीनतम् ऋचाओं में 'उष्ट्रा' का प्रयोग एक प्रकार के जंगली बैल के लिए हुआ है, पर बाद में संभवत: जब आर्य मरूभूमि में आ गए थे, इसका प्रयोग ऊँट के लिए होने लगा।

(ब) सामाजिक वातावरण : एक ही भाषा में एक ही समय में समाज के वातावरण के अनुसार शब्दों का अर्थ परिवर्तित होता रहता है। अँग्रेजी के मदर (Mother) और सिस्टर (Sister) शब्द का अर्थ साधारणत: कुछ और है। इसी प्रकार सभा में व्याख्यान देने वाले के 'भाई' और 'बहन' शब्द कुछ दूसरे अर्थ रखते हैं और घर में भाई-बहन का प्रयोग कुछ दूसरा अर्थ रखता है। किसी ऑफिस में कार्य करने वाले को रविवार के दिन देर तक सोते रहने पर जब उसकी पत्नी 'अरे भाई उठिए' कहकर जगाती है तो उसका आशय उन महाशय से साधारण 'भाई' का संबंध जोड़ने का कभी नहीं रहता। इस प्रकार वातावरण के अनुसार शब्दों का अर्थ परिवर्तन होता रहता है।

(क) प्रथा या प्रचलन-संबंधी वातावरण : लोक प्रथाएँ या रीति-रिवाज का प्रचलन भी शब्दों में अर्थपरिवर्तन उपलब्ध करते रहते हैं। लौकिक प्रथाएँ तथा रस्म-रिवाज भी समय के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। इस वातावरण के परिवर्तन में ऐसा होता है, कि पुरानी प्रथाओं के कुछ शब्द तो लुप्त हो जाते हैं, किंतु कुछ शब्द नए अर्थ में प्रयुक्त होने लगते हैं। वैदिक शब्द 'यजमान' यज्ञ करनेवाले के लिए प्रयुक्त होता

था। यज्ञ की प्रथा समाप्त होने के साथ-साथ उसका वह अर्थ भी समाप्त हो गया। किंतु यजमान यज्ञ कराने वाले को कुछ देता था; अत: आज जो भी ब्राह्मण या नाई-धोबी को नियमित रूप से देता है, 'यजमान' कहलाता है। 'स्वयंवर' की प्रथा लुप्त हो जाने पर भी 'वर' शब्द 'दूल्हा' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जबकि इसके मूल अर्थ में 'चयन' का भाव छिपा हुआ है। ऐसे अर्थ परिवर्तन होनेवाले शब्द अनेकानेक मिलते हैं।

3) नम्रता प्रदर्शन : नम्रतावश ऐसे शब्दों का प्रयोग प्राय: ऐसे अर्थ में कर दिया जाता है, जो उस शब्द का वास्तविक अर्थ होता नहीं। इसी कारण नम्रता प्रदर्शन से शब्दों के अर्थों में भारी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए किसी आदरणीय व्यक्ति को यह नहीं कहते कि 'आज आप मेरे घर पर आइए' अपितु कहते हैं, 'आप मेरी कुटिया को पवित्र कीजिए।' वस्तुत: पवित्र करना का अर्थ 'आना' नहीं हैं, किंतु नम्रता तथा 'आना' अथवा उपस्थित होना अर्थ में इसका प्रयोग होने लगा है। अत: 'पवित्र करना' का अर्थ ऐसे संदर्भों में 'आना' या 'उपस्थित होना' भी हो गया है। इस प्रकार इसका अर्थ परिवर्तित हो गया है। 'आपका दौलतखाना कहाँ है', मेरा गरीबखाना यही हैं, 'श्रीमान किन-किन अक्षरों को सुशोभित करते हैं' (क्या नाम हैं?) आदि अनेकानेक अन्य प्रयोगों में भी अधोरेखित अक्षरों में अंकित अंशो के अर्थ परिवर्तन हुए है।

4) आधार सामग्री के आधार पर वस्तु का नाम : कभी-कभी जब कोई नई वस्तु बनती है, तो किसी अन्य अच्छे नाम के अभाव में उसे सामग्री के नाम से ही पुकारने लगते हैं, इस प्रकार सामग्री के नाम के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। 'शीशा' मूलत: सामग्री का नाम है। पहले धातु के दर्पण बनते थे किंतु वे बहुत अच्छे नहीं होते थे। बाद में दर्पण शीशे के बनने लगे तो दर्पण को भी शीशा कहने लगे। इस प्रकार 'शीशा' शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ गया।

5) निर्माण-क्रिया के आधार पर वस्तु का नाम : निर्माण क्रिया के आधार पर वस्तु का नामकरण कर देते हैं, और तब भी उस शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ जाता हैं। संस्कृत में ग्रंथ धातु का अर्थ है 'गूँथना', 'एक में सिलना', 'एक में बाँधना' आदि। भारत में भोजपत्र पर लिखकर इन्हें एक में सिलते या ग्रंथित कर देते थे, इसीलिए पुस्तक के लिए 'ग्रंथ' (जो गूँथा गया हो) शब्द का प्रयोग चला।

6) शब्द का एक भाषा से दूसरी भाषा में जाना : कोई शब्द जब एक भाषा से दूसरी भाषा में जाता है तो उसमें प्राय: अर्थ-संकोच हो जाता है। इसका कारण यह है कि स्त्रोत भाषा में उसकी अर्थ-परिधि बड़ी होती है और वह शब्द दूसरी भाषा में अपनी पूरी अर्थ-परिधि के साथ न आकर केवल सीमित अर्थ के साथ आता है। उदाहरण के लिए अँग्रेजी का 'कोट' शब्द ले अँग्रेजी में इसका अर्थ कोट, आवरण, तह, लेप आदि है किंतु हिंदी में यह शब्द केवल पहने जाने वाले 'कोट' के अर्थ में ही आया है।

7) जान बुझकर नये अर्थ में प्रयोग : कभी-कभार ऐसी आवश्यकता आती है कि पुराने शब्द का किसी नए अर्थ में प्रयोग कर दिया जाता है, तथा शब्द में अर्थपरिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए 'रेडिया' के लिए कोई ठीक शब्द न पाकर कविवर सुमित्रानंदन पंत ने 'आकाशवाणी' का प्रयोग किया और यह शब्द हिंदी में चल पड़ा। परिणामत: 'देववाणी' के साथ इसका अर्थ रेडियो भी हो गया।

8) अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग : संसार में अच्छी बातों की तरह बूरी बाते भी होती है इन्हीं को हम अशोभन बातें कहते हैं। मनुष्य उनसे दूर रहना चाहता है किंतु मनुष्य चाहकर भी उनसे दूर नहीं रह पाता, इसलिए वह उन भावनाओं को शोभन शब्दों से ढ़ँक देता है। इसके निम्न भेद है–

(क) अशुभ या बुरा : अशुभ प्रतीत होनेवाले कार्यों या घटनाओं को शोभन शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। मरना सर्वाधिक अशुभ माना जाता है। इसलिए किसी के मरने के पश्चात स्वर्गवास, द्‌वेलोक होना, पंचत्व को प्राप्त होना। गंगालाभ, गोलोकवास आदि शब्दावली प्रयुक्त की जाती है। हम 'हुजूर की तबीयत खराब है' न कहकर 'हुजूर के दुश्मनों की तबीयत नासाज है' कहने की प्रथा है। इसतरह हम अशुभ कार्य, बातों या घटनाओं को घुमा–फिरा कर अच्छा बनाकर कहना पसंद करते हैं।

(ख) अश्लील : समाज में अश्लीलता असामाजीकता की निशानी मानी जाती है, इसलिए अश्लील या घृणित समझे जाने वाली अभिव्यक्ति को घूमा–फिराकर व्यक्त किया जाता है। ट्टटी जाने को मैदान जाना, शौच जाना, नदी जाना कहते हैं।

(ग) कटुता या भयंकरता : अशुभ और अश्लीलता की तरह कटु और भयंकर भी मनुष्य को अप्रिय है। भोजपुरी प्रदेश में साँप को 'कीरा', 'चेवर', या 'रसरी' तथा उसके काटने को 'छूना' या 'सूँघना' कहते हैं। उतरी भारत में चेचक निकलने को 'माता, माई या महारानी ने कृपा की है' कहा जाता है।

(घ) अंधविश्वास: दुनिया में बहुत से लोग ऐसे हैं जो अंधविश्वासी हैं। कई लोगों में ऐसा अंधविश्वास है कि पति, स्त्री, गुरू और बड़े लड़के आदि का नाम लेना पाप है। पति के बारे में यह विषय बहुत कठिन है। कारणवश 'पंडितजी', 'ऊलोग', 'बिटिया के बाबू', 'आदमी' आदि शब्दों का अर्थ पति हो गया है। पति लोग भी 'मालकिन' या अपने लड़के–लड़की के नाम के साथ माँ शब्द लगाकर अपनी स्त्री को बुलाते हैं। इस तरह अंधविश्वास के कारण अर्थ परिवर्तन होता रहा है।

(ड) गंदे या छोटे कार्य : गंदे या छोटे कार्यों के लिए भी हम अच्छे शब्दों का प्रयोग करते हैं। पाखाना साफ करने के लिए 'कमाना' शब्द का प्रयोग करते हैं। ऑस्ट्रेलिया में नौकर को 'सरवेंट' न कहकर 'होम–एड', 'होम–ऐसोशिस्ट' कहते हैं।

अत: इस तरह अशोभन के लिए शोभन का प्रयोग कर अर्थ परिवर्तन होता रहा है।

9) अधिक शब्दों के स्थान पर एक शब्द का प्रयोग : साधारणत: मनुष्य की प्रवृत्ति यह है कि वह कम से कम परिश्रम में अपना काम निकालना चाहता है। बोलते समय भी वह चाहता है कि कम से कम समय में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव व्यक्त कर सके। इस प्रवास में अधिक प्रयोग में या पुन: पुन: प्रयोग किए जानेवाले शब्दों में कुछ अंश छोड़ दिया जाता है। ऐसा करने से शेष अंश ही पूरे का अर्थ देने लगता है और इस तरह अर्थपरिवर्तन हो जाता है। जैसे रेल (ट्रेन की पटरी) पर चलने के कारण ट्रेन को रेलगाडी कहा गया। अब 'गाडी' शब्द को हटा दिया गया है, और केवल 'रेल' का अर्थ भी रेलगाडी है। रेलवे स्टेशन के लिए 'स्टेशन', 'मोटारकार' के लिए 'मोटर' या 'कार'। पहले हाथी को 'हस्तिनमृग' (ऐसा

जानवर जिसके हाथ अर्थात सूंड हो) कहा जाता था, बाद में 'मृग' छोड़ दिया गया और केवल 'हस्तिन्' ही पूरे का अर्थ देने लगा और आज हम सिर्फ 'हाथी' का ही प्रयोग करते हैं। इस तरह रोज प्रयोग किए जानेवाले बहुत से शब्द मिलते हैं, जिनका अर्थ परिवर्तन हो गया है।

10) सादृश्य : सादृश्य के कारण ही शब्दों के अर्थों में परिवर्तन होता रहा है। अँग्रेजी से हिंदी में जो शब्द आए हैं, उनमें 'टिकट' और 'टैक्स' भी हैं। इनमें टिकट का रूप तो 'टिकीट' मिलता है और उसी के सादृश्य पर 'टैक्स' का रूप 'टिकस' या 'टिक्कस' हो गया है। 'टिकट' और 'टिकस' के रूप-साम्य के कारण 'टिकस्' का अर्थ में परिवर्तन हो गया है और सब देहात में प्राय: लोग 'टिकिट' के स्थान पर उस अर्थ में 'टिकस' (रेल का, डाक का 'रसीद') का भी प्रयोग करते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि सादृश्य के कारण अर्थ परिवर्तन अज्ञान का सहारा लेकर घटित होता है, 'अभिज्ञ' और 'अविज्ञ' में सादृश्य से 'विज्ञ' के अर्थ में कुछ लोग 'भिज्ञ' का तथा 'अविज्ञ' के अर्थ में 'अभिज्ञ' का प्रयोग करते हैं।

11) अज्ञान : किसी शब्द का गलत अर्थ में प्रयोग करने से भी उस शब्द का अर्थ बदल जाता है। अज्ञान तथा अर्धज्ञान के कारण संस्कृत शब्दों के इस क्षेत्र के कई उदाहरण प्राप्त होते हैं। जैसे-संस्कृत का 'धन्यवाद' (प्रशंसा) हिंदी में 'शुक्रिया' हो गया। लोक भाषाओं में भी गलती के कारण अर्थ परिवर्तन के अच्छे उदाहरण मिलते हैं। जैसे अवधी में 'बूढ़ा' के लिए 'बुढ़ापा' भोजपुरी में 'कलंक' के लिए 'अकलंक', 'फजूल' के लिए 'बेफजूल' आदि उदहरण प्राप्त होते हैं।

12) पुनरावृत्ति : जिस तरह दीर्घकाय शब्द का अर्थ उसके लघु रूप से प्राप्त किया जाता है, ठीक इसके विपरित कभी-कभी शब्दों का दुहरा प्रयोग चल पड़ता है और इसके कारण भी उनके आधे भाग के अर्थ में परिवर्तन हो जाता हैं। जैसे-अब 'विन्ध्याचल पर्वत' का प्रयोग चल पड़ा है। ऐसे प्रयोग करने वाले विन्ध्याचल का अर्थ 'विन्ध्य पर्वत' न लेकर उसे पर्वत का नाम मात्र समझते हैं। 'मलयगिरी' द्रविड़ भाषा में 'मलय' शब्द ही पहाड़ का अर्थ रखता है, पर हम, 'मलय' को नाम समझ कर उसके साथ 'गिरि' जोड़ लेते हैं। कभीकभार 'मलयगिरी पर्वत' भी कहा जाता हैं। इसी प्रकार लोग 'हिमालय पर्वत' भी कहते हैं। दरअसल में, दरहकीकत में, किंतु फिर भी, पर भी आदि प्रयोग भी ऐसे ही हैं।

13) एक शब्द के दो रूपों का प्रचलन : हिंदी में कुछ शब्दों के दो रूप चल रहे हैं और भाषा यह बोझ स्वीकार नहीं कर सकती, अत: दोनों के अर्थ में भेद हो गया है। इस प्रकार, दो रूप के प्रचलन में भी अर्थ-परिवर्तन अवश्य हो जाता है। इन दो अर्थों में तत्सम तथा तद्भव शब्दों का उदाहरण लेते हैं, तो प्राय: देखा जाता है कि तत्सम शब्द तो कुछ प्राचीन या उच्च अर्थ रखते हैं। तद्भव शब्द कुछ हीन या नया अर्थ रखते हैं। जैसे- 'स्थान' और 'थान' शब्द हैं। स्थान का प्रयोग देवी-देवताओं के लिए होता है और थान का प्रयोग हाथी या घोड़े के लिए। जैसे- 'यह ब्राह्मणजी का स्थान है।' या 'हाथी का थान यहाँ है।' इस प्रकार के और भी उदाहरण मिलते हैं जैसे : ब्राह्मण (शिक्षित ब्राह्मण), ब्राह्मण (निरक्षर), सौभाग्य, सोहाग तथा वार्ता, बात इत्यादि।

14) प्रयोगाधिक्य से अर्थ का घिस जाना : किसी शब्द के अधिक प्रयोग से वे घिस जाते हैं और उससे परिचय इतना अधिक बढ़ जाता है कि उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। श्रीयुत, श्रीमान् या श्री का प्रयोग आरंभ में काफी सार्थक लगता था, किंतु अब वे प्रयोग में इतने घिस गए हैं कि निरर्थक से जान पड़ते हैं, अत: उन शब्दों में मात्र औपचारिकता ही रह गई है। अँग्रेजी शब्द में 'मास्टर' का मूल अर्थ मालिक है, जो कालांतर में भारत में अध्यापक के अर्थ में प्रयुक्त हुआ और अब तो रिक्शा मास्टर, टेलर मास्टर, कटिंग मास्टर होकर उसका मूल अर्थ घिस गया। इस तरह प्रयोगाधिक्य के कारण ऐसे अनेक शब्द अपने मूल अर्थ की चमक खोकर बहुत निरीह हो गए हैं।

15) किसी राष्ट्र, जाति अथवा संप्रदाय के प्रति मनोभाव : किसी राष्ट्र, जाति अथवा संप्रदाय के प्रति जैसी भावना होती है, उसकी छाया उनके शब्द के अर्थों पर भी पड़ती है। यह भी ज्ञात होता है कि इस भावना के कारण शब्दों का अर्थ पूर्णत: उलटा हो जाता है। परिणाम स्वरूप भाषा भी प्रभावित होती है। 'असुर' शब्द का मूल अर्थ देवता था, किंतु इरानियों से झगड़े के कारण आर्यों ने 'असुर' शब्द का अर्थ राक्षस कर लिया; क्योंकि इरानियों का देवता 'अहुरमज्द' था। फारसी में 'हिंदू' शब्द का अर्थ गुलाम, काफिर, नापाक आदि है।

16) एक वर्ग के एक शब्द में अर्थ परिवर्तन : शब्द अधिकतर वर्गों में रहते हैं। यदि वर्ग के किसी एक भी शब्द के अर्थ में परिवर्तन हुआ तो उसका प्रभाव शेष शब्दों के अर्थ पर भी पड़ता है। जैसे दुहिता का अर्थ था 'गाय दुहने वाली।' बाद में जब इसका अर्थ 'लडकी' हो गया तो इससे बनने वाले दौहित्र, दौहित्री, दौहित्रायण आदि शब्दों का अर्थ भी उसी के अनुसार परिवर्तित हुआ मिलता है।

17) साहचर्य : साहचर्य या सानिध्य के अर्थ में परिवर्तन की सामान्य प्रक्रिया नजर आती है। ऐसी दशा में अर्थादेश होकर अर्थ-परिवर्तन हो जाता है। 'सिन्धु' शब्द का मूल अर्थ बड़ी नदी या समुद्र था। आर्यों ने सिन्धु नदी को भारत में आने पर 'सिन्धु' कहा। कुछ दिन में नदी के आसपास की भूमि भी 'सिन्धु' कही जाने लगी। सिन्धु से 'सैंधव' शब्द बना जिसका अर्थ हैं, 'सिन्धु का' या 'सिन्धु देश में होनेवाला।' उस समय 'सिन्धु' देश की प्रधान वस्तु 'घोड़ा' और 'नमक' होने के कारण, सौंधव का प्रयोग इन दोनों के लिए होने लगा। बाद में सिन्धु के निवासियों को भी सिन्धु कहा जाने लगा जिसका फारसी रूप हिन्दु या हिंदू हो गया।

18) किसी शब्द, वर्ग या वस्तु में एक विशेषता का प्राधान्य : एक विशेषता के प्राधान्य के कारण ही वही उस वस्तु या वर्ग का प्रतीक समझा जाने लगता है। जैसे लाल पगडी बहुत-से लोग बाँधते हैं और पुलिस वाले लाल पगडी के अतिरिक्त भी वर्दी धारण करते हैं और आजकल तो पुलिस में भी लाल पगडी का प्रचलन नहीं रहा। फिर भी 'लाल पगडी' पुलिस का ही अर्थबोध होता है। फूल सुगंधित, कोमल और सुंदर होते हैं। बहुत से फूल न सुगंधित हैं न कोमल और न सुंदर, किंतु फिर भी 'फूल' शब्द में सुगंधता, कोमलता, सुंदरता आदि गुणों का भाव जागृत होता है।

19) व्यंग्य : व्यंग्य में प्राय: ही विपरीतार्थ या भिन्नार्थ का बोध पाया जाता है। हर भाषा में इसके उदाहरण काफी बडी संख्या में मिलते हैं। निम्न उदाहरणों में प्राय: सभी का शाब्दिक अर्थ बुद्धिमान है, किंतु व्यंग्य के कारण प्रचलन में वे मूर्ख के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे- 'तीन हाथ की बुद्धिवाले', 'अक्ल के खजाना', 'अक्ल की पुड़िया', 'पूरे पंडित' आदि।

20) भावावेश : भावावेश का प्रयोग अस्थायी होता है, किंतु भावावेश में कुछ बूरे शब्दों का अच्छा अर्थ अभिव्यक्त होता है। प्यास से बच्चे को शैतान, गधा, नालायक आदि शब्दों के भावावेश में भिन्न अर्थ निकलते हैं। प्यार या भावावेश के कारण श्रीकृष्ण के नाम 'नटखट', 'माखनचोर' आदि हो गए। भावावेश के कारण अच्छे शब्द बुरा अर्थ भी देते हैं। जैसे 'राम' शब्द में ईश्वरत्व है, किंतु कराह के साथ 'राम' करुणा उत्पन्न करता है और राम! राम!! विस्मय बोधक घृणा सूचना है।

21) व्यक्तिगत योग्यता : व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार भी शब्दों के अर्थ में परिवर्तन होता रहा है। समाज में व्यक्ति-योग्यता के अनेक स्तर हैं। ज्ञानी-अज्ञानी, शिक्षित-अशिक्षित, बुद्धिमान-मूर्ख, सभ्य-असभ्य आदि अनेक स्तरों पर व्यक्ति की योग्यता अलग-अलग होती है और शब्द का अर्थ संबंध मनुष्य की योग्यता के अनुसार बदल जाता है। 'ब्रह्म' शब्द का जो अर्थ एक दार्शनिक के लिए है, वही आम आदमी के लिए नहीं हो सकता। 'टकर' ने कहा है कि, ''शब्द तो एक प्रकार का सिक्का है, पर ऐसा सिक्का जिसका मूल्य निश्चित नहीं। बोलने वाला उसे दो रूपये का समझ सकता है और सुनने वाला अपनी योग्यता नुसार उसे तीन या एक रुपये का समझ सकता है।''

22) शब्दों में अर्थ का अनिश्चय : कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनमें अर्थ का कोई निश्चित सुस्पष्ट रूप नहीं होता है। सत्य, अहिंसा, धर्म, ईश्वर, पाप-पुण्य, करुणा आदि शब्द इसी कोटी में आते हैं। जैसे 'अहिंसा' शब्द को हम लेते हैं तो इसका एक ओर तो यह अर्थ है कि किसी को जान से न मारना चाहिए, पर दूसरी ओर जीना भी हिंसा है, क्योंकि साँस के द्वारा या पैरो तले कुचलकर न जाने हम कितने जीव मारते हैं। इन दोनों अर्थों के अतिरिक्त ऐसी बात कहना भी हिंसा है, जिससे किसी का जी दूखे। इस प्रकार 'अहिंसा' शब्द का निश्चित अर्थ नहीं है।

23) वस्तु का नाम वर्ग को देना : वर्ग को किसी एक वस्तु से अधिक परिचित होने पर उसी नाम से हम पूरे वर्ग को पुकारने लगते हैं। इससे उस शब्द में अर्थ-विस्तार हो जाता है। जैसे-'स्याही' शब्द 'स्याह' से बना है, जिसका अर्थ काला होता है, किंतु आज नीली, लाल, हरी आदि सभी रंगों की स्याही कहलाती है। पहले केवल काली स्याही थी, अत: स्याही कहा गया। बाद में और रंग की भी स्याहियों का प्रचलन हुआ, पर अधिक परिचित होने से वही नाम चलता है। इस तरह 'स्याह' नाम सम्पूर्ण वर्ग को दिया गया।

24) आलंकारिक प्रयोग : वक्ता या लेखक का यही प्रयास रहता है कि, वह कम से कम शब्दों में अपने को अधिक से अधिक स्पष्ट एवं सुंदर रूप से स्पष्ट कर सके। इस तरह बात को प्रभावी बनाने के लिए अलंकारों का प्रयोग बहुत प्राचीन एवं व्यापक है। इस प्रक्रिया में एक वस्तु अथवा भाव के लिए सादृश्य या अन्य समानता खोजी जाती है, और फिर वह शब्द उसका वाचक हो जाता है। उदाहरण के लिए

गधे में और भी बहुतसी विशेषताएँ हैं, किंतु न जाने क्या समझकर उसे 'मूर्ख' का पर्याय बना दिया गया और अब तो किसी को मूर्ख कहने की अपेक्षा 'गधा' कहना ही अधिक प्रभावी होता है। सूक्ष्म भावों तथा विचारों को प्रभावी रूप से प्रकट करने के लिए अलंकार का प्रयोग नितांत आवश्यक-सा हो जाता है। गहरी व्यथा, उथली बात, विषैली मुस्कान, मधुर हाँसी, कडुआ अनुभव आदि ऐसे अनेक प्रयोग मिलते हैं। कुछ शब्द नए अर्थों में रूढ हुए मिलते हैं। जैसे- उल्लू (मूर्ख), गधा (मूर्ख), कौआ (चालाक), काला नाग (जहरीला आदमी), कसाई (क्रूर) आदि शब्द परिवर्तित अर्थ के साथ गाली रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

25) दूसरी भाषा का प्रभाव : ऐसा भी पाया जाता है कि दूसरी भाषा के प्रभाव से शब्दों का अर्थ बदल जाता है। पंजाबी तथा हरियानी के प्रभाव से दिल्ली आदि में हिंदी में भी 'मच्छर लड़ रहे हैं' का अर्थ 'मच्छर काट रहे हैं' होने लगा है। वस्तुत: पंजाबी के प्रभाव से हिंदी 'लड़ना' में 'काँटना' का भी भाव आता जा रहा है। इस प्रकार, हिंदी की बोलियों एवं पंजाबी के प्रभाव से हिंदी 'लड़ना' में 'काँटना' का भी भाव आता जा रहा है। इस प्रकार, हिंदी की बोलियों एवं पंजाबी के प्रभाव से अनेक हिंदी शब्दों के अर्थ में विस्तार होता जा रहा है।

26) पीढ़ी परिवर्तन : पीढ़ी परिवर्तन के साथ शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन होने लगता है। पुरानी पीढ़ी से मिली शब्दसंपदा नयी पीढ़ी संभालती है किंतु अपने युग और आवश्यकता के अनुकूल उसमें परिवर्तन भी कर लेती है। वैसे देखा जाए तो अधिकांशत: अर्थ-परिवर्तनों में पीढ़ी परिवर्तन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव जरुर होता है। जैसे-'पत्र' शब्द का इतिहास देखा जाए तो, प्रारंभ में लेखन कार्य प्राय: भोजपत्र आदि पर हुआ करता था। संदेश आदि भी भोजपत्र पर ही लिखकर भेजे जाते थे। नयी पीढ़ी ने समझा जिस पर लिखा जाता है उसे 'पत्र' कहते हैं। बाद में लिखने के लिए अन्य चीजें प्रयोग में लाई जाती थी उनके लिए भी 'पत्र' शब्द ही प्रयुक्त होने लगा। धीरे-धीरे पत्र कागज पर लिखे जाने लगे और इसका यही अर्थ रह गया।

२७) एक भाषा-भाषी लोगों का अलग-अलग विकास : जब एक भाषा बोलने वाले स्थान छोड़कर कहीं अन्यत्र बसने लगते हैं, तब वे अपने साथ अपनी भाषा को भी ले जाते हैं। स्थान परिवर्तन के कारण अलग-अलग वातावरण में शब्दों के अर्थों में भी परिवर्तन हो जाता है। इस तरह एक ही भाषा का एक ही शब्द अलग-अलग जगह प्रयुक्त होता है तो भिन्न-भिन्न अर्थ के लिए प्रयोग में लाया जाता है। संस्कृत 'वाटिका' शब्द का अर्थ 'बगीचा' है जो हिंदी में आज भी सुरक्षित है। बंगाली में यह शब्द 'बाड़ी' होकर घर के अर्थ में प्रयुक्त होता है और राजस्थानी में 'बाड़ी' सब्जी बोने के स्थान के अर्थ में। इस तरह एक भाषा-भाषी लोगों का अलग-अलग विकास होने के कारण अर्थ में परिवर्तन होता आ रहा है।

अर्थ परिवर्तन के कारणों की विवेचना से सिद्ध होता है कि-

- अर्थ परिवर्तन का कोई एक कारण नहीं बल्कि एक से अधिक कारण है।
- एक अर्थ परिवर्तन के लिए भी एक से अधिक कारण अर्थ परिवर्तन में सक्रिय हो सकते हैं।

- एक से कारणों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता बल्कि वे एक दूसरे से गुंफित होते हैं।
- अर्थ परिवर्तन के कारणों की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, अर्थ परिवर्तन हो जाने के पश्चात उन्हें खोजा जरूर जा सकता है।

1.2.4 अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

भाषा परिवर्तनशीलता है, 'जिसे भाषा बहता नीर' भी कहा गया है। भाषा के सभी अंगों में परिवर्तन होता है भाषा की जीवंतता का प्रमाण है कि वह परिवर्तनशील है, तब अर्थ परिवर्तनशील कैसे रह सकता है। अर्थ परिवर्तन के कारणों पर तो दृष्टि डाली गई है किंतु अब 'अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ' भी जानना आवश्यक है। शब्द के अर्थ बदलते रहते हैं, इस अर्थ बदलाव की स्थितियाँ अलग-अलग होती हैं। अर्थ परिवर्तन में यह देखा गया है कि किसी शब्द का अर्थ व्यापक रहता है, कालक्रम में वह संकुचित हो जाता है। किसी शब्द का प्रयोग संकुचित रहता है, कालक्रम में उसका विस्तार हो जाता है। शब्द के अर्थ उत्कृष्ट से निकृष्ट तो कभी निकृष्ट से उत्कृष्ट बन जाते हैं। 'अर्थ परिवर्तन' किन-किन दिशाओं में होता है' इस विषय पर सबसे पहले फ्रांसीसी भाषा विज्ञान वेत्ता 'ब्रील' ने विचार किया था। उन्होंने तीन दिशाओं की खोज की : अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच, अर्थादेश। आज इन दिशाओं के स्वीकृति के साथ-साथ दिशाओं को भी खोजा गया है। अत: विशेषज्ञों के अनुसार अर्थ परितर्वन की दिशाओं को प्रमुखत: इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ

1. **प्रवृत्ति की दृष्टि से**
   - अ) अर्थ विस्तार
   - ब) अर्थ संकोच
   - क) अर्थादेश

2. **प्रकृति की दृष्टि से**
   - अ) अर्थोत्कर्ष
   - ब) अर्थापकर्ष
   - क) सबलीकरण
   - ड) निर्बलीकरण

प्रवृत्ति की दृष्टि से अर्थ परिवर्तन :

अ) अर्थविस्तार : अर्थविस्तार को अँग्रेजी में Expansion of Meaning **कहते हैं।**

अर्थविस्तार से तात्पर्य है 'अर्थ का सीमित क्षेत्र से निकल विस्तार पा जाना। कुछ उदाहरण निम्नांकित है-

तेल - यह शब्द मूलत: संस्कृत का 'तैल' है जिसका मूल अर्थ है 'तिल का रस'। यही इसका व्युत्पत्तिमूलक अर्थ था। हिंदी आदि आधुनिक भाषाओं का तेल शब्द इसी तेल से विकसित है, किंतु आज

इसका विस्तृत अर्थ पाया जाता है सरसों, मूँगफली, नायिरल, लोंग आदि के लिए प्रयुक्त होता है किंतु कुछ मछली का तेल भी होता है और मुहाँवरे में आदमी का भी तेल निकल आता है।

परसों – संस्कृत शब्द परश्व: आने वाले परसों के लिए था, किंतु अब यह भूतकाल एवं भविष्यकाल दोनों परसों (एक दिन छोड़कर) के लिए आता है।

स्याही – 'स्याह' शब्द से होने के कारण इसका संबध 'काली' से था, किंतु लाल–नीली–हरी सभी प्रकार की स्याही कहलाती है।

प्रवीण – वीणा बजाने में दक्ष को ही प्रवीण कहते थे, आज तो सभी प्रकार की दक्षता 'प्रवीण' बनाती है।

सब्जी – 'सब्ज' का अर्थ है 'हरा'। पहले पालक चौलाई, भिंडी जैसी हरी तरकारियों को उनके रंग के आधार पर 'सब्जी' कहते थे। अब सब्जी शब्द का अर्थ विस्तार हो गया है और सभी रंगों की सब्जियाँ 'सब्जी' कहलाने लगी। टमाटर (लाल), गाजर (लाल, पीली, काली), प्याज (लाल, सफेद), बैंगन (नीला) आदि।

ब) अर्थ संकोच : अर्थ संकोच को अँग्रेजी में Contraction of Meaning कहते हैं। यह अर्थविस्तार के ठीक उलटा है। इसमें अर्थ की परिधि पहले विस्तृत रहती है, फिर संकुचित हो जाती है। अर्थ संकोच के कारण शब्द का प्रयोग सामान्य या विस्तृत अर्थ से हट कर विशिष्ट या सीमित अर्थ में होने लगता है। उदाहरण के लिए संस्कृत 'मृग' का मूल अर्थ 'पशु' है। 'शिकार' का वाचक 'मृगया' तथा 'पशुओं के राजा' सिंह के लिए 'मृगराज' के प्रयोग में मूल अर्थ आज भी संकुचित है। किंतु अब यह पशुविशेष (हिरन) के लिए प्रयुक्त होता है। विशेषज्ञों के अनुसार एक सिद्धांत यह भी है कि भाषा में मूलत: शब्द सामान्य के लिए थे, अर्थ संकोच द्वारा धीरे–धीरे विशेष के लिए शब्दों का निर्धारण हुआ। इसीलिए अर्थ संकोच भाषा की अभिव्यंजना–शक्ति की सम्पन्नता का द्योतक है कुछ अन्य उदाहरण–

शब्द	**मूल अर्थ**	**वर्तमान अर्थ**
पंकज	पंक में जमने वाली हर चीज	कमल
मुर्गा (फारसीमुर्ग)	पक्षी सामान्य	पक्षीविशेष
मूली (मूल से)	जड़वाली	विशिष्ट जड़ (खाने की मूली)

इस प्रकार के कई शब्द प्राप्त होते हैं जो अपने मूल अर्थ को त्यागकर एक सीमित और विशिष्ट अर्थ देने लग गए हैं।

क) अर्थादेश : अर्थादेश को अँग्रेजी में Transference of Meaning **कहते हैं।**

भाव साहचर्य के कारण, शब्द के कारण, शब्द के प्रधान अर्थ के साथ कभी-कभी गौण अर्थ भी चलता रहता है। कुछ समय बाद ऐसा होता है कि प्रधान अर्थ धीरे-धीरे लोप हो जाता है और गौण अर्थ में ही शब्द प्रयुक्त होने लगता है। इस प्रकार एक अर्थ के लोप होने तथा नवीन अर्थ के आ जाने को 'अर्थादेश' कहते हैं। 'गँवार' मूलत: ग्रामीण से निकला, जिसका मूल अर्थ 'गाँव में रहनेवाला' था, किंतु सामान्यतया गाँव के लोग अशिक्षित और सभ्यता रहित माने गए, धीरे-धीरे मूल अर्थ समाप्त हो गया और आज 'गँवार' शब्द का प्रयोग असभ्य, अशिष्ट और मूर्ख के अर्थ में किया जाता है। कुछ अन्य उदाहरण-

शब्द	तत्सम रूप	मूल अर्थ	वर्तमान अर्थ
मौन	मुनि से	मुनियों का आचरण	चुप्पी
बावला	वातग्रस्त से	वायु विकार ग्रस्त	पागल
रसिया	-	रसानुरागी	प्रेमी
छैला	छवि+ला	सुंदर	कामुक, प्रेमी

ऐसी बहुत से उदाहरण प्राप्त होते है।

प्रकृति की दृष्टि से अर्थ-परिवर्तन :

भाषाविदों के मतानुसार प्रकृति की दृष्टि से अर्थ-परिवर्तन से तात्पर्य है, अर्थ की मूल प्रवृत्ति में परिवर्तन होना-उन्नत अर्थ नीचे गिर जाए, गिरा हुआ अर्थ ऊपर उठ जाए, अर्थ में नयी चमक आए या ङ्गफिकाफ पड़ जाए। इसे निम्नांकित रूपों में दर्शाया जाता है-

अ) अर्थोत्कर्ष : जब शब्द का अर्थ अपने परिवर्तन के क्रम में अपने मूल भावा से प्रकृति की दृष्टि से ऊपर उठ जाता है, तो अर्थोत्कर्ष कहलाता है। 'साहस' संस्कृत में बहुत अच्छा शब्द नहीं था। 'साहस' का मूल अर्थ चोरी, डाका, व्यभिचार, हत्या आदि था। किंतु आज देश की रक्षा करनेवाला भी साहसी कहलाता है और पर्वत पर चढ़नेवाला भी साहसी कहलाता है। सामान्यत: अब इसका प्रयोग अच्छे भाव के लिए ही होता है। 'कर्पट' का अर्थ संस्कृत में फटा-पुराना कपड़ा था, किंतु अब 'कर्पट' से ही विकसित 'कपड़ा' का प्रयोग अच्छे वस्त्र के लिए भी होता है। कुछ और उदाहरण दृष्टव्य है-

शब्द	तत्सम रूप	मूल अर्थ	वर्तमान अर्थ
भैंस	भैरव	भयानक	एक देवता
चरणोदक	-	चरणों का जल	भगवान का चढ़ाया
-	-	-	पवित्र जल
माखनचोर	-	मक्खन चुरानेवाला	भगवान श्रीकृष्ण
सिन्दूर	-	एक लेपन पदार्थ	सौभाग्य चिह्न
खसम	अरबी शब्द	शत्रु	

ब) अर्थापकर्ष : अर्थोत्कर्ष की भाँति ही शब्दार्थ का अपकर्ष भी होता है। अर्थ का उन्नत से अवनत हो जाना अर्थापकर्ष कहलाता है। 'पाखण्ड' संन्यासियों के एक सम्प्रदाय का नाम था। अब 'पाखण्ड' ढोंग का वाचक है। 'जुगुप्सा' शब्द 'गुप्' धातु से बना है, जिसका मूल अर्थ पालन करना या छुपाना था। आज इसका प्रयोग 'घृणास्पद' के अर्थ में होता है। कुछ अन्य उदाहरण–

शब्द	तत्सम रूप	मूल अर्थ	वर्तमान अर्थ
ठस्स	ठोस से	ठोस	मंद बुद्धि
कमण्डल	–	साधुओं का पात्र	मूर्ख
पिल्ला	द्रविड शब्द	बच्चा	कुत्ते का बच्चा
छोकरा	शोकहर	पुत्र, लड़का	नौकर
दूती	–	संदेशवाहिका	चुगली करनेवाली

कुछ व्यक्तिवाचक नामों का भी अर्थापकर्ष पाया जाता है–

कंस – मथुरा के एक राजा का नाम – निर्दय

जयचंद – कन्नोज के एक राजा का नाम – देशद्रोही

नारद – एक मुनि का नाम – चुगलखोर

विभीषण – रावण के भाई का नाम – देशद्रोही, बंधुद्रोही

क) सबलीकरण : सबलीकरण को अँग्रेजी में Litotes कहते हैं। भाषाविदों के अनुसार, जिस तरह मनुष्य के स्वास्थ्य पर आधारित उसकी सबलता–दुर्बलता उसकी आयु पर निर्भर होती है, ठीक उसी प्रकार शब्दों के अर्थ भी सबल–निर्बल होते रहते हैं। 'अत्याचार' शब्द अति+आचार से बना जिसका सामान्य मूल अर्थ आचरण की अति है, किंतु आज 'अत्याचार' शब्द अपने मूलभाव से कई गुणा अधिक बलवान है। इसी प्रकार 'सत्यानाश' शब्द भी सत्य+नाश का रूप है, किंतु आज विनाश की महालीला का परिचायक है। 'सुहाग' शब्द सौभाग्य से बना है, किंतु 'स्त्री' के साथ जुड़कर इसका अर्थ बहुत बलशाली तथा गहरा हो गया।

ड) निर्बलीकरण : निर्बलीकरण को अँग्रेजी में Hyperbole कहते हैं। भाषाविद् शब्द की शक्ति–हीनत्व की दशा को Hyperbole की संज्ञा देते हैं। अत: किसी प्रभावशाली अर्थवाले शब्द का प्रयोगाधिक्य उसकी अर्थशक्ति को क्षीण कर देता है, जैसे–

श्रीमान, अरदास, बिनती, देवी, भाईसाहब, बाबू, नेता, भ्रष्टाचार आदि अनेक शब्द अपनी मूल अर्थशक्ति से कमजोर पड़ गये हैं।

डॉ. नेमीचंद के अनुसार 'अर्थ परिवर्तन की इनके अतिरिक्त भी अनेक दिशाएँ हैं, यथा मूर्तिकरण, अमूर्तिकरण, अर्थविकीकरण, श्रृंखलामूलक अर्थादेश, संकुल या जटिल अर्थ-परिवर्तन को प्रसिद्ध भाषाशास्त्री 'ग्रे' अपने शब्दों में कुछ इस प्रकार व्यक्त करते है- ''चाहे सामान्यीकरण हो और चाहे आदेशमूलक, संपूर्ण परिवर्तन (वह) मानव-विचार और मानव संस्कृति के विकास के अनुसंधान का प्रभावात्मक उपकरण है।'' स्पष्ट है कि शब्दों के अर्थों का ऐतिहासिक अध्ययन बहुत रोचक एवं रहस्य को खोलनेवाला है। डॉ. श्रीमाल कहते हैं कि, ''शब्द का अर्थ उस तिनके की भाँति है जो वायु के पंखों पर आरूढ रहकर अप्रत्याशित और अननुमेय दिशाओं की ओर बहता रहता है।'' आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने लिखा है, ''अर्थ विकास की कोई सीमा नहीं, उसे शब्द की तरह दो-चार वर्गों में बाँटना सम्भव नहीं।'' अत: भाषाविदों के विचारों का तथा ऊपर दर्शायी गई अर्थ परिवर्तन की दिशाओं का अध्ययन करने के पश्चात यह ज्ञात होता है कि यह अध्ययन कुछ सीमा तक ही है।

1.3 सारांश :

अर्थ की परिभाषा से ज्ञात होता है कि अर्थ शब्द की आंतरिक शक्ति है, शब्दोच्चारण से अर्थ की प्रतीति होती है।

शब्द और अर्थ से स्पष्ट होता है कि दोनों का संबंध यादृच्छिक, प्रतीकात्मक और परम्परागत होता है। परम्परा के आधार पर ही शब्द और अर्थ का संबंध सहज बना रहता है। शब्द और अर्थ में बोध्य-बोधक भाव का संबंध होता है।

अर्थ परिवर्तन मुख्य रूप से अर्थविस्तार, अर्थसंकोच और अर्थादेश इन तीन दिशाओं में होता है, यह परिवर्तन सामान्य तौर पर उत्पत्ति के आधार पर न होकर लोक व्यवहार के आधार पर होता है।

अर्थ परिवर्तन के भिन्न-भिन्न कारण है। अर्थ परिवर्तन में आंतरिक और मध्य, मानसिक और भौतिक आदि अनेक कारण सम्मिलित रूप से कार्य करते हैं।

1.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) उचित विकल्प चूनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) शब्द और अर्थ के नित्य संबंध को ..... कहते हैं।

अ) संकेत ग्रह ब) ज्ञान ग्रह क) विज्ञान ग्रह ड) मनोग्रह

2) जब किसी शब्द का अर्थ पूर्णतया बदल जाता है, तो उसे ..... कहते हैं।

अ) अर्थादेश ब) अर्थ विस्तार क) अर्थसंक्षेप ड) अर्थोत्कर्ष

3) भोलानाथ तिवारी के मतानुसार अर्थविज्ञान के ..... प्रकार है।

अ) पाँच ब) दस क) सात ड) तीन

4) किसी भी भाषिक इकाई (वाक्य, वाक्यांश, रूप, शब्द, मुहाँवरा आदि) को किसी भी इन्द्रिय (प्रमुखत: कान, आँख) ये ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है। उक्त कथन ..... का है।

अ) जितेन्द्र वत्स ब) डॉ. नेमीचंद्र श्रीमाल

क) कैलास नाथ ड) डॉ. भोलानाथ तिवारी

5) अर्थ की प्रतीति ..... प्रकारों से होती है।

अ) चार ब) दो क) तीन ड) सात

6) भारतीय परम्परा में अर्थ बोध के ..... साधन माने गए हैं।

अ) सात ब) दस क) आठ ड) नौ

7) निम्न में से अर्थ बोध का बाधक कारण ..... नहीं है।

अ) भ्रांत अर्थज्ञान ब) अतिदूरता क) व्यवधान ड) व्याकरण

8) निम्न में से अर्थ परिवर्तन का कारण ..... नहीं है।

अ) नम्रता प्रदर्शन ब) वातावरण में परिवर्तन

क) बलका अपसरन ड) अनभ्यास

9) अर्थ परिवर्तन किन-किन दिशाओं में होता है, इस विषय पर सबसे पहले ..... ने विचार किया था।

अ) डॉ. श्रीमाल ब) ब्रील क) काल्डविन ड) वार्नपिन

10) ब्रील ने अर्थ परिवर्तन की ..... दिशाओं की खोज की।

अ) चार ब) पाँच क) तीन ड) आठ

11) ..... अर्थ परिवर्तन की दिशा नहीं है।

अ) अर्थ विस्तार ब) अर्थ संकोच क) अर्थादेश ड) अज्ञान

12) उचित मिलान कीजिए

ब) 1.

1) उपमान अ) व्याख्या

2) आप्तवाक्य ब) सादृश्य

3) वाक्यकोष क) प्रकरण

4) विवरण ड) यथार्थवक्ता

अ) 1- ब, 2 - ड, 3 - क, 4 - अ

ब) 1- अ, 2 - ब, 3 - क, 4 - ड

क) 1- ब, 2 - क, 3 - अ, 4 - ड

ड) 1- ड, 2 - अ, 3 - ब, 4 - क

2. उचित मिलान कीजिए-

1) अर्थ परिवर्तन के कारण — अ) बल का अपसरण

2) अर्थ परिवर्तन की दिशा — ब) सबलीकरण

3) अर्थबोध का साधन — क) कोश

4) अर्थबोध में बाधा — ड) अतिदूरता

अ) 1- अ, 2 - ब, 3 - क, 4 - ड

ब) 1- ड, 2 - क, 3 - ब, 4 - अ

क) 1- ब, 2 - अ, 3 - ड, 4 - क

ड) 1- क, 2 - अ, 3 - ड, 4 - अ

क) 1. सही/गलत बताइए-

अ) शब्द और अर्थ का घनिष्ठ संबंध है।

ब) शब्द शरीर है, तो अर्थ उसकी आत्मा है।

अ) अ सही ब गलत — ब) ब सही अ गलत

क) अ और ब सही — क) अ और ब गलत

2. सही/गलत बताइए-

अ) उपमान अर्थबोध का साधन है।

ब) उपमान का अर्थ यथार्थवक्ता है।

अ) अ सही ब गलत — ब) ब सही अ गलत

क) अ और ब सही — क) अ और ब गलत

3. सही/गलत बताइए-

अ) भाषा विज्ञान की शाखा अर्थविज्ञान है।

ब) अर्थविज्ञान में अर्थ के विषय में विचार किया जाता है।

अ) अ सही ब गलत — ब) ब सही अ गलत

क) अ और ब सही — क) अ और ब गलत

1.5 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

सार्थक - अर्थ के साथ

निरर्थक – बिना अर्थ के, अर्थ के बगैर

दर्शनशास्त्र – तत्त्वज्ञान

नवीनत्तम – नूतन

पृथक – अलग

यादृच्छिक – माना हुआ

अभिभव – दवा देना

चिरन्तन – निरंतर

1.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

अ) उचित विकल्प

1) अ, 2) अ, 3) ड, 4) ड, 5) ब, 6) क, 7) ड, 8) ड, 9) ब, 10) क, 11) ड,

अ) उचित मिलान

1) अ, 2) अ,

क) सही/गलत

3) क, 2) क, 3) क

1.7 स्वाध्याय :

अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) अर्थ की अवधारणा स्पष्ट करते हुए अर्थबोधक साधनों पर दृष्टि डालिए।

2) शब्द और अर्थ का संबंध स्पष्ट करते हुए अर्थबोध में बाधा पर प्रकाश डालिए।

3) अर्थ परिवर्तन के कारणों का विस्तृत परिचय सोदाहरण दीजिए।

4) अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

आ) लघुत्तरी प्रश्न :

1) अर्थ की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

2) शब्द और अर्थ का संबंध स्पष्ट कीजिए।

3) अर्थ परिवर्तन की दिशाओं का विवेचन कीजिए।

4) अर्थ परिवर्तन के कारणों पर सोदाहरण प्रकाश डालिए।

इ) टिप्पणियाँ :

1) अर्थ विस्तार

2) अर्थ संकोच

3) अर्थादेश

4) अर्थोत्कर्ष

5) अर्थापकर्ष

6) अर्थबोध के साधन

7) अर्थबोध में बाधा

1.8 क्षेत्रिय कार्य :

1) अभिधा शब्दशक्ति का अध्ययन।

2) व्यंजना शब्दशक्ति का अध्ययन।

3) लक्षणा शब्दशक्ति का अध्ययन।

4) अर्थ परिवर्तन संबंधी बौद्धिक नियम

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) डॉ. भोलानाथ तिवारी : 'भाषाविज्ञान' किताब महल, इलाहाबाद, सत्तावनवा संस्करण, 2013 ई।

2) डॉ. श्रीपाद नेमीचन्द : 'भाषाविज्ञान' श्रुति पब्लिकेशन्स, जयपुर, प्रथम संस्करण, 2008 ई।

3) पाण्डेय कैलाश वाध : 'भाषाविज्ञान का रसायन', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2012 ई।

4) डॉ. वत्स जिनेंद्र : 'भाषाविज्ञान और हिंदी भाषा', निर्मल डॉ. सिंह देवेन्द्र पसाद पब्लिकेशन्स, दिल्ली, संस्करण, 2013 ई।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) डॉ. भोलानाथ तिवारी : 'हिन्दी भाषा की आर्थ संरचना', राष्ट्रीय हिंदी साहित्य परिषद, नई दिल्ली।

2) डॉ. व्रजमोहन : 'अर्थ विज्ञान' वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2009 ई।

❑❑❑

इकाई–2
भारतीय आर्य भाषाएँ – प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक

अनुक्रम रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 विषय विवरण

2.2.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ

2.2.2 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ

2.2.3 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

2.3 सारांश

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 स्वाध्याय

2.8 क्षेत्रिय कार्य

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.0 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई पढ़ने के उपरांत आप –

- प्राचीन भारतीय आर्य–भाषाएँ–वैदिक तथा लौकिक संस्कृत से परिचित होंगे।
- मध्यकालीन भारतीय आर्य– भाषाएँ– पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश को समझ सकेंगे।
- आधुनिक भारतीय आर्य–भाषाएँ और उनका वर्गीकरण जान सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना :

हिंदी भाषा का विकास आर्य भाषाओं से हुआ है। हिंदी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि समझने के लिए प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ, मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ किस प्रकार विकसित होती गई, यह समझना आवश्यक है। इस इकाई में भारतीय आर्य भाषाओं के विकास का अध्ययन करेंगे।

2.2 विषय विवरण :

भारत एक महाद्वीप के समान है। वह भाषा और बोलियों का भंडार है। डॉ. जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार भारत में 179 समृद्ध एवं विकसित भाषाएँ और 544 बोलियाँ प्रचलित हैं। इन सभी भाषाओं और बोलियों को सुविधा की दृष्टि से मुख्य दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. आर्य भाषाएँ
2. आर्येत्तर भाषाएँ

1. **आर्य भाषाएँ –** आर्य भाषाएँ भारोपीय परिवार भी भाषाएँ हैं। भारतीय आर्य भाषा का प्रारंभ अनुमानत: ई.स.पूर्व 1500 के आस पास है। ई.स. पूर्व 1500 से 2000 ईसवी (साढ़े तीन हजार वर्षों) तक के सुदीर्घ काल को भाषिक विशेषताओं के आधार पर तीन कालों में बाँटा जा सकता है–

क) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ 1500 ई. पूर्व से 500 ई. पूर्व।

ख) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ 500 ई. पूर्व से 1000 ई. स।

ग) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ 1000 ई. स. से आज तक।

भारत में बोली जाने वाली आर्य भाषाओं को इस तरह समझाया जा सकता है

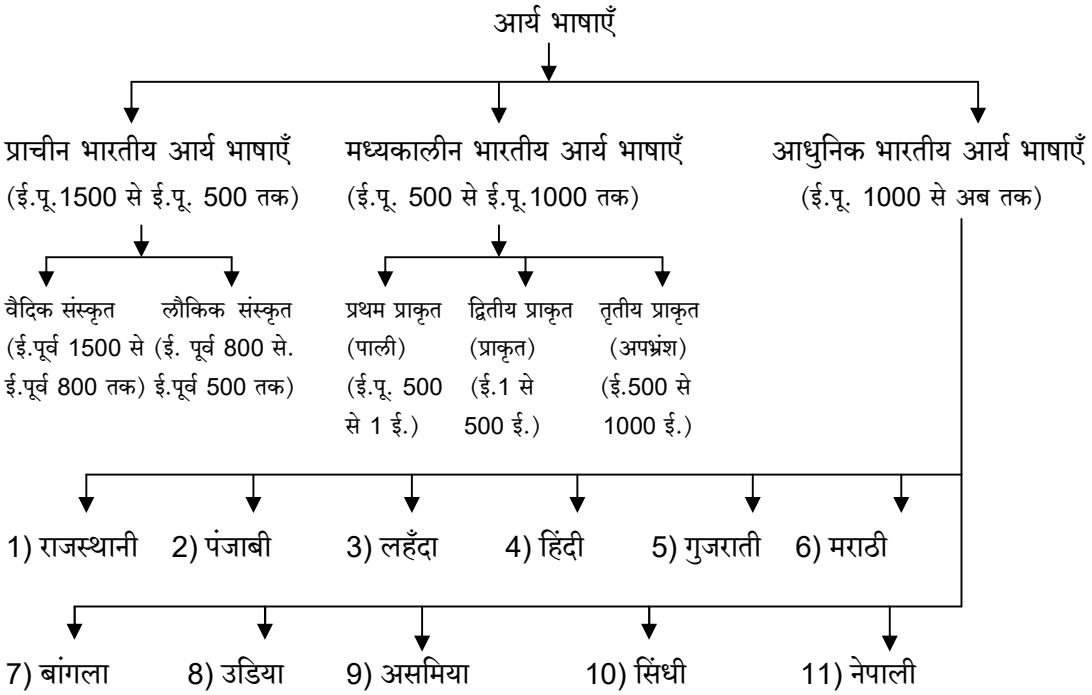

1. **आर्येत्तर भाषाएँ –** भारत में अनार्य भाषा बोलने वाले चार परिवार हैं – 1. द्रविड परिवार, 2. आग्नेय, आस्ट्रिक या मुण्डा परिवार, 3. तिब्बती, चीनीया ब्राह्मी, 4. अनिश्चित भाषा परिवार।

1. **द्रविड परिवार** – द्रविड परिवार का क्षेत्र दक्षिण भारत है। इसमें मुख्य चार भाषाएँ आती हैं – तेलगु, कन्नड, तमिल और मलयालम्।

2. **आग्नेय, आस्ट्रिक या मुण्डा परिवार** – इस परिवार का क्षेत्र भारत का उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र है। इस परिवार में लगभग बीस भाषाएँ बोली जाती हैं। इस परिवार की प्रमुख भाषा मुण्डा है।

3. **तिब्बती, चीनी या ब्राह्मी परिवार** – इस परिवार की भाषाओं का एक छोर तिब्बत और दूसरा छोर चीन होने के कारण इसका नाम तिब्बती चीनी परिवार पड़ा है। इस परिवार की प्रमुख भाषाएँ लद्दाखी, नेवारी, बोरो, मेईतेई, आओ, सेमा अंगामी हैं।

4. **अनिश्चित भाषा परिवार** – इसके अंतर्गत दो भाषाएँ आती हैं– बुरूशास्की और अण्डमानी। ये दोनों भाषाएँ किसी परिवार में नहीं रखी जा सकती।

इस प्रकार हमने देखा कि भारत में बोली जाने वाली समस्त भारतीय भाषाओं के दो वर्ग हैं– आर्य और आर्येत्तर। इन दो वर्गों के फिर कई उपभेद हैं। कुल मिलाकर भारत में पाँच भाषा परिवार हैं। इन पाँच भाषा परिवारों में समस्त भारतीय आर्य भाषाएँ सम्मिलित हैं। आर्य भाषाएँ भारोपीय परिवार के अंतर्गत आती हैं। इस प्रकार भारोपीय परिवार भारत का मुख्य भाषा परिवार है। इस परिवार के बाद द्रविड परिवार का स्थान है। शेष तीन भाषा परिवारों का उतना महत्त्व नहीं है, जितना भारोपीय तथा द्रवीड परिवार का है।

2.2.1 प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ

भारतीय आर्य भाषा भारोपीय परिवार की सर्वाधिक प्रमुख भाषा है, जिसका विकास 'शतम्' वर्ग की भारत ईरानी शाखा से हुआ।

आर्यों के आगमन से पूर्व भारत में अनेक अनार्य जातियाँ विद्यमान थीं, जिनकी भाषाएँ भारत में प्रचलित थीं। इन अनार्य जातियों में द्रविड़, आग्नेय, निग्रो, किरात आदि जातियाँ प्रमुख हैं। निग्रो जाति के लोग आफ्रिका से आए थे तथा उनका क्षेत्र समुद्र का तटवर्ती क्षेत्र था। मध्य क्षेत्र के लोगों से उनका संपर्क नहीं हो पाया था। किरात पहाड़ी जातियाँ थीं। वे शांतिप्रिय थें, अत: भारतीय आर्य भाषा पर उनकी संस्कृति एवं भाषा का व्यापक प्रभाव पड़ा। आर्य संस्कृति में यक्ष, गंधर्व, किन्नर आदि जातियों का वैशिष्ट्य इसी कारण बना हुआ है। आग्नेय परिवार के लोगों में निषाद प्रमुख हैं। ये नदियों की घाटियों में छोटी–छोटी बस्तियों में रहा करते थे। निषाद ग्रामीण संस्कृति के पोषक थे। आर्यों ने कृषि कार्य इन्हीं से अपनाया। वर्तमान काल में बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़िया और असम के पहाड़ी इलाकों में मुण्डा, संथाल, कोल, खासी, भूमिज आदि जातियों के कोल आग्नेय परिवार के वंशज हैं। शब्द भंडार की दृष्टि से आर्य भाषा में कृषि संबंधी शब्दावली पर आग्नेयों का विशेष प्रभाव पड़ा है। ज्वार, बाजरा, नारियल, केला, तांबूल आदि आग्नेयों से ग्रहित शब्द हैं।

द्रविड़ कुल की जातियाँ सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वाधिक उन्नत रही हैं। मोहनजोदड़ों और हडप्पा की खुदाई से उपलब्ध अवशेषों से स्पष्ट होता है कि इस नगर के लोग संस्कृति के समर्थक और समृद्ध व्यक्ति

थें। ये सिंधु, सौवीर के शासक थे। आर्य जब भारत में आए, तो उनके समक्ष द्रविड सबसे बड़ी चुनौती थें। अत: आर्यों के प्रारंभिक समूहों ने उनसे बचने के लिए पंजाब के बाहरी प्रदेशों का मार्ग अपनाया और उत्तरी सीमांत प्रदेशों में बस गए। इनकी शक्ति से आतंकित होने के कारण आर्य जाति के सांस्कृतिक ग्रंथों में उन्हें राक्षस या दानव कहा गया है।

कालांतर में जब आर्यों के अनेक समूह भारत में बस गए तथा उन्हें स्थानीय द्रविडेतर जातियों का समर्थन और सहयोग मिला, तो युद्ध अवश्यम्भामी हो गया। आर्यों और द्रविडों में युद्धों की स्थिति रामायण काल तक बनी रही और रामायण युद्ध के पश्चात आर्य भारत की सर्वोच्च शक्ति बन गए तथा द्रविड़ दक्षिणी-पश्चिमी प्रदेशों में चले गए। द्रविड़ परिवार की भाषा बोलने वालों की संख्या दक्षिण में ही अधिक है। तमिल, तेलगु, कन्नड, मलयालम द्रविड़ों की प्रमुख भाषाएँ हैं। कालांतर में द्रविड़ भाषाओं का प्राचीन भारतीय आर्य भाषा पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा तथा सांस्कृतिक संयमन की स्थिति में द्रविड़ का संस्कृत भाषा और साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। सामान्यतया भारतीय आर्य भाषाओं में 'ट' वर्गीय ध्वनियाँ अनुकरणात्मक शब्दावली, प्रत्ययों और समासों की योजना, संयुक्त क्रियाएँ, भविष्यत् काल, द्विवचन, विभक्ति के स्थान पर परसर्गों का प्रयोग, कर्मवाच्य आदि द्रविड़ प्रभाव से विकसित हुए हैं। इस प्रकार भारत में आए आर्यों एवं द्रविडों तथा अन्य भारतीय मूल के निवासीयों के पारस्पारिक आदान-प्रदान से जिस भारतीय आर्य भाषा का विकास हुआ, उसे भाषा वैज्ञानिक आधार पर प्राचीन भारतीय आर्य भाषा कहा जाता है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के दो रूप मिलते हैं-

अ) वैदिक संस्कृत, ब) लौकिक संस्कृत

ई. पू. 1500 से ई. पू 500 तक आर्य भाषा के 'वैदिक संस्कृत' और 'लौकिक संस्कृत' नामक दो रूप मिलते हैं। इन दो रूपों के लिए 'संस्कृत' शब्द का प्रयोग होता है। यहाँ हम इन दोनों रूपों पर विचार करेंगे।

अ) वैदिक संस्कृत : (ई. पू. 1500 से ई. पू 800 तक) - वैदिक संस्कृत के अन्य नाम हैं 'वैदिकी', 'छान्दस', 'प्राचीन संस्कृत'। इस भाषा का प्रयोग वैदिक साहित्य-संहिताओं, ब्राह्मण ग्रंथों, अरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों में हुआ है। इन सभी ग्रंथों में भाषा का एक रूप न होकर उत्तरोत्तर विकसित रूप देखने को मिलता है। वैदिक संस्कृत का प्राचीनतम् रूप ऋग्वेद संहिता में मिलता है। प्रारंभ में केवल ऋग्वेद था। उसके बाद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की रचना हो गई। प्रत्येक वेद की गद्यात्मक व्याख्या की गई, जिन्हें 'ब्राह्मण ग्रंथ' कहा जाता है। ब्राह्मण ग्रंथों के परिशिष्ट भाग को 'उपनिषद' कहा जाता है। ये सब ऋग्वेद के बाद की कृतियाँ हैं।

वैदिक संस्कृत की प्रमुख विशेषताएँ - वैदिक संस्कृत की मुख्य विशेषताएँ निम्नानुसार हैं-

1. मूल भारोपीय भाषा के ऱ्हस्व मूल स्वर अ, ए, ओ, वैदिक संस्कृत में. 'अ' हो गए हैं। (अ,ए,ओ,- अ)

2. मूल भारोपीय भाषा के तीनों मूल दीर्घ स्वर आ, ऐ, ओ, वैदिक संस्कृत में 'आ' हो गए हैं। (आ,ऐ,ओ-आ)

3. मूल भारोपीय अंतस्थ न्, म् का वैदिक संस्कृत में लोप हो गया है।

4. मूल भारोपीय भाषा में 'क' वर्ग तीन प्रकार का है, वैदिक संस्कृत में केवल एक प्रकार का है। (कंठ्य, कंठोष्ठ्य, कंठतालव्य)

5. वैदिक संस्कृत में 'च' वर्ग और 'ट' वर्ग नवीन ध्वनियाँ हैं।

6. मूल भारोपीय भाषाओं के उष्म 'स्' के साथ वैदिक संस्कृत में श और ष नए आ गए हैं।

7. मूल भारोपीय संयुक्त स्वर ऱ्हस्व और दीर्घ के स्थान पर वैदिक संस्कृत में केवल चार संयुक्त स्वर - ए, ओ, ऐ, औ शेष रह गए।

8. वैदिक संस्कृत में ळ, ळह ध्वनियाँ ड, ढ के स्थान पर नवीन हैं। इनसे ही हिंदी में क्रमश: ड़, ढ़, ध्वनियाँ विकसित हुई हैं।

9. वैदिक संस्कृत की पद रचना में विविधता और अनेकरूपता थी।

10. वैदिक संस्कृत में धातु रूपों में 'लट्' लकार का प्रयोग होता था, वह लौकिक संस्कृत में नहीं रहा।

11. 'कृत्' प्रत्ययों में तुम के अर्थ में से, अ से, आदि पँद्रह प्रत्यय थे।

12. वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक स्वर की मुख्यता थी।

13. वैदिक संस्कृत में उपसर्ग धातु से भी पृथक् प्रयुक्त होते थे।

14. वैदिक संस्कृत में तीन लिंग और तीन वचन थे। पर लिंग और वचन में परिवर्तन भी हो जाता था।

15. वैदिक संस्कृत में ऱ्हस्व और दीर्घ के साथ प्लुप्त का भी प्रयोग प्रचलित था।

16. दो स्वरों के मध्यमें ड>ळ>और ढ़>ळह हो जाता था। जैसे ईड़े>ईळे। संस्कृत में ये दोनों ध्वनियाँ नहीं हैं, हिंदी में ळ, ळह के विकसित रूप ड़, ढ़ हैं।

17. वैदिक संस्कृत में 'ऌ' स्वर का प्रयोग प्रचलित था।

18. वैदिक संस्कृत में संधि नियमों में पर्याप्त शिथिलता थी।

19. वैदिक संस्कृत में मध्य स्वरागम था, स्वर शक्ति के अनेक उदाहरण मिलते हैं।

आर्यों के कई अलग अलग टोलियों में भारत में आने के कारण उनकी भाषा में कुछ भिन्नता का होना स्वाभाविक था। यह भिन्नता र, ल ध्वनियों के संदर्भ में कुछ टोलियों की बोली में 'र' और कुछ 'ल' के रूप में विकसित होकर प्रकट हुई। ये टोलियाँ ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर फैलती गई, त्यों-त्यों स्थानीय भाषाओं के

प्रभाव के कारण इनका स्वरूप बदलता गया। इस दृष्टि से वैदिक काल में प्राचीन आर्य भाषा के तीन रूप तो अत्यंत ही स्पष्ट हैं- पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती तथा पूर्वी।

पश्चिमोत्तरी का क्षेत्र अफगाणिस्तान से पंजाब तक विस्तृत था और इसमें 'र' ध्वनि अपने मूल रूप में प्रचलित थी। मध्यवर्ती का क्षेत्र पंजाब से मध्य उत्तर प्रदेश तक था और इसमें 'र' का प्रयोग 'र' रूप में भी होता था और 'ल' के रूप में भी। पूर्वी का क्षेत्र मध्य उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग था और इसमें 'र' ध्वनि का स्थान पूर्णत: 'ल' ध्वनि ने ले लिया था।

स्थानीय प्रभाव की दृष्टि से पश्चिमोत्तरी अधिक सुरक्षित है। इसका कारण कुछ अपवादों को छोड़कर स्थानीय जातियों का वहाँ से भागकर भारत के दक्षिण पूर्व में चले जाना था। यहीं कारण है कि इस पश्चिमोत्तरी बोली को आदर्श माना गया। ऋग्वेद में इसी बोली का प्रयोग मिलता है। इसका एक नाम केवल 'उत्तरी' अथवा 'उदीच्य' भी मिलता है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि उदीच्य भाषा के उच्चारण को आदर्श मानते हुए उसके विपरीत उच्चारण - र ध्वनि के ल ध्वनि तथा य् ध्वनि के व ध्वनि - रूप उच्चारण की भर्त्सना तक की गई है। यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि बोलियों की यह विभिन्नता केवल बोलचाल तक ही सीमित थी, अन्यथा पंड़ितों ने कुछ विरल अपवादों को छोड़कर उसके लिखित रूप में एकरूपता ही बनाए रखी। उत्तरी बोली ही विकसित होकर संस्कृत भाषा कहलाई। संस्कृत का प्रयोग सर्व प्रथम वाल्मीकि रामायण में मिलता है।

आ) लौकिक संस्कृत : (ई. पू. 800 से ई. पू 500 तक) - लौकिक संस्कृत को 'संस्कृत', 'क्लसिकल संस्कृत' इत्यादि नामों से जाना जाता है। भाषा के अर्थ में संस्कृत (संस्कार की गई, शिष्ट) शब्द का प्रयोग 'वाल्मिकी रामायण' में मिलता है। वैदिक काल में भाषा के तीन भौगोलिक रूप (उत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी) प्रचलित थें। लौकिक संस्कृत का मूलाधार उत्तर में बोली जाने वाली बोलचाल का रूप ही माना जा सकता है। उत्तरी भाषा में आर्य भाषा-भाषियों में कई भौगोलिक बोलियाँ जन्म ले चुकी थीं, जो आगे चलकर विभिन्न प्राकृतों, अपभ्रंशों एवं आधुनिक आर्य भाषाओं के जन्म का कारण बनीं। आगे चलकर पाणिनी ने संस्कृत को व्याकरणबद्ध किया। डॉ. हार्नले, डॉ. ग्रियर्सन तथा वेबर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत को बोलचाल की भाषा नहीं माना। किंतु डॉ. भांडारकर तथा डॉ. गुणे ने उनके मत का खंडन कर अनेक तर्क देकर उसे बोलचाल की भाषा सिद्ध किया है।

संस्कृत साहित्य का प्रयोग रामायण से लेकर शाहजहाँ के काल तक हुआ है। भारत की सभी भाषाओं ने इससे अगणित शब्द लिए हैं। साथ ही आस पास की तिब्बती, अफगाणिस्तानी, चीनी, जापानी, कोरियाई और पूर्वी द्वीप समूह की भाषाएँ तथा अरबी इत्यादी ने भी संस्कृत से शब्द ग्रहण किए हैं। भारत की भाषाओं के लिए तो यह अब भी कामधेनु है। इसने अनेक भाषाओं को अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया है। यह भाषा (उत्तर, मध्य प्रदेश तथा पूर्व) तीनों भागों के लोगों में शिष्ट भाषा, साहित्यिक या राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयुक्त होती थी।

वैदिक संस्कृत का स्वरूप अधिकांशत: बाहर से बनकर आया था, परंतु लौकिक संस्कृत भारत में बनी। जहाँ न केवल जलवायु भिन्न थी, अपितु आर्यों का अनेक संस्कृतियों से संपर्क भी हुआ। इससे जीवन का एक नया रूप बना, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए माध्यम रूप भाषा का भी नयापन ग्रहण करना स्वाभाविक ही था।

लौकिक संस्कृत की विशेषताएँ–

1. लौकिक संस्कृत में शब्द-रूपों और धातु-रूपों में वैकल्पिक रूपों की न्यूनता हो गई।
2. लट्, लकार का अभाव हो गया।
3. भाषा में स्वरों का प्रयोग समाप्त हो गया।
4. वैदिक संस्कृत में 52 ध्वनियाँ थी, उनमें से चार ध्वनियाँ लौकिक संस्कृत में लुप्त हो गई और 48 ध्वनियाँ शेष रहीं।
5. संधि नियमों की अनिवार्यता हो गई।
6. लौकिक संस्कृत में कृ, प् धातु में ही मिलता है।
7. लौकिक संस्कृत में अनुस्वार के दो रूप हो गए-अनुस्वार, अनुनासिक। अनुस्वार (-) की स्वतंत्र सत्ता है। यह नासिक्य ध्वनि है। अनुनासिक (ँ) स्वतंत्र हैं। पूर्ववर्ती स्वर से मिलकर इसका अनुनासिक उच्चारण होता है।
8. कृ प्रत्ययों आदि में अनेक प्रत्ययों के स्थान पर एक प्रत्यय रहा। पंद्रह प्रत्ययों के स्थान पर केवल 'तुम' प्रत्यय है।
9. लौकिक संस्कृत के व्यंजनों में ळ, ळह नहीं रहें।
10. संगीतात्मक स्वर के स्थान पर बलात्मक स्वर का प्रयोग होने लगा।
11. लौकिक संस्कृत में उपसर्गों का स्वतंत्र प्रयोग नहीं रहा।
12. वैदिक भाषा की तीन बोलियाँ थीं- पश्चिमोत्तरी, मध्यदेशी तथा पूर्वी। लौकिक संस्कृत की एक अन्य दक्षिणी बोली भी विकसित हो गई थी। इस प्रकार इसकी चार बोलियाँ हो गई थीं।

2.2.2 मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ : (ई. पू. 500 से ई. 1000 तक)

भारतीय आर्यभाषा के इतिहास में 500 ई.पू.से 1000 ई. तक का लगभग डेढ़ हजार वर्षों का युग मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल कहलाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा को सामान्यतया 'प्राकृत' भी कहते हैं। भाषा का नैसर्गिक रूप प्राकृत है और कृत्रिम रूप संस्कृत। इस दृष्टि से प्राकृत वह जनभाषा है, जो वैदिक संस्कृत काल में भी जनसामान्य की बोलचाल की भाषा थी। उसी का शिष्ट समाज द्वारा स्वीकृत रूप 'वैदिक' और 'परवर्ती काल' में 'संस्कृत' कहलाया। तात्पर्य यह है कि वैदिक और संस्कृत

की जननी प्राकृत ही है। इसके विपरित अधिकांश मध्यकालीन वैयाकरणों का मत है कि संस्कृत से विकसित भाषा प्राकृत है। **हेमचंद्र सूरि** का कथन है– ''प्रकृति संस्कृतम्। तत्र भवं तत: आगतं वा प्राकृतम्'' अर्थात प्रकृति या मूल संस्कृत है और उससे जो आई है वह प्राकृत। इसलिए मध्यकालीन भाषा को प्राकृत कहा गया है। यहाँ इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं कि प्राकृत संस्कृत की जननी है या संस्कृत प्राकृत की।

प्रत्येक युग में किसी भी भाषा के दो रूप चलते हैं– एक परिनिष्ठित और दूसरा सामान्य रूप। भाषा का दूसरा रूप साधारण बोलचाल में प्रयुक्त होता है। वस्तुत: प्राकृत का विकास न तो संस्कृत से हुआ है और न प्राकृत से संस्कृत का। संस्कृत के समांतर जो जनभाषाएँ प्रचलित थीं, बुद्ध ने संस्कृत की अपेक्षा उन्हें ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था। फलत: संस्कृत का प्रचलन शनै: शनै: कम होता गया और जन भाषाएँ (प्राकृतें) विकसित होने लगीं। कालिदास कृत 'शाकुंतलम्' नाटक के अधम पात्र ही नहीं, अपितु कण्व जैसे ऋषि की धर्मपुत्री शकुंतला भी पालि बोलती है। अत: संस्कृत के समांतर व्यवहृत होने वाली जनभाषाओं से ही नाना प्राकृतों का विकास मानना अधिक संमत है।

व्याकरण नियमों के अति के कारण संस्कृत का विकास तो अवरूद्ध हो गया, परंतु तत्कालीन जनभाषा निरंतर विकसित होती रही। उस विकास प्रक्रिया में सरलीकरण की प्रवृत्ति विशेष रूप से सक्रिय थी। न केवल ध्वनियों में, अपितु धातु–रूपों एवं शब्द–रूपों में प्रस्तुत परिवर्तन लक्षित होने लगा। धातुओं के कालों की संख्या में भी कमी होने लगी।

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा को साधारणतया संस्कृत कहा दिया जाता है, इसी प्रकार 500 ई.पू. से 1000 ई. तक प्रचलित मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के लिए प्राकृत शब्द का प्रयोग किया जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के 1500 वर्षों तक के प्राकृत भाषा के विकास को तीन कालों में बाँटा की संख्या में भी कमी होने लगी।

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा को साधारणतया संस्कृत कह दिया जाता है, इसी प्रकार 500 ई. पू. से 1000 ई. तक प्रचलित मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के लिए प्राकृत शब्द का प्रयोग किया जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के 1500 वर्षों तक के प्राकृत भाषा के विकास को तीन कालों में बाँटा जा सकता है–

1. प्रथम प्राकृत या पालि (ई.पू. 500 से 1 ई.तक)
2. द्वितीय प्राकृत या पालि (ई.पू. 1 से 500 ई.तक)
3. तृतीय प्राकृत या अपभ्रंश (500 ई.से 1000 ई.तक)

1. प्रथम प्राकृत या पालि (ई.पू. 500 से 1 ई.तक) : प्रथम प्राकृत काल 500 ई. पूर्वह से। ई. तक माना जाता है। मध्यकालीन भारतीय भाषाओं की महत्त्वपूर्ण भाषा 'पालि' है। इसका उदय वैदिक और लौकिक संस्कृत की प्रतिक्रिया में हुआ था। बुद्ध ने अपना उपदेश इस भाषा में दिया। 'पालि' शब्द भाषा के

लिए प्रयुक्त न होकर बुद्ध वचन के लिए प्रयुक्त किया गया है। 'पालि' शब्द का उल्लेख चौथीं शताब्दी में लंका में लिखित 'दीपबंस्' में आचार्य बुद्धघोष के द्वारा किया गया है। भाषा के रूप में 'मागधी' या 'मगध' भाषा का व्यवहार होता था। भाषा के अर्थ में 'पालि' का प्रयोग अत्याधुनिक है और पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा हुआ है।

'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति – 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ व्युत्पत्तियाँ इस प्रकार हैं–

1. **पंडित विधुशेखर भट्टाचार्य** के अनुसार 'पालि' का संबंध संस्कृत 'पंक्ति' से है।

   पंक्ति > पत्ति > पल्लि > पालि।

2. कुछ विद्वानों के अनुसार वैदिक और लौकिक संस्कृत की तुलना में यह 'पल्लि' (गाँव की भाषा) थी। लेकिन पालि गाँव तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि एक श्रेष्ठ धार्मिक भाषा थी, जिसका प्रयोग नगरों में भी होता था।

3. **भिक्षु सिद्धार्थ** इसकी व्यत्पत्ति संस्कृत शब्द 'पाठ' से मानते हैं।

   पाठ > पाळ > पाळि > पालि।

4. **राजवाडे** के अनुसार कुछ लोग 'पालि' का संबंध संस्कृत शब्द 'प्रकट' से भी जोड़ते हैं।

   प्रकट > पाअड > पाअल > पालि।

5. **भांडारकर** मानते हैं कि यह सबसे पुरानी प्राकृत है, इसलिए शायद इसे प्राकृत नाम दिया गया और 'पालि' प्राकृत का रूपांतर है।

6. **कोसंबी** नामक एक बौद्ध विद्वान के अनुसार इसका संबंध 'पाल' से है। जिसका अर्थ रक्षा करना है। इसने बुद्ध के उपदेशों को सुरक्षित रखा है, तदर्थ यह नाम पड़ा है।

7. एक मत के अनुसार इसका संबंध 'प्रालेय' या 'पायलेक' (पड़ोसी) से जोडा जाता है।

8. **डॉ. मैक्सवेलेसर** ने 'पालि' को 'पाटलि' (पाटलिपुत्र की भाषा) से व्युत्पन्न माना है।

9. **भिक्षु जगदीश कश्यप** ने 'पालि' का संबंध परियाय (सं. पर्याय) से माना है।

   परियाय > पलियाय > पालियाय > पालि।

अधिकांश भारतीय विद्वान उनके मत से सहमत हैं। अशोक के शिलालेखों में भी बुद्ध के उपदेशों के अर्थ में 'पालियाय' शब्द का प्रयोग मिलता है।

पालि भाषा का विकास क्षेत्र पाटलिपुत्र को माना गया है और इसका विकास मागधी के आधार पर बताया गया है, जबकि कुछ लोग इसे उज्जयिनी की भाषा मानते हैं। कुछ लोग इसे अर्ध–मागधी से व्युत्पन्न

मानते हैं। विद्वानों का एक वर्ग इसे सिंहली से विकसित मानता है। वस्तुत: पालि का सर्व प्रथम प्रयोग गौतम बुद्ध ने किया था, किंतु उसका लिखित रूप अशोक के शिलालेखों में मिलता है। ये शिलालेख ब्राह्मी और खरोष्ठी में लिखे गए हैं। आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं से संस्कृत तक की परंपरा में पालि संस्कृत के पश्चात् प्रथम कड़ी है। अत: उसका झुकाव आधुनिक आर्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत की ओर अधिक है, किंतु पालि में व्याकरणिक दृष्टि से संस्कृत से इतना अंतर है कि भाषा की प्रवृत्तिगत सरलता स्वत: सिद्ध हो जाती है।

पालि की प्रमुख विशेषताएँ :

1. पालि में वैदिक संस्कृत की ५ स्वर ध्वनियॉ लुप्त हो गई– ऋ, लृ, ऐ, औ।
2. 'ऋ' के स्थान पर कहीं। उ। तथा कहीं। अ। हो गया। (नृत्य > नच्च, वृद्ध > बुड्ढो)। लृ के स्थान पर। ल। तथा ऐ के स्थान पर। ए। या। इ। हो गया।
3. पालि में वैदिक संस्कृत के ५ व्यंजन लुप्त हो गए– श, ष, विसर्ग (:), जिव्हामुलीय, उपष्मानीय।
4. ।म।ध्वनि अनुसार में बदल गई तथा विसर्ग (:) का प्रयोग समाप्त हो गया और अ के साथ विसर्ग (:) के स्थान पर। ओ। हो गया।

   वृध्द : > बुड्ढो राम:> रामो।
5. श, ष, स में केवल। स। रह गया।
6. पालि में दो नए स्वर आ गए– ऱ्हस्व 'ढ' ऱ्हस्व 'ओ'।
7. व्यंजनांत पद स्वरांत हो गए। यथा भगवान > भगवा।
8. नाम तथा धातु रूपों में द्विवचन समाप्त हो गया।
9. आत्मनेपद का प्रयोग कम होने लगा। लकारों की संख्या 8 रह गई तथा रूप 8 के स्थान पर 6 रह गए।
10. यदि दोनों व्यंजन अंतस्थ हों, तो।र।ल। लुप्त हो जाते हैं। जैसे दुर्लभ > दुल्लभ।
11. ।र। और ।व। के संयोग पर ।र। लुप्त हो जाते हैं – सर्व > सव्व।
12. यदि संयुक्त व्यंजन में पहला नासिक्य हो, तो संयुक्त व्यंजन बना रहता है– दन्त, शान्त, गन्ध, सन्धि।
13. क वर्ग के साथ नासिक्य ध्वनि के आने पर 'क' वर्ग द्वित्व हो जाता है – अग्नि > आग्नि, नग्न > नग्ग।
14. किसी भी संयुक्त व्यंजन के पहले का दीर्घ ऱ्हस्व हो जाता है – शान्त > सन्त, सूत्र > सुत्त, मार्ग > मग्ग।
15. ज्ञ, न्य, ण्य के स्थान पर 'ञ्ञ' का प्रयोग – ज्ञान > ञ्ञन, आरण्यं > आरञ्ञ।

16. यदि संयुक्त व्यंजन में ऊष्म (श,ष,स,ह) हो, तो वह अपने स्थान पर। ह। को दूसरे व्यंजन में समाविष्ट कर देता है - दृष्ट: >दिट्ठो, भिक्षु>भिक्खु।

17. त्य, थ्य, द्य, ध्य, क्रमश:, च्च, च्छ, ज्ज, ज्झ हो जाते हैं- नृत्य>नच्च, अद्य>अज्ज, बुध्यत>बुज्झई।

18. पालि में तीनों लिंग हैं - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुसकलिंग। परंतु नपुसकलिंग पुल्लिंग में समाविष्ट हो गया है।

19. पालि में तद्भव शब्दों की अधिकता है।

2. **द्वितीय प्राकृत या साहित्यिक प्राकृत (1 इ.से 500 ई.तक) –** द्वितीय प्राकृत का काल। ई. से 500 ई.तक माना जाता है। मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के विकास का दूसरा चरण प्राकृतों का है। कुछ विद्वान इसे 'देशी' या 'साहित्यिक प्राकृत' भी कहते हैं। वैसे तो मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के सभी रूप को प्राकृत कहा जाता है। प्राकृत महावीर जैन के उपदेशों के साथ दर्शन और साहित्य की भाषा बनी। प्राकृत का अर्थ है सामान्य जन की भाषा (प्राकृत जनानां भाषा प्राकृतम्)। कुछ लोग इसे प्रकृति या मूल से उत्पन्न अर्थात संस्कृत से विकसित मानते हैं। पालि का वैशिष्ट्य पहली शती से कम होने लगा और उसके स्थान पर प्राकृत का प्रयोग बढ़ा। प्राकृत अत्यंत ललित और मधुर भाषा थी। इसका साहित्य विपुल था तथा शृंगार की दृष्टि से उसका संस्कृत से भी अधिक महत्त्व था। सेतु बंध, गौडवहो, गाह। सतसई, 'बज्जा लग्ग' प्राकृत की प्रमुख रचनाएँ हैं।

कालिदास के नाटकों में निम्नवर्गीय पात्रों ने प्राकृत का भी प्रयोग किया है। धार्मिक दृष्टि से जैन धर्म के उपदेश प्राकृत में मिलते हैं। पालि काल की समाप्ति पर लोकभाषा का यहीं रूप प्रचलित था। प्रथम प्राकृत अर्थात पालि का स्वरूप शीघ्रता से द्वितीय प्राकृत में परिवर्तित नहीं हो पाया। इस परिवर्तन में दो सौ वर्ष लग गए होंगे, जिसे हम संक्राति काल कह सकते हैं। इस काल की भाषा के उदाहरण के लिए दो प्रकार की सामग्री विशेष रूप से उल्लेखनीय है- 1) अश्वघोष के नाटक (ई.100), 2) धम्मपद का प्राकृत रूपांतर।

ई. सन के आरंभ तक प्राकृतों का प्रयोग साहित्यिक भाषा के रूप में होने लगा। धीरे-धीरे उसे साहित्यिक भाषा का रूप मिला। इसके व्याकरण की ओर भी लोगों का ध्यान गया। प्राकृत व्याकरणों में सर्व प्रथम वररूचि ने 'प्राकृत प्रकाश' ग्रंथ लिखा है।

साहित्यिक प्राकृत के मुख्य रूप से पाँच भेद माने जाते हैं - शौरसेनी, महाराष्ट्री, मागधी, अर्धमागधी और पैशाची आदि।

1. शौरसेनी प्राकृत - शौरसेनी प्राकृत का संबंध 'मथुरा' या 'शूरसेन प्रदेश' से था। इस प्रदेश को पहले मध्यदेश भी कहा जाता था। इसका विकास यहाँ की पालिकालीन स्थानिय बोली से हुआ। संस्कृत के नाटको में इसका अत्यधिक प्रयोग मिलता है। उनमें स्त्री पात्र, मध्य वर्ग के पात्र और विदूषक प्राय: शौरसेनी प्राकृत में ही बोलते हुए दिखाए गए हैं। प्राचीन काल में इसका महत्त्व संस्कृत से कम नहीं था। इसका क्षेत्र

भी अन्य प्राकृतों से अधिक था। यह संस्कृत के अधिक निकट है। अवंतिका, आभीरिका इसके स्थानिय भेद हैं। दिगंबर संप्रदाय के जैनों ने अपने सांप्रदायिक ग्रंथों के लेखन में इसका प्रयोग किया है।

शौरसेनी की प्रमुख विशेषताएँ –

1. दो स्वरों के बीच में आने वाली संस्कृत 'त' और 'थ' ध्वनियाँ क्रमश: 'द', 'ध' में परिवर्तित होती हैं। जैसे संस्कृत गच्छति > गच्छदि, अथ > अध।
2. संस्कृत 'क्ष' के स्थान पर शौरसेनी में 'क्ख' हो जाता हैं। संस्कृत कुक्षि > शौरसेनी कुक्खि।
3. संस्कृत 'ऋ' का शौरसेनी में 'इ' हो जाता है। जैसे संस्कृत गृध शौरसेनी गिद्ध। ऋषि>इषि।
4. 'य' प्रत्यय का प्रतिरूप शौरसेनी में 'ईअ' हो जाता है। जैसे संस्कृत गम्यते > शौरसेनी गमी।
5. संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति है। कर्तुम > काट्ठं, उत्सव > उस्सव > उसव। यह भी उल्लेख है कि ऐसी स्थिति में क्षतिपूरक दीर्घांकरण (अ–आ, उ–ऊ) की प्रवृत्ति भी है।
6. इसमें धातु केवल परस्मैपदी हैं, आत्मनेपद प्राय: नहीं है।
7. रूपों की दृष्टि से शौरसेनी संस्कृत से अधिक प्रभावित है।

महाराष्ट्री प्राकृत – इस प्राकृत का महाराष्ट्री मूल स्थान है। कुछ विद्वान इसे शौरसेनी की उत्तरवर्ती शाखा मानते हैं। अतिसमृद्धशाली और परिनिष्ठित भाषा होने के कारण कुछ लोग इसे पूरे भारत की भाषा मानने के पक्ष में हैं। यह मुख्यत: काव्य भाषा रही है। राजा हालकृत 'गाहा सतसई', प्रवरसेन कृत 'रावणवहो', जयवल्लभकृत 'वज्जालग्गा' महाराष्ट्री प्राकृत की अमर रचनाएँ हैं। संस्कृत की उत्कृष्ट रचनाओं की श्रेणी में ये कृतियाँ रखी जा सकती हैं।

महाराष्ट्री प्राकृत मराठी भाषा का पूर्व रूप है। इसमें गीति, खण्डकाव्य, महाकाव्य सभी प्रकार के काव्य लिखे गए। कालिदास, हर्ष आदि के नाटकों के गीत की भाषा महाराष्ट्री रही है।

महाराष्ट्री प्राकृत की विशेषताएँ–

1. इसमें दो स्वरों के बीच आने वाले अल्पप्रमाण व्यंजन (क,ग,च,ज,ट,ड,त,द,प,ब) आदि प्राय: लुप्त हो गए हैं। प्राकृत > पाउअ, गच्छति > गच्छई।
2. उसी स्थिति में महाप्राण व्यंजन (ख,थ,फ,ध,घ) का केवल 'ह' रह गया है। क्रोध : > कोहो, कथयति > कहेइ, मुख > मुह।
3. उष्म ध्वनियों (स, श) का प्राय: 'ह' हो गया है। तस्य > ताह, पाषाण > पाहन।
4. महाराष्ट्री प्राकृत में स्वर बहुलता है। मध्यगत व्यंजनों के लोप से स्वरों की प्रधानता हो गई है।
5. महाराष्ट्री में 'क्ष' का 'च्छ' हो जाता है। कुक्षि > कुच्छि।
6. कर्मवाच्च 'य' का 'इज्ज' होता है। पुच्छयते > पुच्छइज्जत।

मागधी प्राकृत – मगध की भाषा मागधी कहलाती है। लंका में पालि को ही मागधी कहा गया है। वररूचि इसे शौरसेनी प्राकृत से निकली मानते हैं। इसका प्राचीनतम रूप 'अश्वघोष' में मिलता है। शाबरी, चांडाली, शाकारी, ढ़क्की, वाल्हीकी आदि इसके जातीय रूप थे। मागधी को गौडी भी कहते हैं। मागधी से भोजपुरी, मैथिली, बंगला, उड़िय, असमी आदि भाषाएँ विकसित हुई हैं।

मागधी प्राकृत की विशेषताएँ –

1. मागधी में 'र' ध्वनि लुप्त है। 'र' के स्थान पर सर्वत्र 'ल' हो जाता है। जैसे हरिद्रा > हलिद्रा, राजा > लाजा।
2. स, ष के स्थान पर 'श' का प्रयोग मागधी की प्रधान विशेषता है। जैसे– सत > शत, शुष्क > शुश्क, समर > शमर।
3. मागधी में 'ज' का 'य' हो जाता है। जैसे जानाति, याणाति, जनपद > यनपद।
4. मागधी में द्य, र्ज, र्य का 'य्य' हो जाता है। जैसे – अद्य > अय्य, अर्जुन > अय्युन, कार्य > काय्य।
5. प्रथमत: विभक्ति एक वचन में विसर्ग का 'ए' हो जाता है। जैसे – स: शे, देवा > देवे।
6. मागधी में ण्य, न्य, ज्ञ, ञ्ञ हो जाता है। जैसे – पुण्य > पुञ्ञ, अन्य > अञ्ञ।
7. मागधी में च्छ का श्च हो जाता है। गच्छ > गश्च, पृच्छ > पुश्च।
8. मागधी में क्ष का श्क हो जाता है। पक्ष > पश्क।
9. मागधी में 'स्थ' तथा 'र्थ' के स्थान पर 'स्त' पाया जाता है। उपस्तित > उवस्तिद, अर्थवती > अस्तवदी।

अर्धमागधी प्राकृत – 'अर्धमागधी' कौशल प्रदेश की भाषा थी। जैन शास्त्रों की रचना इसी भाषा में हुई है। वे इस भाषा को आर्षी अर्थात ऋषियों की भाषा मानते थें। उनके मतानुसार यह आदि भाषा है। इसमें मागधी की पर्याप्त प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इसलिए इसका नाम अर्धमागधी है। अर्धमागधी में गद्य–पद्य दोनों लिखे गए हैं। साहित्यिक नाटकों की भी भाषा यही रही है। 'मुद्राराक्षस' और 'प्रबोध चंद्रोदय' में भी इस भाषा का प्रयोग मिलता है। कुछ विद्वानों के अनुसार अशोक के अभिलेखों की भाषा यही थी।

अर्धमागधी विशेषताएँ–

1. अर्धमागधी का क्षेत्र शौरसेनी और मागधी के मध्य पड़ता है। इसलिए इनमें इन दोनों के लक्षण मिलते हैं। उदाहरण के लिए मागधी में 'र' ध्वनि लुप्त हो गई है और इसके स्थान पर 'ल' आ गया है। परंतु अर्धमागधी में 'र' एवं 'ल' दोनों की ध्वनियाँ विद्यमान हैं।
2. श, ष के स्थान पर 'स' मिलता है। पुरुष > पुरिसो, शावक > सावग, वर्ष > वास।
3. स्वरों के मध्यवर्ती स्पर्श व्यंजन के स्थान पर 'य' श्रुति मिलती है – सागर > सायर, स्थित > ठीय।

4. 'च' वर्ग के स्थान पर कहीं कहीं 'त' वर्ग मिलता है। चिकित्सा > तेइच्छा।

5. कहीं कहीं 'क' का 'ग' हो जाता है। एक > एग, शुक > शुग।

पैशाची प्राकृत – पैशाची को पैशाचिकी, ग्राम्य भाषा, भूतभाषा, पैशाचिका, भूतवचन आदि अन्य नामों से जाना जाता है। महाभारत में पिशाच जाति का उल्लेख मिलता है। ग्रियर्सन इसे दरद प्रभावित मानते हैं। पुरुषोत्तम देव ने इसे संस्कृत और शौरसेनी का विकृत रूप कहा है। वररूचि इसका आधार संस्कृत मानते हैं। पैशाची का क्षेत्र पश्चिमोत्तर भारत एवं कश्मीर तथा अफगाणिस्तान था। इस समय पैशाची का कोई साहित्य नहीं मिलता है। गुणढ्य का 'बृहत कथा संग्रह' मूलत: इसी भाषा का ग्रंथ था। 'हम्मीर मर्दन' तथा अन्य कुछ नाटकों में भी इसका प्रयोग हुआ है। नाटकों के कुछ पात्रों ने इस भाषा का प्रयोग किया है।

पैशाची की विशेषताएँ –

1. पैशाची में दो स्वरों के मध्यस्थ स्पर्श (क वर्ग तथा प वर्ग) वर्गों के घोष व्यंजन (तृतीय चतुर्थ) अघोष (प्रथम द्वितीय) हो गए हैं। जैसे – गगन गकन, मेघ > मेख, राजा > राचा, दामोदर > तामोदर।

2. ल तथा र में परस्पर विपर्यय मिलता है। रूधिर > लुधिर, फल > फर।

3. अन्य प्राकृतों की भाँति स्वरमध्यग स्पर्श व्यंजनों का लोप नहीं होता है। 'ण' तथा 'न' में परस्पर विपर्यय मिलता है। गुन > गुण; अधुना > अहुणा।

4. 'ष' के स्थान पर कहीं 'श' और कहीं 'स' मिलता है। विषम:विसमो।

उपरोक्त पाँच प्राकृत भाषाओं के रूपों के अतिरिक्त कुछ और भेद मिलते हैं। कुछ अन्य भेद इस प्रकार हैं– खस, केकय, टक्क, ब्राचड आदि।

3. तृतीय प्राकृत या अपभ्रंश (500 ई.से 1000 ई.तक)

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा के विकास के तृतीय चरण को अपभ्रंश कहा जाता है, जो 500 ई. से 1000 ई.तक माना जाता है।

अपभ्रंश का अर्थ है–'बिगड़ा हुआ'। संस्कृत के वैयाकरणों ने संस्कृत के अतिरिक्त समस्त भाषाओं को अपभ्रष्ट कहा गया है। कतिपय विद्वानों का विचार है कि प्राकृत के द्वितीय उत्थान काल में जो भाषाएँ साहित्यिक बन गई थीं, उनके स्थान पर कुछ प्राकृतें जनभाषा के रूप में विकसित हो रही थीं। वहीं आगे चलकर 500 ई. से 1000 ई.तक साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई, जिन्हें अपभ्रंश कहा जाता है। अपभ्रंश को अवहट्ठ, अव्वभंस, ग्रामीण, देसी, आभीरोक्ती, आभिरी भी कहा जाता है। इस प्रकार जितनी प्राकृतें थीं, उतने ही उनके अपभ्रष्ट रूप भी विकसित हुए। जब साहित्यिक प्राकृते मृत अथवा अव्यवहृत होने लगीं, तो अपभ्रंश से साहित्य रचना होने लगी। छठी शती में आचार्य दण्डी ने 'काव्यादर्श' में अपभ्रंश को अभीर जाति की भाषा कहा है। ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी में हेमचंद्र का अपभ्रंश व्याकरण मिलता है। इससे स्पष्ट है कि ग्यारहवीं शती से पहले अपभ्रंश साहित्यिक भाषों के रूप में स्वीकृत हो चुकी थी।

अपभ्रंश में देशी शब्द अधिक है। इसलिए अपभ्रंश को देशी भाषा भी कहा जाता है। वस्तु: देशी शब्द अपभ्रंशकालीन जनता की सामान्य बोलचाल की भाषा से उत्पन्न हो गए थे। इस शब्दों को साहत्यिक अपभ्रंश में भी लिया गया। उनकी कोई परंपरा नहीं थी। इसी कारण भाषा वैज्ञानिकों ने उन्हें देशी कह गया। अधिकांश अपभ्रंश कवियों ने अपनी भाषा को देशी भाषा कहा है, क्योंकि उन्होंने जनता की स्वाभाविक भाषा को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया था। देशी भाषा जनता की स्वाभाविक भाषा का नाम है। जबकि तत्कालिन प्राकृत बोलियों से निर्मित शिष्ट भाषा का नाम अपभ्रंश है। भाषा के अर्थ में अपभ्रंश का प्रयोग छठी सदी के वैयाकरण चण्डके 'प्राकृत लक्षणम्' में मिलता है। अपभ्रंश वस्तुत: विविध प्राकृतों एवं आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के बीच की कडी है।

अपभ्रंश की विशेषताएँ–

1. ध्वनियों की दृष्टि से प्राकृत और अपभ्रंश में कोई विशेष अंतर नहीं है। प्राय: संस्कृत के सभी स्वर और व्यंजन ध्वनियाँ अपभ्रंश में हैं। प्राकृत में जिस 'ए' और 'ओ' का विकास हुआ था, वे ध्वनियाँ अपभ्रंश में भी उसी रूप में हैं। आठ स्वर– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ विद्यमान हैं।
2. अपभ्रंश में अंत्य स्वर या तो लुप्त हो जाता है या ऱ्हस्व हो जाता है। जैसे–प्रिया > प्रिअ, संध्या > संज्ञा, आवश्यक > आवसी।
3. अपभ्रंश में आदि अक्षर के स्वर को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, क्योंकि स्वराघात प्राय: आदि अक्षर पर पड़ता है। जैसे– ध्यान झान, माणिक्य > माणिक, तड़ाग > तलाड़, घोटक > घोडअ, गंभीर > गहिर।
4. अपभ्रंश में आद्य अक्षर के स्वर की मात्रा परिवर्तित हो जाती है। जैसे– परम > पोम, स्वर्णकार > सोण्णार, कश्य > कासु।
5. अपभ्रंश में कही–कही आदि स्वर का लोप हो जाता है। जैसे– अरण्य > रण्ण, अरघट्ट > रहट्ट।
6. अपभ्रंश में कुल 31 व्यंजन ध्वनियाँ हैं, जिनमें 23 स्पर्श व्यंजन, चार अंतस्थ, दो उष्म, एक महाप्राण तथा एक अनुस्वार है।
7. अपभ्रंश में सामान्यतया शब्दगत आदि व्यंजन सुरक्षित मिलते हैं। परंतु कहीं वह अल्पप्राण से महाप्राण तथा कही महाप्राण से अल्पप्राण में परिवर्तित हो जाता है। जैसे – भगिणी > बहिणि, ज्वल > झल।
8. अपभ्रंश में कहीं कहीं आदि या मध्य व्यंजन के लुप्त हो जाने पर उसके स्थान में भ व श्रुति हो जाती है। जैसे– युगल > जुगल, लोचन > लोयन, भूत > भूव, उदधि > उवहि।
9. अपभ्रंश में शब्द का आदि 'य', 'ज' में परिणत होता है। जैसे – याती > जाति, यमल > जमल, यौवन > जोवन।

10. मध्य व्यंजनों का अपभ्रंश में प्राय: लोप हो जाता है और महाप्राण व्यंजनों के स्थान पर 'स्वर' शेष रहता है। जैसे- राजन > राअ, पाद > पाअ, चतुर्थ > चउत्थ, सखि > सहि, दीर्घ > दीह, मुक्ताफल > मुक्ताहल।

11. अपभ्रंश भाषा वियोगात्मक हो गई।

12. अपभ्रंश में नपुसकलिंग समाप्त हो गया।

13. अपभ्रंश में रूपों की संख्या कम हो गई।

14. अपभ्रंश में तद्भव और देशज शब्दों की संख्या बढ़ गई।

15. लिंग, वचन और कारक विभक्तियाँ कम हो गई।

2.2.3 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ और उनका वर्गीकरण :-

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की उत्पत्ति अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से हुई। शौरसेनी अपभ्रंश, मागधी अपभ्रंश, अर्धमागधी अपभ्रंश तथा महाराष्ट्र अपभ्रंश से इसका संबंध है। सिंधी भाषा, ब्राचड अपभ्रंश से तथा लेहँदा तथा पैशाची का संबंध पैशाची अपभ्रंश से माना जाता है। लगभग ई. 1000 के आस पास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से भारतीय आर्य भाषाओं का जन्म हुआ। आधुनिक भाषाओं में साहित्य रचना ई. 1000 में या उसके बाद शुरू हुई, किंतु उनका जन्म ई. 1000 से पहले हो चुका था। वस्तुत: कोई भी भाषा जन्म लेते ही साहित्य की भाषा नहीं बनती। पैदा होने के सौ-डेढ़ सौ वर्ष बाद स्वीकृति मिलने तथा उनका स्वरूप कुछ निश्चित होने पर ही लोग उसे साहित्य रचना के लिए अपनाते हैं।

आधुनिक आर्य भाषाओं का उद्गम छठी से ग्यारहवीं सदी के मध्य प्रचलित प्रत्येक प्राकृत का एक-एक अपभ्रंश रूप रहा होगा। अपभ्रंश के भेदों को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। कुल मिलाकर अपभ्रंश के सात भेद किए जा सकते हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं का उद्भव उन्हीं सात भेदों से हुआ है, जिसे इस प्रकार दिखाया जा सकता हैं-

1. शौरसेनी अपभ्रंश - गुजराती, राजस्थानी, पश्चिमी, हिंदी।
2. महाराष्ट्री अपभ्रंश - मराठी।
3. मागधी अपभ्रंश - बांगला, असमिया, उड़िया, बिहारी।
4. अर्धमागधी अपभ्रंश - पूर्वी हिंदी।
5. पैशाची अपभ्रंश - लेहँदा, पंजाबी।
6. रवस - पहाड़ी।
7. ब्राचड - सिंधी।

यह स्पष्ट है कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ अपभ्रंश से विकसित हुई हैं। सभी भारतीय आर्य भाषाएँ संस्कृत की पुत्री न होकर स्वतंत्र रूप से अपभ्रंश से निकली हैं तथा ये बोलचाल की भाषाओं के अधिक निकट हैं।

आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण :

आधुनिक आर्य भाषाओं के वर्गीकरण में भारतीय तथा पाश्चात्य भाषाविदों ने कार्य किया है। इस संदर्भ में भारतीय तथा पाश्चात्य भाषाविदों में काफी मतभेद हैं। इस क्षेत्र में हार्नले, वेबर, ग्रियर्सन, सुनितिकुमार चटर्जी, डॉ. धीरेंद्र वर्मा आदि विद्वानों के वर्गीकरण मिलते हैं। परंतु जार्ज ग्रियर्सन तथा सुनितिकुमार चटर्जी के वर्गीकरण सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं।

1. हार्नले का वर्गीकरण – आधुनिक आर्य भाषाओं का सर्वप्रथम वर्गीकरण हार्नले ने किया। उनकी यह धारणा थी कि आर्य लोग भारत में दो बार दो दलों में आए थे। पहला दल पहली बार आकर पंजाब में बस गया था। कुछ समय बाद आर्यों का दूसरा दल चरगाहों की खोज में भारत आया। यह दल पहले दल की अपेक्षा शक्तिशाली था। इस दल ने पहले दल को पंजाब से भगा दिया और वहाँ स्वयं रहने लगा। पहले दल के आर्य भागकर भारत के उत्तर-पूर्व तथा दक्षिण में जा बसे और दूसरा दल मध्य देश में रहने लगा। अपनी इस मान्यता को आधार बनाकर हार्नले ने वर्गीकरण किया है। उन्होंने 'गौडियन भाषाओं के तुलनात्मक व्याकरण' ग्रंथ में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को चार वर्गों में विभाजित किया है-

1. पूर्वी गौड़ियन वर्ग- जिसमें पूर्वी हिंदी, बंगला, असमिया और उड़िया आती है। पूर्वी हिंदी में बिहारी भी सम्मिलित है।
2. पश्चिमी गौड़ियन वर्ग जिसमें पश्चिमी हिंदी, गुजराती, सिंधी और पंजाबी हैं। यहाँ पश्चिमी हिंदी में राजस्थानी सम्मिलित है।
3. उत्तरी गौड़ियन वर्ग- जिसमें गढ़वाली, नेपाली आदि पहाड़ी भाषाएँ आती हैं।
4. दक्षिणी गौड़ियन वर्ग- जिसमें मराठी आती है।

2. जॉर्ज ग्रियर्सन का वर्गीकरण- जॉर्ज ग्रियर्सन ने हार्नले की इस मान्यता को स्वीकार कर लिया कि भारत में आर्यों का प्रवेश दो बार में हुआ। इसी धारणा के आधार पर यह निश्चय किया गया कि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को दो वर्गों में रखा जाना चाहिए। जॉर्ज ग्रियर्सन ने ई. 1902 में भारतीय आर्य भाषाओं का सर्वेक्षण भाग। तथा 'बुलेटीन ऑफ दी स्कूल ऑफ ओरियंटस स्टडी' लन्दन भाग 1, अंक 3 में आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है

1. बाहरी उपशाखा
   (क) पश्चिमोत्तरी समुदाय - सिंधी, लहँदा
   (ख) पूर्वी समुदाय- बिहारी, बंगाली, उड़िया
   (ग) दक्षिणी समुदाय - मराठी

2. मध्यवर्ती उपशाखा (घ) मध्यवर्ती समुदाय- पूर्वी हिंदी

(ड) केंद्रीय समुदाय - पश्चिमी हिंदी, पंजाबी, गुजराती, राजस्थानी

(च) पहाडी समुदाय- पूर्वी पहाडी, पश्चिमी पहाडी, मध्यवर्ती पहाडी।

इस वर्गीकरण के बाद ई. 1931 में जॉर्ज ग्रियर्सन ने 'Indian antiquity supplyment of Feb' के अंतर्गत उपर्युक्त वर्गीकरण का संशोधित रूप इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

(क) मध्यदेशी - पश्चिमी हिंदी

(ख) अंतर्वती - (अ) पश्चिमी हिंदी से विशेष घनिष्ठता वाली भाषाएँ- पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाडी (पूर्वी, पश्चिमी, मध्यवर्ती)

(आ) बहिरंग से संबंधित - पूर्वी हिंदी।

(ग) बहिरंग भाषाएँ (अ) पश्चिमोत्तरी समुदाय- लहँदा, सिंधी

(आ) पूर्वी समुदाय- बिहारी, उडिया, बंगाली, असमिया।

(इ) दक्षिणी समुदाय - मराठी।

जॉर्ज ग्रियर्सन ने ध्वनि, व्याकरणी रूप, शब्द समूह आदि को आधार बनाकर आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

(अ) बहिरंग शाखा- (क) पश्चिमी समुदाय - 1) सिंधी, 2) लहँदा

(ख) पूर्वी समुदाय- 3) उडिया, 4) बिहारी, 5) बांगला, 6) असमिया

(ग) दक्षिणी समुदाय - 7) मराठी

(आ) मध्यदेशीय भाषा - (घ) मध्यवर्ती समुदाय - 8) पूर्वी हिंदी

(ड) केंद्रीय समुदाय - 9) पहाडी हिंदी, 10) पंजाबी, 11) गुजराती, 12) भीली, 13) खानदेशी, 14) राजस्थानी

(च) पहाडी समुदाय- 15) पूर्वी पहाडी या नेपाली, 16) मध्यवर्ती पहाडी, 17) पश्चिमी पहाडी

जॉर्ज ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की संख्या 17 निश्चित की है और उन्हें तीन शाखाओं तथा 6 समुदायों में विभक्त किया है।

3. डॉ. सुनितिकुमार चटर्जी का वर्गीकरण – डॉ. सुनितिकुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन की संपूर्ण मान्यताओं एवं धारणाओं का प्रबल विरोध किया है। उनके वर्गीकरण को अस्पष्ट एवं अनुपयुक्त ठहराया है। चटर्जी ने कहा है कि सुदूर पश्चिम की भाषा को सुदूर पूर्व की भाषा के साथ एक समुदाय में रखना उचित नहीं है। इसलिए डॉ. सुनितिकुमार चटर्जी ने अपने दृष्टिकोन से वर्गीकरण किया है। इस वर्गीकरण को सभी विद्वानों ने आदर के साथ स्वीकार करके सम्मति दी है। केवल डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने इस वर्गीकरण को तर्कसम्मत न मानते हुए अपना संशोधित वर्गीकरण दिया है। डॉ. सुनितिकुमार चटर्जी का वर्गीकरण इस प्रकार है–

(अ) उदीच्य (उत्तरी) भाषाएँ – 1) सिंधी, 2) लहँदा, 3) पंजाबी

(आ) प्रतीच्य (पश्चिमी) भाषाएँ – 4) गुजराती, 5) राजस्थानी

(इ) मध्यदेशीय भाषाएँ (बीच की)– 6) पश्चिमी हिंदी

(ई) प्राच्य (पूर्वी) भाषाएँ – 7) पूर्वी हिंदी, 8) बिहारी, 9) उडिया, 10) बांगला, 11) असमिया

(उ) दक्षिणात्य (दक्षिणी)– 12) मराठी

4. डॉ. धीरेंद्र वर्मा का वर्गीकरण – डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने चटर्जी के वर्गीकरण को आधार बनाया है, परंतु उन्होंने चटर्जी की तरह पश्चिमी हिंदी को ही मध्यदेशीय भाषा नहीं माना, अपितु उनकी राय में राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी और बिहारी ये चार भाषाएँ मध्यदेशीय भाषाएँ हैं, क्योंकि ये चारों हिंदी से संबंधित हैं। कुछ संशोधन करके डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने आधुनिक भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

(अ) उदीच्य (उत्तरी) – 1) सिंधी, 2) लहँदा, 3) पंजाबी

(आ) प्रतीच्य (पश्चिमी) – 4) गुजराती

(इ) मध्यदेशीय (बीच में)– 5) राजस्थानी, 6) पश्चिमी हिंदी,
7) पूर्वी हिंदी, 8) बिहारी,

(ई) प्राच्य (पूर्वी) – 9) उडिया, 10) बांगला, 11) असमिया

(उ) दक्षिणात्य (दक्षिणी)– 12) मराठी

डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने चटर्जी के वर्गीकरण में केवल इतना ही संशोधन किया है, हिंदी के प्रमुख चारों रूपों राजस्थानी, पूर्वी हिंदी, पश्चिमी हिंदी तथा बिहारी को मध्यदेशीय माना है। इसीकारण आपने पश्चिमी वर्ग में केवल गुजराती भाषा को रखा है। सभी शेष भाषाएँ चटर्जी के आधार पर ही अपने–अपने वर्गों में रखी हैं। ध्यानपूर्वक देखा जाए तो ज्ञात होगा कि राजस्थानी की प्रवृत्ति गुजराती से जितनी मिलती है, उतनी अन्य मध्यदेशीय भाषाओं से नहीं मिलती। इसी तरह बिहारी की प्रवृत्ति, जितनी बागला के निकट है, उतनी

पश्चिमी हिंदी आदि अन्य भाषाओं के निकट नहीं है। अत: डॉ. वर्मा के वर्गीकरण में जो राजस्थानी, बिहारी पूर्वी हिंदी को मध्यदेशीय माना है, वह युक्तिसंगत नहीं है। इसी कारण सुनितिकुमार चटर्जी का वर्गीकरण ही अधिक तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक लगता है।

5. डॉ. हरदेव बाहरी का वर्गीकरण – डॉ. हरदेव बाहरी ने आधुनिक आर्य भाषाओं का कुछ परिवर्तित वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

(क) हिंदी वर्ग – पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, बिहारी, पहाडी।

(ख) हिंदीतर वर्ग – (क) पूर्व उप वर्ग : बंगला, असमी, उडिया।

(ख) दक्षिणी उप वर्ग : मराठी, सिंहली।

(ग) पश्चिमी उप वर्ग : सिंधी, पंजाबी, गुजराती।

(घ) उत्तरी उप वर्ग : नेपाली।

6. डॉ. भोलानाथ तिवारी का वर्गीकरण – डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार विकास के आधार पर आधुनिक भारतीय भाषाओं के वर्गीकरण का एक रूप यह भी हो सकता है –

1. शौरसेनी प्रसूत – पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, गुजराती।
2. मागधी प्रसूत – बांगला, असमिया, उड़िया, मैथिली, मगही।
3. अर्धमागधी प्रसूत – पूर्वी हिंदी, अवधी, भोजपुरी।
4. महाराष्ट्री प्रसूत – मराठी।
5. ब्राचड पैशाची प्रसूत – सिंधी, लहँदा, पंजाबी आदि।

2.3 सारांश :

1) भारतीय आर्यभाषा का प्रारंभ ई. पूर्व 1500 से माना जाता है। इस प्रकार आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास लगभग 3500 वर्षों के कालखंड में हुआ है।

2) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का स्वरूप ऋग्वेद में उपलब्ध है।

3) प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के दो रूप मिलते हैं।

1) वैदिक संस्कृत

2) लौकिक संस्कृत

4) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं में पालि प्राकृत तथा अपभ्रंश ये भाषा के तीन रूप मिलते हैं।

5) मध्यकालीन भारतीय भाषा का अंतिम युग 'अपभ्रंश' भाषा का है। इस युग को तृतीय प्राकृत काल भी कहते हैं।

6) संस्कृत के साहित्य रूप को व्याकरणबद्ध कर देने पर जनभाषा ने प्राकृतों का रूप धारण कर लिया, वैसे ही प्राकृतों का जब साहित्यिक भाषा के रूप में प्रयोग होने लगा और वह नियमबद्ध कर दी गई, तब देशी बोलियों का जन्म हुआ, उसे अपभ्रंश कहा गया। अपभ्रंश भाषाओं से ही आधुनिक आर्य भाषाएँ विकसित हुई।

7) प्राचीन प्राकृत और वर्तमान भारतीय भाषाओं को मिलाने वाली कड़ी अपभ्रंश है।

8) इ.स. 1000 ई. के आसपास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का उद्भव हुआ।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) उचित विकल्प चूनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) वैदिक संस्कृत का प्राचीनतम रूप ..... संहिता में मिलता है।

अ) ऋग्वेद ब) अथर्ववेद क) सामवेद ड) यजुर्वेद

2) 'छांदस' यह ..... का ही नाम है।

अ) प्राकृत ब) लौकिक संस्कृत क) वैदिक संस्कृत ड) अपभ्रंश

3) लौकिक संस्कृत को ही ..... कहते हैं।

अ) वैदिक संस्कृत ब) क्लासिकल संस्कृत

क) पालि ड) अपभ्रंश

4) मराठी भाषा का उद्भव ..... अपभ्रंश से हुआ है।

अ) शौरसेनी ब) मागधी क) अर्धमागधी ड) महाराष्ट्री

5) पालि ..... धर्म की भाषा है।

अ) जैन ब) हिंदू क) बौद्ध ड) इस्लाम

6) अर्धमागधी का प्रयोग मुख्यत: ..... साहित्य में हुआ है।

अ) ग्रामीण ब) जैन क) बौद्ध ड) सिक्ख

7) 'पाल' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग ..... शताब्दी में लिखित 'दीपबंस' ग्रंथ में हुआ है।

अ) तीसरी ब) चौथी क) छठी ड) सातवीं

8) पाली ..... की महत्त्वपूर्ण भाषा है।

अ) प्राचीन युग ब) मध्यकालीन युग क) कलियुग ड) आधुनिक युग

9) साहित्यिक प्राकृत के मुख्य रूप से ..... भेद माने जाते हैं।

अ) तीन ब) चार क) पाँच ड) दो

10) हिंदी की ..... उपभाषाएँ हैं।

अ) तीन ब) चार क) पाँच ड) सात

11) हिंदी ..... राज्यों की मातृभाषा है।

अ) आठ ब) नौ क) दस ड) बारह

12) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा विकास के तृतीय चरण को ..... कहा जाता है।

अ) पालि ब) साहित्यिक प्राकृत

क) प्राकृत ड) अपभ्रंश

13) आधुनिक आर्य भाषाओं का सर्वप्रथम वर्गीकरण ..... ने किया है।

अ) हार्नले ब) जॉर्ज ग्रियर्सन

क) डॉ. धीरेंद्र वर्मा ड) डॉ. भोलानाथ तिवारी

14) जॉर्ज ग्रियर्सन ने आधुनिक आर्य भाषाओं की संख्या ..... निश्चित की है।

अ) 17 ब) 18 क) 49 ड) 50

ब) 1. सही/गलत बताइए।

अ) हिंदी का विकास आर्य भाषाओं से हुआ है।

ब) आर्य भाषाएँ भारोपीय परिवार की भाषाएँ हैं।

अ) अ सही ब गलत ब) ब सही अ गलत

क) अ और ब गलत ड) अ और ब सही

2. सही/गलत बताइए।

अ) पालि में वैदिक संस्कृत की ५ स्वर ध्वनियाँ लुप्त हो गई है।

ब) पालि में तद्भव शब्द की अधिकता है।

अ) अ सही ब गलत　　ब) ब सही अ गलत

क) अ और ब गलत　　ड) अ और ब गलत

क) 1. उचित मिलान किजिए।

1) भिक्षु सिद्धार्थ	अ) पंक्ति > पन्ति > पत्ति > पल्लि > पालि
2) पंडित विधुशेखर भट्टाचार्य	ब) पाठ > पाल > पाळि > पालि
3) राजवाडे	क) प्रकट > पाअड > पाअल > पालि
4) भिक्षु जगदीश कश्यप	ड) पारियाय > पलियाय > पालियाय > पालि

अ) 1 – ब, 2 – अ, 3 – क, 4 – ड

ब) 1 – अ, 2 – ब, 3 – क, 4 – ड

क) 1 – ब, 2 – अ, 3 – अ, 4 – क

ड) 1 – अ, 2 – क, 3 – ब, 4 – ड

2. उचित मिलान किजिए।

1) वैदिक संस्कृत	अ) ई. पू. 1500 से ई. पू. 800
2) लौकिक संस्कृत	ब) ई. पू. 500 से ई. पू. 1000
3) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ	क) ई. पू. 800 से ई. पू. 500
4) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ	ड) ई. स. 1000 से अब तक

अ) 1– अ, 2 – ब, 3 – क, 4 – ड

ब) 1– अ, 2 – क, 3 – ब, 4 – ड

क) 1– ड, 2 – क, 3 – ब, 4 – अ

ड) 1– क, 2 – ड, 3 – अ, 4 – ब

2.5 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

धातु : मूल क्रिया (पढ़ जा, उठ आदि)।

पद : कोई विशेष अर्थ रखने वाला शब्द या शब्द–समूह।

विभक्ति: कारक चिह्न।

तत्सम : तत + सम, उसके, अर्थात संस्कृत के समान ।

तद्भव : तत् + भव, उससे उत्पन्न, अर्थात संस्कृत शब्द से उत्पन्न।

प्राकृत : सामान्य जन की भाषा।

प्रत्यय : जो शब्द के अंत में जूड़ जाए।

आकारांत : जिस शब्द का अंतिम वर्ण 'आ' हो।

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

अ) उचित विकल्प

1) अ, 2) क, 3) ब, 4) ड, 5) क, 6) ब, 7) ब, 8) ब, 9) क, 10) क, 11) ब, 12) ड,

13) अ, 14) अ

ब) सही/गलत

1) ड, 1) क,

क) उचित मिलान

1) ब, 2) ब

2.7 स्वाध्याय :

अ) दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1) प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओं का परिचय देकर उनकी विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
2) मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का परिचय दीजिए।
3) आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण स्पष्ट कीजिए।
4) पालि और अपभ्रंश का परिचय देते हुए उनकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
5) प्राकृत के भेदो का परिचय देते हुए शौरसेनी प्राकृत और अर्धमागधी प्राकृत की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

आ) लघुत्तरी प्रश्न :

1) पालि का परिचय देते हुए उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
2) लौकिक संस्कृत का परिचय देते हुए उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
3) अपभ्रंश की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

4) शौरसेनी प्राकृत की विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

5) वैदिक संस्कृत का परिचय देते हुए उसकी विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।

इ) टिप्पणियाँ :

1) वैदिक संस्कृत

2) लौकिक संस्कृत

3) प्राकृत

4) महाराष्ट्री प्राकृत

5) शौरसेनी प्राकृत

6) पालि

7) अपभ्रंश

2.8 क्षेत्रिय कार्य :

मराठी हिंदी के अलावा अन्य भारतीय आर्यभाषा बोलने वाले किसी व्यक्ति से (बंगाली, उड़िया, गुजराती आदि) संभाषण करे। संभाषण के दौरान आए 100 शब्दों की सूची तैयार करें।

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) डॉ. भोलानाथ तिवारी :'भाषाविज्ञान' किताब महल, इलाहाबाद, सत्तावनवा संस्करण, 2013 ई।

2) डॉ. राजमणि शर्मा : 'आधुनिक भाषा विज्ञान'।

3) डॉ. धीरेंद्र शर्मा : 'हिंदी भाषा का इतिहास'।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) डॉ. अंबादास देशमुख :'भाषा विज्ञान के आधुनातन आयाम एवं हिंदी भाषा'।

2) डॉ. उदय नारायण तिवारी : 'हिंदी भाषा का उद्भव और विकास'।

❑❑❑

इकाई–3

हिंदी की उपभाषाएँ

(पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, बिहारी हिंदी, पहाड़ी हिंदी वर्ग और उनकी बोलियाँ)

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय विवेचन

3.3.1 हिंदी की बोलियाँ

3.3.1.1 पश्चिमी हिंदी

3.3.1.2 पूर्वी हिंदी

3.3.1.3 राजस्थानी हिंदी

3.3.1.4 बिहारी हिंदी

3.3.1.5 पहाड़ी हिंदी

3.4 सारांश

3.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.7 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

3.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. हिंदी भाषा की विकास की प्रक्रिया से अवगत होंगे।
2. हिंदी भाषा के विस्तार और व्याप्ति को समझ पाएंगे।
3. हिंदी भाषा के पाँचों उपभाषाओं- पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी हिंदी, बिहारी हिंदी तथा पहाड़ी हिंदी की जानकारी से परिचित होंगे।

4. बोलियों के क्षेत्र, साहित्य तथा विशेषताओं से परिचित होंगे।

5. हिंदी की उपभाषाओं एवं विभिन्न बोलियों के आपसी सामंजस्य और विभेद से अवगत होंगे।

3.2 प्रस्तावना :

हिंदी भाषा का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। अतः इस विस्तृत क्षेत्र में भाषा के कई रूप प्राप्त होते हैं। हिंदी में एक कहावत है कि 'चार कोस पर बदले पानी आठ कोस पर बानी' उसी के अनुसार हिंदी भाषा जगह-जगह अलग-अलग रूप धारण करती है। हिंदी तकरीबन दस राज्यों की मातृभाषा है। आज संपूर्ण हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र में हिंदी की लगभग अट्ठारह प्रमुख बोलियाँ बोली जाती हैं। इन बोलियों के संख्या के संदर्भ में विद्वानों में मतभेद है। कुल मिलाकर हिंदी भाषा की पांच उपभाषाएँ अर्थात् बोली वर्ग तथा 18 बोलियों को अधिकतर विद्वानों से स्वीकृति मिली है।

3.3 विषय विवेचन :

हिंदी भाषा बोलियों की दृष्टि से संपन्न एवं समृद्ध भाषा है। उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान भारत के हिंदी भाषी राज्य हैं। इन राज्यों में बोली जाने वाली बोलियाँ हिंदी की बोलियाँ हैं। हिंदी बोलियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी संख्या अत्यधिक होने पर भी उनमें परस्पर बहुत साम्य मिलता है। विश्व की शायद ही ऐसी कोई भाषा हो, जिसमें इतनी अधिक बोलियाँ होते हुए भी उनमें काफी साम्य दिखाई देता है। ये बोलियाँ अपनी अभिव्यक्ति सीमा को पार करते हुए दूसरी बोली में भी प्रविष्ट होती चली गयी हैं, जिनसे इनके पारस्पारिक साम्य के कारण विभाजन रेखा खींचना कठिन हो जाता है। ध्वनि, व्याकरण, शब्दकोश आदि की दृष्टि से इन सभी बोलियों में साम्य की स्थिति देखकर आश्चर्य प्रतीत होता है। ये सारी बोलियाँ अलग- अलग होते हुए भी संपूर्ण हिंदी प्रदेश के लोगों द्वारा सहज-स्वाभाविक रुप में समझी जाती हैं।

हिंदी भाषा का क्षेत्र हिमाचल प्रदेश, पंजाब का कुछ भाग, हरियाना, राजस्थान, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश तथा बिहार है। जिसे हिंदी भाषी प्रदेश कहते हैं। पूरे क्षेत्र में हिंदी की पाँच उपभाषाएँ हैं, जिनके अंतर्गत मुख्य 18 बोलियाँ हैं।

अपभ्रंश	उपभाषा	बोलियाँ
शौरसेनी	पश्चिमी हिंदी	1. हरियाणवी 2. खड़ी बोली 3. ब्रजभाषा 4. बुंदेली 5. कन्नौजी 6. निमाड़ी
	राजस्थानी हिंदी	1. मारवाड़ी 2. जयपुरी 3. मेवाती 4. मालवी
	पहाड़ी हिंदी	1. कुमायूँनी 2. गढ़वाली
मागधी	बिहार हिंदी	1. भोजपुरी 2. मगही 3. मैथिली
अर्धमागधी	पूर्वी हिंदी	1. अवधी 2. बघेली 3. छत्तीसगढ़ी

उपरोक्त तालिका में हिंदी भाषा को पाँच उपभाषा, वर्गों में विभाजित किया गया है।इन उपभाषाओं के पश्चिमी हिंदी में छह बोलियाँ, राजस्थानी हिंदी में चार बोलियाँ, पूर्वी हिंदी में तीन बोलियाँ, बिहारी हिंदी में तीन बोलियाँ, पहाड़ी हिंदी में दो बोलियाँ निर्दिष्ट हैं।

3.3.1 हिंदी की बोलियाँ :

3.3.1.1 पश्चिमी हिंदी :

शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित पश्चिमी हिंदी के अन्तर्गत छह बोलियाँ आती है- हरियाणी, खड़ी बोली, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुन्देली और निमाडी। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने पश्चिमी हिंदी के अन्तर्गत दो अन्य बोलियों ताजब्बेकी तथा निमाड़ी को भी स्वीकार किया है। जार्ज ग्रियर्सन 'कन्नौजी' को बोली न मानकर ब्रजभाषा की उपबोली मानते हैं, परन्तु उन्होंने जनमत को ध्यान में रखकर उसे स्वतन्त्र बोली का दर्जा दिया है। पश्चिमी हिंदी की बोलियों का परिचय, अन्य नाम, क्षेत्र, साहित्य तथा विशेषताओं संबंधी जानकारी नीचे दी गई है।

1. हरियाणी

हरियाणी पश्चिमी हिंदी की महत्वपूर्ण बोली है। जार्ज ग्रियर्सन ने इसे 'बाँगरू' कहा है। 'बाँगर' का अर्थ होता है ऊँची भूमि। यमुना के बाँगर क्षेत्र की बोली होने के कारण यह बाँगरू है। इसके हरियाणी नाम के संबंध में कई मत मिलते हैं। कुछ लोगों के अनुसार हरि का यान यहाँ से गुजरा था इसलिए यह क्षेत्र हरियाणा है। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल इसे 'आभीरायण' का तद्भव मानते हैं। हरियाणी बोली की लिपि देवनागरी है, परन्तु कुछ लोग इसे फारसी लिपि में भी लिखते हैं। 1971 की जनगणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 62790 है।

अन्य नाम

हरियाणी बोली को बाँगरू, देसवाली आदि नामों से भी जाना जाता है।

क्षेत्र

हरियाणी मुख्य रूप में करनाल, रोहतक, पानीपत, कुरुक्षेत्र, जींद, हिसार आदि जिलों में बोली जाती है। दिल्ली और पंजाब के पश्चिमी भागों में भी हरियाणी का प्रयोग होता है। केन्द्रीय हरियाणी गोहाना, बहादुरगढ़, दादरी, हिसार, अगरोहा और रोहतक जिलों में बोली जाती है। वहीं बाँगरू कैथल, जींद, नरवाना, कुरुक्षेत्र और करनाल आदि क्षेत्रों बोली जाती है। अहीरवाटी महेन्द्रगढ़, नारनौल तथा रिवाड़ी में बोली जाती है।

साहित्य

हरियाणी बोली में साहित्य-रचना नहीं हुई है लेकिन लोकसाहित्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है। 'गरीबदास' हरियाणी बोली के प्रमुख कवि हैं।

विशेषताएँ

1. 'ल' की जगह 'ळ' का प्रयोग किया जाता है, जैसे- काळा, माळा, बादळ, धौळा आदि।
2. 'न' की जगह 'ण' का प्रयोग किया जाता है, जैसे- होणा, पाणी, उठणा, अपणा आदि।
3. 'ड, ढ़' की जगह 'ड, ढ' का प्रयोग किया जाता है, जैसे- बड्डा, डेढ, पढाई आदि।
4. हरियाणी बोली में ध्वनिलोप पाया जाता है, जैसे- 'अँगूठा' की जगह 'गुट्ठा', 'इकहत्तर' की जगह 'कहत्तर' आदि।
5. हरियाणी बोली में महाप्राण की जगह अल्पप्राण ध्वनियों का प्रयोग होता है, जैसे- 'हाथ्' की जगह 'हात्' आदि।
6. हरियाणी में व्यंजन के स्थान पर द्वित्त्व का प्रयोग होता है, जैसे- बाब्बू, बेट्टा, उप्पर आदि।
7. हरियाणी में में, मैं, मन्नें, मत्ते, मेरै, यो, या, ईहनें, इसते, आदि सर्वनाम का प्रयोग होता है।
8. हरियाणी बोली में सूँ, साँ, सै, से, था, थे आदि सहायक क्रिया का प्रयोग होता है।

बोली नमूना – एक आदमी कै दो छोरे थे। ..... तब उसका बड़ा छोरा खेत में था। मैं उठकै अपने बाप्पू धोरे चलाँ अर उसतै कहाँगा।

2. खड़ी बोली :

खड़ी बोली पश्चिमी हिंदी की प्रमुख बोली है, इसका विकास शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है। हिन्दुस्तानी, दक्खिनी हिंदी, उर्दू, साहित्यिक हिंदी और आधुनिक हिंदी का आधार यही खड़ी बोली ही है। खड़ी बोली की लिपि देवनागरी है। 1971 की जनगणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 59,89,128 है। खड़ी बोली में साहित्य रचना प्राप्त नहीं हुई है, परन्तु लोक साहित्य की दृष्टि से यह बोली भी काफी संपन्न है।

भाषा के अर्थ में खड़ी बोली शब्द का प्रयोग सबसे पहले लल्लू लाल (प्रेमसागर) तथा सदलमिश्र (नासिकेतोपाख्यान) ने किया था। लल्लू लाल और गार्सा द तासी 'खड़ी' शब्द का आधार 'खरी' को मानते हैं। कामता प्रसाद गुरु और धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार इस बोली में मिलने वाली कर्कशता के कारण इसे खड़ी बोली कहा जाता है। वहीं चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' के अनुसार ब्रजभाषा पड़ी है और ब्रजभाषा के विपरीत यह 'खड़ी' है, इसलिए यह खड़ी बोली है। गिलक्राइस्ट तथा अब्दुलहक 'खड़ी' का अर्थ 'गँवारू' मानते हैं और किशोरी दास वाजपेयी के मतानुसार 'खडी पाई' की प्रमुखता के कारण इसे खड़ी बोली कहा जाता है।

अन्य नाम :

खडी बोली के अन्य नाम निम्नलिखित हैं-

राहुल सांकृत्यायन और भोलानाथ तिवारी इसे 'कौरवी' नाम से अभिहित करते हैं। इस नाम के पीछे ये दो तर्क देते हैं, एक तो इसका क्षेत्र वही है, जिसे पहले 'कुरु' जनपद कहा जाता था और दूसरा, आधुनिक हिंदी को इस नाम के आधार पर आसानी से भिन्न किया जा सकता है। अन्य विद्वानों में सुनीति कुमार चटर्जी इसे हिन्दुस्तानी अथवा जनपदीय हिन्दुस्तानी, जार्ज ग्रियर्सन सिरहिंदी, सरहिंदी, वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सिरहिंदी नाम भी दिया है। परन्तु इसका सर्वाधिक प्रचलित नाम खड़ी बोली ही है।

क्षेत्र :

खडी बोली का शुद्ध रूप बिजनौर, उत्तर प्रदेश में मिलता है। इसका क्षेत्र काफी विस्तृत है। इसका क्षेत्र रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून का मैदानी भाग, अम्बाला (पूर्वी भाग) और पटियाला (पूर्वी भाग) है। गाजियाबाद, दिल्ली तथा ब्रज के कुछ भागों में भी खडी बोली का प्रयोग होता है।

साहित्य :

लोक साहित्य की दृष्टि से यह बोली भी काफी संपन्न है। लोक साहित्य की दृष्टि से इसमें पोवाड़ा, नाटक, लोककथा, लोकगीत, स्वांग आदि पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। मानक हिंदी का विकास इसी खड़ी बोली से हुआ है।

विशेषताएँ :

खड़ी बोली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. 'ऐ' की जगह 'ए' का प्रयोग किया जाता है, जैसे- 'पैर' की जगह 'पेर'।
2. इसी तरह 'औ' की जगह 'ओ', 'है' की जगह 'हे' का प्रयोग किया जाता है, जैसे- 'और' की जगह 'ओर', 'दौड़' की जगह 'दोड़'।
3. 'इ' की जगह 'अ' का प्रयोग किया जाता है, जैसे- 'शिकारी' की जगह 'शकारी' या 'सकारी', 'मिठाई' की जगह 'मठाई'।
4. हरियाणवी की तरह 'ल' की जगह 'ळ' का प्रयोग किया जाता है, जैसे- 'जंगल' की जगह 'जंगळ', 'बलद' की जगह 'बळद'।
5. खड़ी बोली में 'न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग होता है, जैसे- 'खाणा, माणुस, जाणा, राणी, सुणणा, अपणा आदि।
6. खड़ी बोली में कुछ विशिष्ट अव्यय प्रयुक्त होते हैं; जैसे- कद (कब), जद (जब), इब (अब), होर (और), कदी (कभी) आदि।

7. व्यंजन द्वित्व की प्रवृत्ति भी इस बोली की प्रमुख विशेषता है- बेट्टा, राज्जा, बाप्पू, उप्पर, रोट्टी, गड्डी आदि।
8. खड़ी बोली में महाप्राण के पूर्व अल्पप्राण का प्रयोग होता है, जैसे- 'देखा' की जगह 'देक्खा', 'भूखा' की जगह 'भुक्खा'।
9. खड़ी बोली की प्रधान प्रवृत्ति है- शब्दों का आकारान्त होना। जैसे- आणा, खोटूटा, लोटूटा, आदि। अवधी व्यंजनांत (घोड़) और ब्रज ओकारांत (घोरो) की तुलना में आकारांत (घोड़ा)।
10. खड़ी बोली में प्रयुक्त कुछ सर्वनाम भी विशेष प्रकार के हैं, जैसे- अपणा (अपना), मुज (मुझ), के (क्या), म्हारा (हमारा), थारा (तुम्हारा), कुच्छ (कुछ), विस्का (उसका), कोण (कौन), किस्का (किसका) आदि।

बोली नमूना- एक आदमी के दो लोण्डे थे। :. तब बड़ा भाई जंगल में था। मैं अब उठके अपने बाप के धोरे जाऊँ और उससे कहूँगा।

3. ब्रजभाषा :

ब्रजभाषा पश्चिमी हिंदी की महत्वपूर्ण बोली है, इसका उद्भव लगभग सन् 1000 ई. से माना जाता है। प्रारम्भ में इसे पिंगल या भाखा कहा जाता था। ब्रजभाषा शब्द का प्राचीनतम प्रयोग गोपाल कृत 'रस विलास टीका' (1587 ई.) में मिलता है। परन्तु भाषा के अर्थ में यह शब्द अठारहवीं शताब्दी से ही प्रचलित हुआ है। ऋग्वेद में ब्रज शब्द का प्रयोग 'चरागाह' के अर्थ में हुआ है। कुछ लोग मब्रजबुलीफ को ब्रजभाषा ही समझते हैं पर वास्तव में 'ब्रजबुलि' बंगला भाषा की एक शैली है। ब्रजभाषा मुख्य रूप से 'देवनागरी' लिपि में लिखी जाती है। कुछ लोग इसे 'फारसी' और 'कैथी' लिपि में भी लिखते रहे हैं। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार ब्रज भाषा-भाषियों की संख्या ७९ लाख है और डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इनकी संख्या एक करोड़ तेईस लाख तक मानते हैं।

अन्य नाम :

ब्रजभाषा को अन्तर्वेदी, माथुरी या नागभाषा भी कहा जाता है।

क्षेत्र :

ग्रियर्सन के अनुसार ब्रजभाषा का क्षेत्र है- मथुरा, आगरा, अलीगढ़, मैनपुरी, एटा, बदायूँ, बरेली, गुड़गाँव जिले की पूर्वी पट्टी, राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर आदि तथा ग्वालियर का पश्चिमी भाग है। वहीं लल्लूलाल ब्रज, ग्वालियर, भरतपुर, बांसवाड़ा, भदावर, अन्तर्वेद तथा बुन्देलखण्ड को ब्रजभाषा का क्षेत्र मानते हैं। ब्रज डांगी, जयपुर, करौली तथा भरतपुर में प्रयुक्त होती है।

साहित्य :

साहित्यिक दृष्टि से अन्य बोलियों की तुलना में ब्रज सर्वाधिक समृद्ध बोली है। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही साहित्य में ब्रजभाषा का प्रयोग हो रहा है। भक्तिकालीन कवियों में सूरदास और तुलसीदास ने

ब्रजभाषा में महत्वपूर्ण रचनाएँ की। जिसका प्रभाव यह हुआ की रीतिकाल का लगभग सम्पूर्ण साहित्य ब्रजभाषा में ही लिखा गया। बिहारी, घनानन्द, नन्ददास, देव, रत्नाकर, भूषण, आलम, रहीम, रसखान आदि ब्रजभाषा के ही कवि हैं। आधुनिक काल में जगन्नाथदास 'रत्नाकर' और रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ब्रजभाषा के महत्वपूर्ण कवि हैं।

विशेषताएँ :

ब्रजभाषा की विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. ब्रजभाषा की प्रमुख विशेषता है- इसकी औकारान्त प्रवृत्ति, जैसे- आयौ, गयौ, खायौ, कारौ, पीरौ, अच्छौ, बुरौ आदि।
2. ब्रजभाषा में आकारांत की जगह ओकारांत की प्रवृत्ति भी पाई जाती है, जैसे- घोड़ा की जगह घोरो, भला की जगह भलो, बड़ा की जगह बड़ो आदि।
3. ब्रजभाषा में व्यंजनांत में उकारांत प्रवृत्ति मिलता है, जैसे- 'सब्' की जगह 'सबु', 'घर्' की जगह 'घरु' आदि।
4. ब्रजभाषा में 'ह' का लोप हो जाता है, जैसे- 'साहूकार' की जगह 'साउकार', 'बारह' की जगह 'बारा' आदि।
5. 'ड़' की जगह 'र' का प्रयोग होता है, जैसे- 'घोड़ो' की जगह 'घोरो', 'साड़ी' की जगह 'सारी' आदि।
6. 'न्' की जगह 'ल्' का प्रयोग होता है, जैसे- 'नम्बरदार' की जगह 'लम्बरदार'।
7. उत्तम पुरुष एकवचन में 'हौं' (मैं) का प्रयोग होता है, जैसे- हौं ना जातु (मैं नहीं जाता)।
8. ब्रजभाषा में सर्वनाम हों, हौं (मैं), तै, तैं (तू), वो, वह, वुह (वह) ; यिह (यह), उनि, उन, उन्हौं, विन, विन्हौं, तुम्हार्यो, तिहार्यो आदि का प्रयोग होता है।
9. ब्रजभाषा में विशेषण प्रायः खड़ी बोली के समान होते हैं। उनमें सिर्फ आकारांत शब्द ओकारांत हो जाते हैं। संख्यावाचक विशेषण भी विशिष्ट हैं, जैसे- एकु, दै, तीनि, चारि, छै, ग्यारा, बारा, चउदा, किरोड़ आदि।
10. ब्रजभाषा में भविष्य काल की क्रियाओं में 'ग' वाले रूप चलते हैं, जैसेङ्कआइगे, खाडगे, जाङ्गे आदि। क्रिया का मारना के रूप- मारिबौ, मारिबौं, मारिबे, मारिबै, मारतु, मारि, मारिकै होता है।
11. ब्रजभाषा में हौं, हैं, हौ, हुतौ, हुती, हुते, हुतीं और भए, भई, ह्वै, ह्वैको, होऊँ, होइहौं आदि सहायक क्रियाओं का प्रयोग होता है।

12. ब्रजभाषा में क्रियाविशेषण अबै, तबै, आजु, काल्हि, इहाँ, हियाँ उतै, बितै, माँ, म्हाँ, हवाँ, इत, उत, कित, तित आदि का प्रयोग होता है।

बोली नमूना– एक जन के दो छोरा हैं। .... तब बाकौ बड़ौ छोरा खेत में हौ । हौं उठके अपने बाप के धोरे जाऊँ और उससे कहूँगा।

4. **कन्नौजी :**

कन्नौजी बोली पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत आती है। कन्नौजी बोली का नामकरण कन्नौज (सं. कान्यकुब्ज) नगर के नाम पर हुआ है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इसे ब्रजभाषा की ही एक उपबोली 'पूर्वी ब्रज' की संज्ञा देते हैं। परन्तु ब्रजभाषा से व्याकरणिक भिन्नता के कारण इसे अलग बोली माना जाता है। जार्ज ग्रियर्सन ने भी कन्नौजी बोली को अलग बोली माना है। कन्नौजी बोली की लिपि देवनागरी ही है। 1971 की जनगणना में कन्नौजी बोलने वालों की संख्या का उल्लेख नहीं मिलता है। जार्ज ग्रियर्सन ने अपने भाषा सर्वेक्षण में कन्नौजी बोलने वालों की संख्या 44,81,500 बताई है।

अन्य नाम :

कन्नौजी बोली को कन्नौजिया तथा कनउजी भी कहा जाता है।

क्षेत्र

जार्ज ग्रियर्सन ने कन्नौजी बोली का क्षेत्र इटावा, फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर, हरदोई तथा पीलीभीत बताया है। इस बोली का केन्द्र फर्रुखाबाद जिला है। पीलीभीत और इटावा की कन्नौजी पर ब्रजभाषा की छाप मिलती है तथा हरदोई और कानपुर की कन्नौजी अवधी बोली से प्रभावित है। कानपुर की कन्नौजी पर बुन्देली का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है।

साहित्य :

कन्नौजी के महत्वपूर्ण कवियों में चिन्तामणि, मतिराम, भूषण तथा बीरबल आदि का नाम प्रमुख हैं। परंतु इन कवियों ने अपनी रचनाएँ कन्नौजी बोली की जगह ब्रजभाषा में की हैं। फिर भी इन कवियों की ब्रजभाषा पर कन्नौजी की छाप देखी जा सकती है। आधुनिक युग में कमलूदास (अभिमन्युवध) जैसे कुछ कवियों ने कुछ रचनाएँ कन्नौजी बोली में प्रस्तुत की हैं।

विशेषताएँ :

कन्नौजी बोली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. कन्नौजी बोली की प्रधान विशेषता है, इसकी ओकारान्त प्रवृत्ति, जैसे– बड़ो, छोटो, आओ, गओ, आदि।

2. कन्नौजी में व्यंजनांत उकारांत में परिवर्तित हो जाता है, जैसे- खातु (खात्), सबु (सब्), घरु (घर) आदि।

3. कन्नौजी बोली में अन्त्य महाप्राण वर्णों की जगह अल्पप्राण वर्णों का प्रयोग होता है, जैसे- 'हाथ्' की जगह 'हॉत्'।

4. कन्नौजी में ल्ह, रहु, म्ह शब्दारम्भ में लगते हैं, जैसे- ल्हसुन, र्हटा, म्हगाई आदि।

5. हिंदी 'र' का स्पर्श व्यंजनों से योग होने पर दोनों व्यंजनों का समीकृत रूप का प्रयुक्त होता है, जैसे- 'मिर्च' की जगह 'मिच्च', 'उर्द' की जगह 'उद्द', 'हल्दी' की जगह 'हद्दी'।

6. कन्नौजी बोली में प्रयुक्त होने वाले कुछ सर्वनाम रूप विशिष्ट हैं, जैसे- मँई, मोरो, मेयो, हमाओ, तुमरो, जउन, जौनु, जौन, तौनु, तौन, कौनौं, कौनउ, किसऊ, बौ, वउ, यहु, इहु, उहि आदि।

7. कन्नौजी बोली में इया, वा प्रत्यय का योग क्रमशः स्त्रीलिंग और पुल्लिंग में होता है जैसे-मजीभफ की जगह 'जिभिया', 'दांत' की जगह 'दतियां', 'छोकरी' की जगह 'छोकोरिया', 'बेटा' की जगह 'बेटवा', 'बच्चा' की जगह मबचवाफ आदि।

8. कन्नौजी में संख्यावाचक विशेषण- इकु, एकु, दुइ, तीनि, चारि, छा (6) नउ (9) हजारू, किड़ोर आदि का प्रयोग होता है।

9. भूतकालिक सहायक क्रियाओं का विशिष्ट प्रयोग कन्नौजी की एक अन्यतम विशेषता है। हिंदी में जहाँ था, थी, थे का प्रयोग होता है, वहाँ कन्नौजी में हतो, हती, हते का प्रयोग होता है।

10. कन्नौजी बोली में क्रियाविशेषण- ह्याँ, ह्वाँ, जहाँ, इत्तो, उत्तो, कित्तो, ऐसो, वैसो, ज्यौं, त्यों आदि का प्रयोग होता है।

11. कन्नौजी बोली के कारक चिन्हों में कुछ विशिष्टता है, जैसे- कर्ता- नैं,कर्म- कउँ, को, करण- से, सन, अधिकरण- माँ, पै, लो।

बोली नमूना– एक जने के दोए लड़का हते। : तब उसको बड़ो लड़िका खेत में हतो। मैं उठके बापु के तीर जात हाँ और उनसे कैहों।

5. बुन्देली :

बुन्देली पश्चिमी हिंदी की महत्वपूर्ण बोली है, जो बुन्देलखण्ड में बोली जाती है। बुंदेला राजपूत के अधिपति के कारण इस क्षेत्र का नाम बुंदेलखंड पड़ा और यहां की बोली को बुंदेली कहा जाने लगा। यह शौरसेनी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप से विकसित हुई है। बुन्देली बोली मुख्यतः नागरी लिपि में लिखी जाती है, परन्तु कुछ लोग इसे मुड़िया, महाजनी अथवा कैथी लिपि में भी लिखते है। जार्ज ग्रियर्सन ने उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में किए गये अपने भाषा सर्वेक्षण में बुंदेली बोलने वालों की संख्या 68,69,201 बताई है।

अन्य नाम :

बुन्देली का अन्य नाम बुन्देलखण्डी भी है।

क्षेत्र :

बुन्देली का क्षेत्र उरई, जालौन, हमीरपुर, झाँसी, बाँदा, ग्वालियर, ओरछा, सागर, दमोह, नरसिंहपुर, सिवनी तथा जबलपुर, होशंगाबाद तक फैला हुआ है। इसके कई मिश्रित रूप दतिया, पन्ना, चरखारी बालाघाट, नृसिंहपुर, तथा छिंदवाड़ा के कुछ भागों में पाए जाते हैं।

साहित्य :

बुन्देली में लोक साहित्य पर्याप्त मात्रा में रचा गया है, जिसमें 'ईशुरी के फाग' बहुत प्रसिद्ध है। एनसाईं, ईसुरी, धर्मदास, लाल कवि, गंगाधर ने बुन्देली में रचना की है। छत्रसाल बुंदेला की आज्ञा से लिखी, लाल कवि की रचना 'छत्र प्रकाश' बुन्देली में है। जगनिक ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'आल्हाखण्ड' को बुन्देली की उपबोली 'बनाफरी' में लिखा है।

विशेषताएँ :

बुन्देली बोली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. 'अ' की जगह 'इ' का प्रयोग होता है, जैसे- 'बरोबर' की जगह 'बिरोबर'।
2. 'ए' की जगह 'इ' का प्रयोग होता है, जैसे- 'बेटी' की जगह 'बिटिया'।
3. 'ओ' की जगह 'उ' का प्रयोग होता है, जैसे- 'घोरो' की जगह 'घुरवा'।
4. 'ड' की जगह 'र' का प्रयोग होता है, जैसे- 'पड़ो' की जगह 'परो'।
5. 'क' की जगह 'ग' का प्रयोग होता है, जैसे- 'हकीकत' की जगह 'हकीगत'।
6. 'स' की जगह 'छ' का प्रयोग होता है, जैसे- 'सीढ़ी' की जगह 'छीड़ी'।
7. बुन्देली में प्रयुक्त कुछ सर्वनाम दृष्टव्य हैं- में, मैं, मो, मोरो, मोई, मो, ओ, हमैं, तू, ते, तें, बौ, बो, जो, ई, इ, ऊको, तौन, ती, तोओ, तुमाओ, काये, कोऊ, कोउ, कौनऊं आदि।
8. बुन्देली बोली प्रायः औकारान्त है, भूतकालिक कृदन्त के लिए 'ओ' प्रत्यय लगता है, जैसे- आओ, गाओ, मारो, बैठो, आदि।
9. विशेषण भी इसकी विशिष्टता को रेखांकित करते हैं- अपुन, अपन, आप, छै (6), नौ (9), गेरा (11), बारा (12), तेरा (13), चउदा (14), पन्द्रा (15), उन्नैस (19), पैलो, दुसरौ, पाँचमौं, आधो, चौथयाई, सबाओ, दो बीसी (40) तीन बीसी (60) आदि।
10. बुन्देली में सहायक क्रिया के लिए- हौं, औं, हों, ओं, आँव, आँउँ, हुहौं, होउँगी आदि रूप चलते हैं। भूतकालिक सहायक क्रिया के लिए- हतो, हती, हते, तो, ती, ते, का प्रयोग होता है, जैसे- इकु राजा हतो।

11. बुन्देली के सार्वनामिक क्रिया विशेषण भी विशेष प्रकार के हैं- इत्तो, इतनो, कित्तों, कितनौ, जित्तौ, वैसो, कै, जै, आदि।

बोली नमूना- एक जने के दो मोड़ा हते। : जब वा के बड़ो भइया खेत में हतो। मैं उठके अपने बाप के ढिंगा जात हों और वासों केहों।

6. निमाड़ी :

निमाड़ी बोली का क्षेत्र मध्य प्रदेश का निमाड नामक प्रदेश है। जार्ज ग्रियर्सन इसे राजस्थानी उपभाषा के दक्षिणी वर्ग अर्थात् दक्षिणी राजस्थानी के अन्तर्गत रखते हैं। कई विद्वानों ने इसे मालवी का दक्षिणी रूप स्वीकार किया है। निमाड़ी को डॉ. भोलानाथ तिवारी पश्चिमी हिंदी में ही रखने के पक्ष में हैं। इस बोली पर मालवी, मराठी, बुन्देली, खानदेशी और भीली का पर्याप्त प्रभाव दिखाई पड़ता है। फोर्सिथ के अनुसार यह फारसी और मराठी शब्दों से युक्त हिंदी की एक बोली है।

क्षेत्र :

परिनिष्ठित निमाड़ी का क्षेत्र खरगोन और खण्डवार के बीच का प्रदेश माना जाता है।

साहित्य :

निमाड़ी में लोक साहित्य की रचना पर्याप्त मात्रा में हुई है परंतु साहित्य कम लिखा गया है। इसके प्रमुख कवि 'सिंगाजी' हैं।

विशेषताएँ :

निमाड़ी बोली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. निमाड़ी बोली में अल्पप्राणीकरण पाया जाता है, जैसे- हाथ की जगह हात्, साधु की जगह सादू।
2. निमाड़ी में घोषीकरण की प्रवृति पाई जाती है, जैसे- लोक की जगह लोग।
3. निमाड़ी बोली में 'ल' की जगह 'ळ' का प्रयोग होता है, जैसे- बाल की जगह बाळ।
4. निमाड़ी में अकारण अनुनासिकता की भी प्रवृति मिलती है, जैसे- चावल की जगह चाँवल।
5. निमाड़ी बोली में संज्ञा का विकारी रूप दिखाई देता है, जैसे- घोड़ा, घोड़ान्, घोड़ना, बकरीन, बकरीना आदि।
6. निमाड़ी बोली में प्रयुक्त होने वाले कुछ सर्वनाम रूप विशिष्ट हैं, जैसे- हऊँ, मन, मख, हमख, म्हसी, हमसी, तोसी, थारासी, थारो, ऊ, वा, ओख आदि।
7. निमाड़ी बोली में विशेषण प्रायः हिंदी के समान प्रयुक्त होते हैं, जैसे- पाच (5) चाळीस (40), आधो, घोड़ो, जादो, बड़ो, ऊचो आदि।
8. निमाड़ी में क्रिया के लिए- चलूँज्, चलूँच्, चलाँच्, चल्यो, चल्यो छे, चल्यो थो आदि रूप चलते हैं।
9. इसके कुछ क्रिया विशेषण निम्नवत् हैं- अब, अवँ, जब, जवँ, आज, काल, परसों, याँ, वहाँ आदि।

3.3.1.2 **पूर्वी हिंदी :**

पूर्वी हिन्दी का क्षेत्र प्राचीन काल का उत्तर कोसल और दक्षिण कोसल था। यह क्षेत्र उत्तर से दक्षिण तक दूर-दूर तक फैला हुआ है। इसके अंतर्गत उत्तर प्रदेश में अवधी और मध्य प्रदेश में बघेली तथा छत्तीसगढ़ी का सारा क्षेत्र आता है; अर्थात् कानपुर से मिर्ज़ापुर तक लगभग 240 कि.मी. और लखीमपुर की उत्तरी सीमा से दुर्ग, बस्तर की सीमा तक लगभग 100 कि.मी. के क्षेत्र में पूर्वी हिन्दी बोली जाती है। बोलने वालों की संख्या पाँच करोड़ के लगभग है। अवधी में भरपूर साहित्य मिलता है। मंझन, जायसी, उस्मान, नुरमुहम्मद आदि सूफी कवियों का काव्य ठेठ अवधी में और तुलसी, मानदास, बाबा रामचरण दास, महाराज रघुराज सिंह आदि का रामकाव्य साहित्यिक अवधी में लिखा गया है। इस वर्ग की तीन बोलियाँ हैं: अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। समानता की दृष्टि से जितना घनिष्ठ संबंध इनमें है, उतना हिन्दी की अन्य उपभाषाओं में नहीं है।

1. **अवधी :**

अवधी पूर्वी हिंदी की प्रमुख बोली है जो अवध प्रदेश के अन्तर्गत बोली जाती है। ऐसा माना जाता है कि अयोध्या से अवध शब्द विकसित हुआ और इसी के आधार पर इस बोली को अवधी कहा गया। जार्ज ग्रियर्सन ने इसे अर्धमागधी अपभ्रंश से उद्भूत माना है, परन्तु डॉ. बाबूराम सक्सेना इसकी पालि से अधिक समानता पाते हैं। वहीं डॉ. भोलानाथ तिवारी इसे 'कौसली' से उद्भूत मानते हैं। अवधी प्रायः नागरी लिपि में लिखी जाती है परंतु मध्यकाल में कैथी और फारसी लिपि में भी इसे लिखा जाता रहा है। जार्ज ग्रियर्सन ने अवधी बोलने वालों की संख्या एक करोड़ साढ़े इकसठ लाख बताई है।

अन्य नाम :

अयोध्या कोशल प्रदेश के अन्तर्गत आता है, इसलिए इसे क़ोशली बोली भी कहा जाता है। अवधी को कुछ विद्वान पूर्वी, उत्तराखण्डी अथवा बैसवाड़ी कहने के पक्ष में भी हैं। परन्तु अधिकांश विद्वान अवधी नाम के पक्ष में एकमत हैं।

क्षेत्र :

अवधी बोली उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी, गोंडा, बहराइच, लखनऊ, उन्नाव, बस्ती, रायबरेली, सीतापुर, हरदोई का कुछ भाग, अयोध्या, फैजाबाद, सुलतानपुर, रायबरेली, प्रतापगढ़, बाराबंकी, कानपुर, फतेहपुर, इलाहाबाद, मिर्जापुर का कुछ भाग तथा जौनपुर (कुछ भाग) जिलों में फैला हुआ है।

साहित्य :

अवधी बोली में साहित्य रचना व्यापक मात्रा में हुई है। अवधी की प्रथम रचना मुल्ला दाऊद की कृति 'चंदायन' को माना जाता है। तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' एवं जायसी कृत 'पद्मावत' जैसे हिंदी महाकाव्य इसी बोली में लिखे गए हैं। हिंदी की प्रेमाश्रयी शाखा के लगभग सभी कवियों ने अवधी में ही साहित्य रचना की है। इनमें प्रमुख हैं- जायसी, मंझन, कुतबन, नूर मुहम्मद आदि। अवधी के अन्य प्रमुख

कवि हैं- लालदास, नाभादास, अग्रदास, सूरजदास, ईश्वरदास, छेमकरन, कासिमशाह और आधुनिक काल में पं. द्वारिका प्रसाद मिश्र।

विशेषताएँ :

अवधी की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. अवधी में 'ए', 'ओ' के ह्रस्व और दीर्घ दोनों रूप तथा स, श, ष के स्थान पर 'स' का प्रयोग होता है।
2. अवधी बोली में 'ऐ' का उच्चारण 'अइ' और 'औ' का उच्चारण 'अउ' के रूप में होता है, जैसे, 'ऐसा' की जगह 'अइसा', 'औरत' की जगह 'अउरत'।
3. अवधी भाषा के कुछ ध्वनि परिवर्तन निम्नलिखित हैं-

   ण > न- चरण > चरन, मणि > मनि, गुण > गुन

   य > ज- योग > जोग, सुयश > सुजस

   ल > र- मूसल > मूसर, अंजलि > अंजुरी

   ड > र- जोड़ (कर) > जोरि

   व > ब- वाण > बान, वारि > बारि

   ष > ख- भाषा > भाखा
4. अवधी में अल्पप्राण की जगह महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग होता है, जैसे- पेड़ की जगह फेड़, पुनः की जगह फुन।
5. अवधी बोली में संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं, जैसे- घोर (घोड़ा), घोरवा, घरउना; कुत्ता, कुतवा, कुतउना।
6. अवधी बोली सर्वनाम रूप भी विशिष्टता लिए हुए हैं, जैसे-अन्य पुरुष- ऊ, बा, ओ, उइ, ई, इठ, इन येइ, केऊ, कौनो, काहु, ओकर, वहिकर आदि। मध्यम पुरुष- तूं, तैं, तुंह, तोर, तोहार, तोहि, तोहिं, तुहि आदि। उत्तम पुरुष- मैं, मइं, मोर, मोरे, मोरि, म्वार, मोकहं, हम, हमन, हमारा आदि।
7. अवधी बोली के विशेषण मूलरूप में अकारान्त होते हैं, जैसे- छोट, बड़, भल, नीक, खोट, याक् (1), पान (5), पहिल, दूसर, पउन आदि।
8. अवधी बोली की कुछ क्रिया निम्नलिखित हैं-चलउँ, चलइ, चलउ, चलतिहउँ, चलतिहइ, चलिसिहइ, चले होतिउँ आदि।
9. अवधी बोली की कुछ सहायक क्रियाएं निम्नलिखित हैं-वर्तमान काल- अहउं, आहि, हहि, आछै। भूतकाल- भा, भए, रहा, रहे, अहा, अहे। भविष्यकाल- होब, होबइ, होयउं, होइहि।

10. अवधी बोली के विशिष्ट क्रिया विशेषण निम्नलिखित हैं-यहां- इहँ, इहाँ, एठियाँ, हियाँ, इहवाँवहां- उहां, ओठियां, ओठियन, हुआँ, उहवांकहां- कहैं, कहवां, केठियां, केठियन।अन्य क्रिया विशेषण- ऊहाँ, ओइकी, जईसी, अब्बय, ई जून, तब्बइ, आजु, काल्हि, परउँ, फिन आदि।
11. बोलचाल की आधुनिक अवधी बोली खड़ी बोली से भी प्रभावित है। जबकि मध्यकालीन अवधी में अरबी-फारसी के शब्द अधिक प्रयुक्त होते थे।

बोली नमूना- एक मनई के दुइ बेटवा रहिन। : ओई जून ओकर जेठ बेटवा खेत माँ रहा। हम उठके अपने बाप के लग जाइथै अउर उससे कहब।

2. बघेली :

बघेली पूर्वी हिंदी की महत्वपूर्ण बोली है। बघेले राजपूतों की वजह से रीवाँ और आसपास का क्षेत्र बघेलखण्ड कहलाया और बघेलखण्ड की बोली बघेली कहलाई। बघेली और अवधी में इतनी अधिक समानता है कि कुछ विद्वान बघेली को अवधी की एक बोली मानते हैं। जार्ज ग्रियर्सन ने भी जनमत को ध्यान में रखकर ही बघेली को स्वतन्त्र बोली स्वीकार किया था। इसकी सीमावर्ती बोलियाँ है- बुन्देली, अवधी और भोजपुरी। पहले बघेली बोली को कैथी लिपि में लिखा जाता था, परन्तु अब यह देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती है। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार बघेली बोलने बालों की संख्या लगभग ४६ लाख है।

अन्य नाम :

बघेली को रीवाँई और बघेलखंडी नाम से भी संबोधित किया जाता है।

क्षेत्र :

जार्ज ग्रियर्सन ने बघेलखण्ड एजेंसी - रीवाँ, कोठी, सोहावल, चांग भखार का कुछ हिस्सा, जिला मण्डल का कुछ प्रदेश, दक्षिणी मिर्जापुर का कुछ हिस्सा तथा जबलपुर के कुछ इलाके को बघेली का क्षेत्र माना हैं। परंतु सामान्यतः रीवाँ, दमोह, शहडोल, सतना, मैहर, जबलपुर, नागौर कोठी, माँडला, बालाघाट, बाँदा, फतेहपुर, मिर्जापुर तथा हमीरपुर (कुछ भाग) जिले बघेली का क्षेत्र माने जाते हैं।

साहित्य :

बघेली में ललित साहित्य का प्रायः अभाव है। थोड़े से दानपत्र, दो-चार धार्मिक ग्रंथ, लोकगीतों और कुछ कथाओं की संग्रह इसमें प्राप्त होते हैं।

विशेषताएँ :

बघेली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. बघेली बोली में अवधी बोली का -हस्व प्रयुक्त होता है, जैसे-

ओ > ब- तोर > त्वार, मोर > म्बार

ओ > वा- होस > हवास

ए > य- पेट > प्याट, देत > द्यात

व > ब- गवा > गबाव

ग + ह > घ- जगह > जाघा

2. बघेली में संज्ञा तथा विशेषण के रूप तीन तरह से चलते है, जैसे-लरिका, लरिकवा, लरिकौना। छोटा, छोटवा, छोटकौना।
3. बघेली में सर्वनाम के रूप विशिष्ट हैं, जैसे- मँय, म्वारे, म्यहि, म्वार, हम्ह, हम्हार, तँय, तयां, त्वार, त्वारे, तुम्हार, वहि, वहिकर, या, य, उन्हा, वा, यहि, कोऊ, कोन्हों, कउन, जेन्ह, जेन, जौन, तौन आदि।
4. बघेली में चलतआँ, चलतआ, चलौं, चलस, चली, चलत्ये हैं, चलत अहे, चलेन्, चलिन आदि क्रिया का प्रयोग होता है।
5. बघेली बोली में भूतकालीन सहायक क्रिया में एकवचन में 'रहा' और बहुवचन में 'ता-ते' प्रत्यय जुड़ते हैं, जैसे- रहे, रहने हुते।
6. बघेली में इहँवाँ, उहँवाँ, एहै कैत, एहै कयोत, तेहै मुँह, केहै केत आदि क्रियाविशेषण का प्रयोग होते हैं।
7. बघेली बोली में कारक का प्रयोग विशिष्टता के लिए हुआ है-

   कर्ता कारक में किसी परसर्ग का प्रयोग नहीं होता है।

   कर्म में- का, ला का प्रयोग

   सम्बन्ध में- केर, के का प्रयोग होता है।
8. कृदन्त रूपों का निर्माण निम्नवत् होता है-

   वर्तमानकालिक कृदन्त बनाने के लिए क्रिया में 'त' जुड़ता है, जैसे- चलत, देखत, आउत।

   भूतकालिक कृदन्त बनाने के लिए क्रिया में आ, ई प्रत्यय जुड़ते हैं, जैसे- चला, चली।

   पूर्वकालिक कृदन्त बनाने हेतु 'कै', कइ प्रत्यय का योग होता है, जैसे- चलकै, खाकइ।
9. क्रियार्थक संज्ञा बनाने के लिए 'ब' प्रत्यय जुड़ता है, जैसे- चलब, देब, आदि।

बोली नमूना- एक मनई के दुइ लरिका रहै। रहा है। : तब वोकर जेठ लरिका खेत मा रहा तो। मैं उठि कै अपने बाप के लघे जात हौं और वो से कहिहौं।

3. छत्तीसगढ़ी :

छत्तीसगढ़ी पूर्वी हिंदी की महत्वपूर्ण बोली है, इसका भी विकास अर्धमागधी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप से हुआ है। छत्तीसगढ़ी बोली का मुख्य क्षेत्र छत्तीसगढ़ होने के कारण इसे छत्तीसगढ़ी कहते हैं। इस बोली पर

नेपाली, बंगला तथा उड़िया का प्रभाव भी पड़ा है। छत्तीसगढ़ी बोली मुख्य रूप से नागरी लिपि में लिखी जाती है परन्तु इसकी दो उपबोलियों, भुलिया तथा कलंगा के लिए उड़िया लिपि का प्रयोग किया जाता है। जार्ज ग्रियर्सन ने इसके बोलने वालों की संख्या 33 लाख बताई है। 1961 की जनगणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 2962038 थी।

अन्य नाम :

बालाघाट के लोग इसे खल्हाटी अथवा खलोटी भी कहते हैं। पूर्वी सम्भलपुर के पास इसे 'लरिया' नाम से जाना जाता है। कुछ भागो में इसे खल्ताही भी कहा जाता है।

क्षेत्र :

छत्तीसगढ़ी बोली निम्नलिखित क्षेत्रों में बोली जाती है– छत्तीसगढ़, रायपुर, बिलासपुर, सम्भलपुर जिले के पश्चिमी भाग, काँकेर, नंदगाँव, खैरागढ़, चुइखदान, कवर्धा, सुरगुजा, बालाघाट के पूर्वी भाग, सारंगढ़, जशपुर, बस्तर एवं बिहार के कुछ भागों में बोली जाती है।

साहित्य :

साहित्य की रचना छत्तीसगढ़ी बोली में नहीं हुई, किन्तु लोक-साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

विशेषताएँ :

छत्तीसगढ़ी की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. छत्तीसगढ़ी बोली में ए, ऐ, ओ, औ के ह्रस्व रूपों का भी प्रयोग होता है।
2. छत्तीसगढ़ी में 'ङ्' ध्वनि का स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता है।
3. कुछ ध्वनि परिवर्तन विशेष प्रकार के हैं, जैसे–

   ष > स्- वर्षा > बरसा, भाषा > भासा

   ष > ख- वर्षा > बरखा, भाषा > भाखा

   क > ख- इलाका > इलाखा, बंदकी > बंदखी

   त > द- रास्ता > रसदा

   स > छ- सीता > छीता

   छ > स- छतरी > सतरी

   ब > प- खराब > खराप, शराब > सराप आदि।
4. छत्तीसगढ़ी बोली में संज्ञा से बहुवचन बनाने के लिए 'मन', 'अन', 'गंज', 'जमा', 'जम्मा', 'सब्बों' आदि का प्रयोग किया जाता है, जैसे– मनुख मन (मनुष्यों), नोकरन, लड़कन, जम्मा पुतोमन आदि।

5. छत्तीसगढ़ी में स्त्रीलिंग बनाने के लिए 'ई', इया, निन, आइन आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, जैसे- दुबे > दुबाइन, बाघ > बघानिन
6. छत्तीसगढ़ी बोली के सर्वनाम भी विशिष्ट हैं, जैसे- में, मैं, मोर, तैं,, तुँहार, तुहमन, इया, येकर, एकर, जिन्हकर, कोन्मन्कर, कुछू, कोनो-कोनो (कोई), कुछू-कुछू आदि।
7. छत्तीसगढ़ी बोली में दू, छे, नों, ग्यारा, बारा, तेरा, चउदा, पन्द्रा, कोरी (20) एक कोरी दू (22), एकठो, छेठों, चरगुन (चौगुना) पहिल, दूसर आदि विशेषण प्रयुक्त होते हैं।
8. छत्तीसगढ़ी बोली के सार्वनामिक विशेषण भी अलग तरह के है, जैसे-

   इतना- इतका, अडुक

   उतना- ओतक, उतका, ओडुक

   जितना- जेतना, जतका, जडुक
9. छत्तीसगढ़ी कि क्रिया भी विशिष्ट हैं, जैसे- होत, देखत, होते, देखते, देखे, होए, भए, होके, देखके, सोब, देखब आदि।
10. छत्तीसगढ़ी बोली के क्रिया-विशेषण भी विशिष्ट हैं, जैसे- इहाँ, उहाँ, तिहां, कहूं, जैसन, ओती (उधर), उतका, ओतका, कतको, जेती, अभिच (अभी ही), आगे, पाछू, भलुक (बल्कि), जतका (जितना) सामूँ (सामने) आदि।

बोली नमूना- एकठन मनखे के दुई बेटवा रहिन। : तवो वोकर बड़का बेटवा खेत मां रहिस। मैं उठके अपना ददा मेर जात औं और वो ला गोठियाहौं।

3.3.1.3 राजस्थानी हिंदी :

भाषाशास्त्रियों ने राजस्थानी हिंदी को हिंदी की पाँच उपभाषाओं में स्थान दिया है। राजस्थान शब्द का इस प्रांत के लिए पहला लिखित प्रयोग 'कर्नल टॉड' ने किया था, जिनको आधार बनाकर जार्ज ग्रियर्सन ने इस क्षेत्र की भाषा को राजस्थानी कहा और साथ-साथ राजस्थानी की बोलियों का सर्वेक्षण भी प्रस्तुत किया। इस प्रकार भाषा के अर्थ में राजस्थानी शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ग्रियर्सन ने किया था। ग्रियर्सन राजस्थानी का उद्गम शौरसेनी अपभ्रंश के एक रूप 'नागर अपभ्रंश' से मानते हैं। वहीं डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी शौरसेनी से भिन्न 'सौराष्ट्री अपभ्रंश' से और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी 'गुर्जरी अपभ्रंश' से मानते हैं। गुर्जर अपभ्रंश शौरसेनी अपभ्रंश का ही पश्चिमी रूप है। जार्ज ग्रियर्सन ने राजस्थानी उपभाषा को छह बोलियों में विभाजित किया है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इसे दो वर्गों- पश्चिमी राजस्थानी और पूर्वी राजस्थानी में विभाजित किया है। परंतु अधिकांश विद्वान मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाती और मालवी को ही राजस्थानी की बोलियाँ मानते हैं।

1. **मारवाड़ी**

मारवाड़ी राजस्थानी की सर्वप्रमुख बोली है। इस बोली का उल्लेख 'कुवलयमाला' (778 ई.) में 'मरूभाषा' नाम से हुआ है। मारवाड़ी बोली की लिपि महाजनी रही है किंतु वह प्रायः नागरी लिपि में लिखी जाती है। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या लगभग 65 लाख थी। 1971 की जनगणना के अनुसार यह संख्या 6242449 है। साहित्यिक दृष्टि से यह बोली समृद्ध है।

अन्य नाम :

मुख्य रूप से मारवाड़ की बोली होने के कारण यह मारवाड़ी कहलाती है। इसे 'अगरवाला' भी कहा गया है। साहित्यिक मारवाड़ी को प्रायः 'डिंगल' नाम से जाना जाता है। इसे 'मरूभाषा' के रूप में भी संबोधित किया जाता है।

क्षेत्र :

मारवाड़ी बोली मारवाड़, जोधपुर, मेवाड, सिरोही, पूर्वी सिन्ध बीकानेर, जैसलमेर, दक्षिणी पंजाब तथा उत्तर-पश्चिमी जयपुर में बोली जाती है। इसका परिनिष्ठित रूप जोधपुर के आसपास का है।

साहित्य :

राजस्थान का लगभग सम्पूर्ण साहित्य मारवाड़ी के साहित्यिक रूप 'डिंगल' में लिखा गया है। वस्तुतः 'डिंगल' मारवाड़ी की साहित्यिक शैली है जिसमें यहाँ के चारण कवियों ने काफी साहित्य लिखा है। पृथ्वीराज रासो जैसा विशाल महाकाव्य इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। मीराबाई की रचनाएँ भी मारवाड़ी बोली में ही रचित हैं।

विशेषताएँ :

मारवाड़ी की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. मारवाड़ी बोली में ऐ और औ का उच्चारण तत्सम शब्दों में- अइ, अए और अउ, अओ जैसे होता है।
2. मारवाड़ी में अनेक स्थानों पर 'च्' और 'छ्' का उच्चारण 'स्' हो जाता है, जैसे- चक्की > सक्की, छाछ > सास आदि।
3. मारवाड़ी बोली में 'ल' के स्थान पर 'ळ' का उच्चारण होता है, जैसे- बाल > बाळ, जल > जळ, काला काळा आदि।
4. मारवाड़ी में 'न' के स्थान पर 'ण' का उच्चारण होता है, जैसे- पानी > पाणी, नानी > नाणी आदि।
5. मारवाड़ी बोली में शब्द के प्रारम्भ में 'स्' ध्वनि की जगह 'ह्' का उच्चारण होता है, जैसे- सड़क > हड़क, साथ > हाथ आदि।
6. मारवाड़ी में हकार (ह) का लोप होता है- रहणो > रैणो, कहयो > कयो आदि।
7. मारवाड़ी बोली में अल्पप्राणीकरण पाया जाता है, जैसे- भूख > भूक, हाथ > हात
8. मारवाड़ी बोली में संज्ञा के निम्न रूप मिलते हैं, जैसे- घोड़ा, घोड़ो, घोड़े, घोड़ौ, घोड्या आदि।

9. मारवाड़ी में प्रयुक्त कुछ सर्वनाम दृष्टव्य हैं- म्हूं, म्हे, अयाँ, तू, थूं, थे, ताथे, तायां, ऊ, वा, उण, उणी, जिको, कुण आदि।
10. मारवाड़ी बोली के विशेषण भी विशिष्ट हैं, जैसे- दोय्, दोयाँ, चिथार, च्यार, छव, पैलो, दुजो, चोथो, छट्ठो आदि।
11. मारवाड़ी की कुछ क्रिया निम्नलिखित हैं- चळूँ, चळियो, चळतो, चळहूँ, चळहाँ आदि।
12. मारवाड़ी में निम्न क्रियाविशेषण प्रयुक्त होते हैं- अबै, अमै, जदी, जदै, अठी, अठै, ईठै, ऊँठैं, कठै, कैंठे आदि।
13. मारवाड़ी बोली के पर्सर्गों में कर्म-सम्प्रदाय के स्थान पर- नै, ने, कने, रै, करण-अपादान के स्थान पर- सूँ, ऊँ, संबंध में- रो, रा, री, नौ को और अधिकरण में- में, माँ, माई का चलन है।

बोऊ नमूना- एक मिनख रै बे/दोय दिकरा ता/हा। : उन बिरियाँ बड़ो दिकरो खेत में तो/हो। हमें हूँ उठर आपरे बाप कने जाऊ अरे/नै उणने कइस।

2. जयपुरी :

जार्ज ग्रियर्सन इसे मध्य पूर्वी राजस्थानी कहते हैं। यह बोली शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित हुई है। अजमेरी, किशनगढ़ी तथा हड़ौती को भी जयपुरी बोली में ही शामिल किया जाता है। जयपुरी नाम यूरोपियों का दिया हुआ बताया जाता है। जयपुरी की मुख्य लिपि नागरी है। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 1687899 थी।

अन्य नाम :

जयपुरी बोली के अन्य नाम निम्नलिखित हैं-

ढूँढाड़ी, मध्य पूर्वी राजस्थानी, झाड़साही बोली और काईं कूईं आदि। ढूँढ़ (टीला) शब्द से ढूँढ़ाड़ी शब्द बना है

क्षेत्र :

यह बोली जयपुर के अतिरिक्त किशनगढ़, इन्दौर, अलवर के अधिकांश भाग, अजमेर, बूंदी, कोटा, बाराँ, सवाईमाधोपुर और मेरवाड़ा के उत्तर-पूर्वी भाग, टोंक, दौसा जिलों में बोली जाती है।

साहित्य :

जयपुरी में साहित्य-रचना कम ही हुई है। दादू और उनके पंथ का काफी साहित्य जयपुरी हिंदी में मिलता है।

विशेषताएँ :

जयपुरी की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. जयपुरी बोली की कुछ ध्वनि परिवर्तन निम्नलिखित हैं-

अ > इ- सड़ > सिंड

इ > अ– पंडित > पंडत

उ > अ– मानुख > मिनखाकि

आ > इ– मामुख > मिनख

न > ण– कहानी > खाँणी

2. जयपुरी में 'ह' ध्वनि का लोप हो जाता है, जैसे– शहर > सैर
3. इस बोली में अल्पप्राणीकरण की प्रवृति मिलती है, जैसे– खुशी > कुसी, जीभ > जीब, आधा > आदो आदि।
4. इस बोली में महाप्राणीकरण की प्रवृति भी मिलती है, जैसे– वक्त बखत आदि।
5. जयपुरी बोली में संज्ञा के निम्न रूप मिलते हैं, जैसे– घोड़ा, घोड़ौ, घोड्यां, घोड्या, आदि।
6. जयपुरी में प्रयुक्त कुछ सर्वनाम दृष्टव्य हैं– म्हे, अयाँ, म्हाँ, मूँ, तू, थ, तै, थां, वै, ऊँ, जो, ती, कुण, कोऊँ आदि।
7. इस बोली के विशेषण भी विशिष्ट हैं, जैसे– चोखो, येक्, च्यार, छै आदि।
8. जयपुरी बोली की कुछ क्रिया निम्नलिखित हैं– चळूँ, चळाँ, चळो, चळै, चळयो, चळूला, चळस्यूँ आदि।
9. इस बोली की मुख्य पहचान इसकी सहायक क्रियाएँ हैं– हूँ, छा, छाँ, छूँ, छै, छो, छै, छे, छी आदि।
10. इस बोली में भविष्यत् काल के लिए लो, ला स्यूँ, सी कृदंत का प्रयोग होता है।

बोली नमूना– एक जणो के दो बेटा छा। : तब ऊँको बड़ो बेटो खेत में छो। मैं उँठर म्हार बाप कने जाउँ अरा उननै कहस्यूँ।

3. मेवाती :

मेवाती बोली शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित हुई है। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार यह उत्तर–पूर्वी राजस्थान की एक बोली है। 'मेव' लोगों/जाति के कारण इस क्षेत्र का नाम मेवात और मेवात के कारण बोली का नाम मेवाती पड़ा है। मेवाती बोली पश्चिमी हिंदी एवं राजस्थानी के बीच सेतु का काम करती है। मेवाती की लिपि देवनागरी है। 1971 के भाषा–सर्वेक्षण में मेवाती बोलने वालों की संख्या 285921 मिलती है।

क्षेत्र :

मेवाती बोली का क्षेत्र मेवात की तुलना में अधिक विस्तृत है। यह पूरे अलवर की भाषा है। भरतपुर के उत्तर–पश्चिमी भाग तथा हरियाणा के गुड़गाँव जिले के उत्तर–पश्चिमी भाग में भी मेवाती का प्रयोग होता है। दिल्ली तथा करनाल के पश्चिम क्षेत्रों में बोली जाती है।

साहित्य :

मेवाती बोली में साहित्य रचना नहीं हुई, इसमें सिर्फ लोक साहित्य उपलब्ध है।

विशेषताएँ :

मेवाती बोली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. मेवाती बोली की कुछ ध्वनि परिवर्तन निम्नलिखित हैं–

   ल > ळ बालक > बाळक, बाल > बाळ

   न > ण पानी > पाणी

   उ > ओ- मुँह > मोंह

2. मेवाती बोली में महाप्राण की जगह अल्पप्राण ध्वनियों का प्रयोग होता है, जैसे– हाथ > हात, जीभ > जीब, बतख > बतक आदि।
3. मेवाती बोली में अकारण अनुनासिकता पाया जाता है, जैसे– पचास > पँचास आदि।
4. मेवाती में संज्ञा के निम्न रूप मिलते हैं, जैसे– घोड़ा, घोड़ां, घोड़ौ, घोड्यां, घोड्या आदि।
5. मेवाती बोली में प्रयुक्त कुछ सर्वनाम दृष्टव्य हैं– मैं, हमा, मूँ, तम, थम, वो, वा, वैं, उन, कौण, कैंह, कोई, कियई आदि।
6. मेवाती के विशेषण भी विशिष्ट हैं, जैसे– आकारांत > योअन्त– बड़ो > बड्यो, छोटो > छोट्यो आदि।
7. इस बोली की कुछ क्रिया निम्नलिखित हैं– चलूँ, चला, चलै, चलो, चलाँ, चल्या, चल्यो, चलूँगो, चलागो, चलैगो आदि।
8. मेवाती बोली की कुछ सहायक क्रियाएँ निम्नलिखित हैं– हूँ, सूँ, सां, सै, सैं, हो, सो, है, सै आदि।
9. मेवाती बोली में 'ने' परसर्ग का प्रयोग कर्म संप्रदान में और 'तै' परसर्ग का प्रयोग अपादान में मिलता है।

बोली नमूना– एक आदमी के दो बेटा हा। : तब वैंह को बड़ो बेटो खेत में हो। मैं उठ के अपणा बाप के कने जाऊँ अर वैह ने कहूंगो।

4. **मालवी :**

शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित मालवी मालवा प्रदेश अर्थात् उज्जैन के निकटवर्ती क्षेत्र की बोली है। इस क्षेत्र की बोली को पहले 'आवन्ती' कहा जाता था। मालवी बोली को आवन्ती का ही विकसित रूप माना जाता है। जार्ज ग्रियर्सन इस बोली को दक्षिण–पूर्वी राजस्थानी कहते हैं। वहीं डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी इसे पश्चिमी हिन्दी और राजस्थानी दोनों के निकट मानती हैं। मालवी की प्रमुख लिपि नागरी

है। इसके अतिरिक्त महाजनी तथा महाजनी और मुडिया प्रभावित नागरी लिपि का भी प्रयोग होता था। जार्ज ग्रियर्सन के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 4350507 थी। 1971 की जनगणना के अनुसार यह संख्या 1142478 है।

अन्य नाम :

मालवी बोली के अन्यनाम निम्नलिखित हैं- आवंती, दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी, अहीरी आदि।

क्षेत्र :

मालवी बोली का अधिकांश क्षेत्र मध्य प्रदेश में और कुछ राजस्थान में पड़ता है। यह मुख्यतः इंदौर, उज्जैन, देवास, भोजावाड़, झाबुआ, सीतामऊ, रतलाम, भोपाल, होशंगाबाद, गुना, नीमच, टोंक, चित्तौड़गढ़ और मेवाड़ के कुछ भागों में बोली जाती है।

साहित्य :

मालवी में लोक साहित्य के साथ ही साहित्य की भी रचना हुई है। चन्द्रसखी इसकी प्रसिद्ध कवयित्री हैं।

विशेषताएँ :

मालवी बोली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. मालवी बोली की कुछ ध्वनि परिवर्तन निम्नलिखित हैं-

   ऐ > ए- चैन > चेन

   औ > ओ- सौ > सो, पैसा > पेसा

   ह > य- मोहन > मोयन

   य > ज- युद्ध > जुद्ध

   न > ण- कहानी > कैंणी

   म> ड- मेंढक > डेंडक

2. मध्य और अंत में जोड़ने वाल 'ड' का उच्चारण 'ड' होता है।
3. मालवी में 'ह' के स्थान पर 'य' या 'व' ध्वनि मिलती है या उसका लोप हो जाता है, जैसे- मोहन > मोयन, लुहार > लुवार, महीना > मइना आदि।
4. मालवी में संज्ञा के निम्न रूप मिलते हैं, जैसे- घोड़ा, घोड़ो, घोड़ौ, घोड्याँ आदि।
5. मालवी बोली में प्रयुक्त कुछ सर्वनाम दृष्टव्य हैं- मूं, हू, म्हें, अयां, तूं, थे, था, थ, थां, वो, वा, उणी, जाणी, कुंण, कणी, काईं आदि।

6. मालवी के विशेषण भी विशिष्ट हैं, जैसे- प्रायः हिन्दी के समान। कुछ भिन्न- इक्कोत्तर (71), बहोत्तर (72), तियोत्तर (73), चुम्मोत्तर (74) आदि।
7. मालवी बोली के कुछ क्रिया निम्नलिखित हैं- चळँ, चळाँ, चळो, चळेगा, चळेंगा आदि।
8. इस बोली की कुछ सहायक क्रिया निम्नलिखित हैं- हूँ, हाँ, हे, हो, है आदि।
9. मालवी बोली के कुछ क्रियाविशेषण निम्नलिखित हैं- याँ, अठे, उठे, अइँ, वइँ, तोड़ी, बायर आदि।

बोली नमूना- कोई आदमी के दो छोरा था। : तब ओको बड़ो छोरो खेत में थो। हूँ उठि ने बाप के बाँ जाऊँ और ओको कूंगा।

3.3.1.4 बिहारी हिंदी :

बिहारी हिंदी का विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है। जिसे दो भागों- पूर्वी बिहारी और पश्चिमी बिहारी में विभाजित किया जा सकता है। पूर्वी बिहारी की दो बोलियाँ हैं- मगही और मैथिली। वहीं पश्चिमी बिहारी के अंतर्गत भोजपुरी बोली आती है। जार्ज ग्रियर्सन मगही को मैथिली की एक बोली मानते हैं। जार्ज ग्रियर्सन ने बिहारी बोली का प्रयोग करने वालों की संख्या लगभग 3 करोड़ 70 लाख मानी थी। ग्रियर्सन ने ही 'इस बोली को बिहारी' नाम दिया था। बिहारी हिंदी में मुख्य रूप से भोजपुरी मगही और मैथिली आदि तीन बोलियाँ अंतर्भूत है।

1. भोजपुरी :

भोजपुरी बोली का विकास मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। बिहार के भोजपुर नामक कस्बे के आधार पर इसका नाम भोजपुरी पड़ा। भोजपुर की स्थापना राजा भोज के वंशजों ने की थी। भोजपुरी का नामकर्ता रेमण्ड को माना जाता है। भोजपुरी बोली की मुख्य लिपि नागरी लिपि है, कुछ लोग कैथी लिपि का प्रयोग भी किया करते थे। वहीं बही-खाते के लिए महाजनी लिपि का प्रयोग होता था। जार्ज ग्रियर्सन ने इसके बोलने वालों की संख्या दो करोड़ चार लाख मानी है। 1971 की जनगणना के अनुसार भोजपुरी बोली बोलने वालों की संख्या 14340564 थी। बोलने वालों की दृष्टि यह हिन्दी की सबसे बड़ी बोली है।

अन्य नाम :

भोजपुरी बोली को 'पूरबी' और 'भोजपुरिया' नाम से भी जाना जाता है।

क्षेत्र :

भोजपुरी बोली बिहार के भोजपुर, शाहाबाद, सारन, छपरा, चम्पारण, राँची, जशपुर, पलामू का कुछ भाग, मुजफ्फरपुर का कुछ भाग तथा उत्तर प्रदेश के वाराणसी, गाजीपुर, बलिया, जौनपुर, मिर्जापुर, गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़ आदि जिलों में बोली जाती है। भारत से बाहर मारिशस, सूरीनाम, फिजी, वेस्टइंडीज आदि देशों में भोजपुरी बोलने वालो की संख्या बहुत बड़ी है।

साहित्य :

भोजपुरी में मुख्य रूप से लोक साहित्य ही मिलता है। कबीरदास, राहुल सांकृत्यायन, गोरख पाण्डेय, चंचरीक, धरमदास, शिव नारायण, लक्ष्मी सखी आदि उल्लेखनीय हैं। भिखारी ठाकुर का विदेशिया नृत्य नाटक भोजपुरी बहुत लोकप्रिय है। भिखारी ठाकुर को भोजपुरी का सेक्सपियर भी माना जाता है।

विशेषताएँ :

भोजपुरी बोली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. भोजपुरी में 'ड्' का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से अन्य व्यंजनों के समान होता है, जैसे– टाड् (पैर), कड्ना (कंगना) अड्या (अंगिया) आदि।
2. भोजपुरी बोली में महाप्राणीकरण का प्रयोग अधिक होता है, जैसे– 'पेड़' की जगह 'फेड़', 'सब' की जगह 'सभ', 'ठंडा' की जगह 'ठंढा' आदि।
3. भोजपुरी बोली में विपर्यय की प्रविति भी मिलती है, जैसे– 'लखनऊ' की जगह 'नखलऊ', 'नाटक' की जगह 'नकटा' आदि।
4. भोजपुरी बोली के कुछ ध्वनि परिवर्तन निम्नलिखित हैं–

   ल > रा– फल > फर, गला > गर

   न > ल– नोटिस > लोटिस, नम्बरदार > लम्बरदार

   श, स > च– शाबाश > चाबस
5. भोजपुरी बोली में संज्ञा के तीन रूप मिलते हैं, जैसे–

   अहिर, अहिरा, अहिरवा

   चमार, चमरा, चमरवा

   सोनार, सोनरा, सोनरवा
6. भोजपुरी में स्त्री वाचक शब्द बनाने के लिए ई, नी, आनी और इया प्रत्यय का प्रयोग होता है, जैसे– लइकी, महटरनी, द्यौरानी, डिबिया आदि।
7. भोजपुरी में बहुवचन बनाने के लिए– अन्, न्ह, अन्ह प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है, जैसे– घोड़न्, घोड़न्ह, घोडिन्ह आदि।
8. भोजपुरी में सर्वनाम के रूप विशिष्ट हैं, जैसे– मे, मय, हमनी का, हमहन, तें, तै, तोहारकें, ऊ, हुन्हि, ऊलोगनक, ओकरन से, केहू, कुछुवौ, जेके आदि।
9. भोजपुरी बोली के विशेषण भी विशिष्ट हैं, जैसे– बड़ा > बड़का, बड़की, लाल > ललका, काला > करिया, राम (1), दू, चँवतिस, अरतिस, ओन्तालिस, सावा, अढाइ, पहुँचा, झुट्ठा आदि।

10. भोजपुरी बोली की कुछ क्रिया निम्नलिखित हैं- चलल, चलली, चलले, चललेह, चललनि, चललसि, चललह आदि।
11. भोजपुरी बोली की कुछ सहायक क्रियाएं निम्नलिखित हैं- हैं, हईं, हवीं, हवों, हवे, हवस, हसन, हहस आदि।
12. भोजपुरी बोली के विशिष्ट क्रिया विशेषण निम्नलिखित हैं- इँहाँ, एठन, ठे, उँहाँ, उँहवाँ, ऊठाँ, जाहाँ, तेठन, अँव, एहबेरा, आजु, काल, काल्ह, परसों, परों, परौं आदि।

बोली नमूना– एक आदमी ये दू बेटा रहे। : तब ओकर बड़का भाई खेत मे रहे। हम उठि के अपना बाप किहा जाईला आ कहब।

2. **मगही :**

मगही बिहारी हिंदी की महत्वपूर्ण बोली है। यह बोली पूर्वी बिहारी के अंतर्गत आती है। मगही बोली की लिपि मुख्य रूप से कैथी तथा नागरी है। पूर्वी मगही कहीं-कहीं बंगला तथा उडिया लिपि में भी लिखी जाती है। मगही बोलने वालों की संख्या 1971 की जनगणना के अनुसार 6638495 है।

अन्य नाम :

मगही बोली को 'मागधी' भी कहा जाता है। वस्तुतः 'मगही' शब्द 'मागधी' का ही विकसित रूप है।

क्षेत्र :

मगही बोली पटना, हजारीबाग, मुंगेर, पालामाऊ, भागलपुर, सारन और राँची जिलों के कुछ भागों में बोली जाती है। मगही का आदर्श रूप 'पटना' और 'गया' जिले में मिलता है, प्रमुख केंद्र भी यही है।

साहित्य :

मगही में लोक साहित्य पर्याप्त है। मगही में मनभावन, सरस लोकगीतों की भरमार है। मगही बोली के लोक साहित्य में 'गोपी चन्द' तथा 'लोरिक' प्रसिद्ध हैं। बाबा मोहनदास, बाबा हेमनाथ, जयनाथपति मगही के मुख्य कवि है।

विशेषताएँ :

मगही बोली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. मगही की प्रमुख विशेषता है- इसकी विपर्यक प्रवृत्ति, जैसे- बतख़ > बकत, नज़दीक > नगीच
2. मगही बोली में महाप्राणीकरण की प्रवृत्ति मिलती है, जैसे- पेड़ > फेड़, पुनः > फेन
3. मगही में अकारण अनुनासिकता पाया जाता है, जैसे- हाथ > हाँथ, सड़क > सँड़क
4. मगही बोली के कुछ ध्वनि परिवर्तन निम्नलिखित हैं-

   श, ष > स- शैतान > सैतान, देश > देस

ल > र- मछली > मछरी, कलेजा > करेजा

5. मगही के कुछ स्त्रीलिंग प्रत्यय विशिष्ट हैं, जैसे- ई (घोरी), इया (बुढ़िया) आइन (ललाइन) ऐनी (पंडितैनी) आदि।
6. मगही बोली में प्रयुक्त कुछ सर्वनाम दृष्टव्य हैं- मोरा, हमरा, हमनी, हमरनी, तूँ, तों, तोहनी, ऊ, ओकरा, उन्हकरा, ई, एह, इन्हकनी, केकरोके, कौनोंलेल, तौन, तऊन, के, को आदि।
7. विशेषण भी इसकी विशिष्टता को रेखांकित करते हैं- एगो, दू, पान (5), छो, पछन्तर, सव (100) कड़ोर, दोसर, तेसर, चौठ, पउआ, तेहाई, जइसन, तइसन आदि।
8. मगही बोली की कुछ क्रिया निम्नलिखित हैं- चलत, चलित, चलल, चललमेल, चलब, चले बला, चयानिहारा आदि।
9. मगही की कुछ सहायक क्रियाएँ निम्नलिखित हैं- ही, हिकूँ, हकिन, हनिन, हहो, हहू, हदुन, हलूँ, हली, ही, हिथो आदि।
10. मगही बोली के कुछ विशिष्ट क्रिया विशेषण निम्नलिखित हैं- ईठयाँ, हियाँ, हुआँ, जेठवाँ, जेतह, जरवनी (जब) ओखनी, तखनी (तब), होहर (उधर), जेन्ने, जेन्दे (जिधर) आदि।

बोली नमूना- एक आदमी के दुगो बेटा हलथिन। : अब ओकर बड़का बेटवा बाघ में हलै। हम उठ के अपने बाप हीं जाही अउ उनका से कहब।

3. **मैथिली :**

मैथिली 'मिथिला' की भाषा है। मैथिली नामकरण प्रयोग प्रदेश के आधार पर किया गया है। मैथिली शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1801 ई. में कोलबुक ने किया था। इससे पहले इसे 'देसिल बअना' (विद्यापति) अथवा तिरहुतिया कहा जाता था। मैथिली बोली सामान्यतः नागरी लिपि में लिखी जाती है, परन्तु मैथिल ब्राह्मण इसे 'मैथिली लिपि' में लिखते हैं। कहीं-कहीं कैथी लिपि का प्रयोग भी होता रहा है। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 10262357 थी।

अन्य नाम :

मैथिली बोली का अन्य प्रमुख नाम देसिल बअना और तिरहुतिया है।

क्षेत्र :

मैथिली बोली का प्रयोग पूर्वी चम्पारण, मुजफ्फरपुर, उत्तरी मुंगेर, उत्तरी भागलपुर, दरभंगा, मधुबनी, सीतामढ़ी, वैशाली, समस्तीपुर, पूर्णिया का कुछ भाग तथा नेपाल के रौताहट, सरलारी, सप्तरी, मोहतरी और मोरंग आदि जिलों में किया जाता है। इसका केन्द्र दरभंगा जिला है।

साहित्य :

मैथिली बोली का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ ज्योतिरीश्वर ठाकुर का 'वर्ण रत्नाकर' है। विद्यापति, गोविंददास, रणजीत, उमापति, महीपति, हर्षनाथ आदि इस बोली के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं। विद्यापति के

गीत मिथिला के घर-घर गाए जाते हैं। मैथिली संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान पाने वाली एक मात्र बोली है।

विशेषताएँ :

मैथिली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. मैथिली बोली की कुछ ध्वनि परिवर्तन निम्नलिखित हैं-

   ल > न- लवण > नून

   न > ल- नालिश > लालिस, नोट > लोट।

2. मैथिली में घोषीकरण और अघोषीकरण दोनों की प्रवृति पाई जाती है, जैसे-

   घोषीकरण- डॉक्टर > डाकडर, एकादश > एगारह

   अघोषीकरण- मेज़ > मेच, कमीज > कमीच।

3. मैथिली बोली में महाप्राण ध्वनियों का प्रयोग होता है, जैसे- जर्जर > झाँझर, वेष > बेख।
4. मैथिली में संज्ञा के रूप तीन या चार तरह से चलते है, जैसे-

   घर- घरवा- घरउआ, घोड़- घोड़ा- घोड़वा- घोडउवा।

5. मैथिली बोली में स्त्रीलिंग बनाने के लिए ई (नेनी- लड़की), इया (नेनिया), ईवा (घोड़ीवा) आइनि (मोदिआइनि) आदि प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है।
6. मैथिली के सर्वनाम भी विशिष्ट हैं, जैसे- हाय, हँओ, हमनी, मोरें, मोय, तोंह, तुहुँ, तोहर, ओहि, उहे, तनि, तन्हि, ई, ए, केऊ, कोय, कुछु, किछु आदि।
7. मैथिली बोली में- मीठ-मीठा-मिठका, दू, दुइ, चउदह, अठतिस, चउवन, बिरानवे (92), सै (१००), अउबल (अव्वल), दोसर, तेसर आदि विशेषण प्रयुक्त होते हैं।
8. मैथिली की क्रिया भी विशिष्ट हैं, जैसे- चल, चलै, चलअ, चलिहे, चलिअह, चलू, चली आदि।
9. मैथिली बोली में निम्नलिखित सहायक क्रिया का प्रयोग होता है- छिअहु, थिकहुँ, थिकिऔ, छथून्हि, छथून, छी, छिऐ, छलिअहु आदि।
10. मैथिली बोली में निम्न क्रियाविशेषण प्रयुक्त होते हैं- एतय, बैठियाँ, जते, जत्ते, एखन, एहिया, तखन, तेखनि आदि।

बोली नमूना– कोनो मनुख्य के दुई बेटा रहैन्हि। : तखन ओकर जेठ बेटा खेत मे छलैक। हम उठि क अपना बाप क लग जाइ छी अउर हुन सँ कहबैन्हि।

3.3.1.5 पहाड़ी हिंदी :

खस अपभ्रंश से पहाड़ी भाषाएँ निकली हैं। इनकी लिपि देवनागरी है। हिमालय के तराई में बोली जाती है। पूर्व में नेपाल से लेकर पश्चिम में भद्रवाह तक की भाषाओँ को जार्ज ग्रियर्सन ने पहाड़ी हिन्दी माना है। उन्होंने पहाड़ी हिन्दी को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है– पूर्वी पहाड़ी, पश्चिमी पहाड़ी और मध्य पहाड़ी। पूर्वी पहाड़ी की प्रधान बोली नेपाली है, इसे गोरखाली अथवा खसकुश भी कहते हैं। यह नेपाल की राजभाषा है। 1961 की जनगणना में भी 'नेपाली' को पूर्वी पहाड़ी के अन्तर्गत ही माना गया है। वर्तमान पहाड़ी भाषाएँ राजस्थानी से बहुत मिलती हैं। विशेषतया मध्य पहाड़ी का संबंध जयपुरी से और पश्चिमी पहाड़ी का संबंध मारवाड़ी से अधिक है। परंतु पहाड़ी हिन्दी में मुख्य रूप से पश्चिमी पहाड़ी और मध्य पहाड़ी को ही माना जाता है। मध्य पहाड़ी के अंतर्गत कुमायूँनी और गढ़वाली बोलियाँ आती हैं।

इन दोनों बोलियों में भी साहित्य विशेष नहीं है। यहाँ के लोगों ने साहित्यिक व्यवहार के लिए हिंदी भाषा को ही अपना लिया है। ये दोनों बोलियां देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं।

इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है।

1. **कुमायूँनी :**

माध्यमिक पहाड़ी की प्रमुख बोली कुमायूँनी का क्षेत्र 'कुमायूँ' है। इस बोली का यह नाम कुमायूँ क्षेत्र के आधार पर ही पड़ा है। 'कुमायूँ' शब्द का संबंध संस्कृत 'कूर्माचल' या 'कूर्मांचल' से है। भाषा की दृष्टि से यह चारों ओर गढ़वाली, तिब्बती, नेपाली और पश्चिमी हिन्दी से घिरी है। कुमायूँनी बोली पर भोट और राजस्थानी बोलियों का काफी प्रभाव है। राजस्थानी का तो इस पर इतना अधिक प्रभाव है कि यह उसका ही रूप–सा ज्ञात होती है। कुमायूँनी के लिए नागरी लिपि का प्रयोग होता है। कुमायूँनी बोलने वालों की संख्या जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार 436788 थी।

क्षेत्र :

इस बोली का प्रयोग कुमायूँ क्षेत्र के नैनीताल, अलमोड़ा, पिथौरागढ़, चमोली तथा उत्तर–काशी जिलों में किया जाता है।

साहित्य :

कुमायूँनी में साहित्य–रचना पिछले दो–ढाई सौ वर्षों में ही हुई है। गुमानी पंत, सिवदत्त सत्ती और कृष्ण दत्त पाण्डे आदि इस बोली के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं।

विशेषताएँ :

कुमायूँनी की विशेषताएँ इस प्रकार हैं

1. कुमायूँनी बोली की कुछ ध्वनि परिवर्तन निम्नलिखित हैं–

   न > ण– बहिन > बैणी, किसान > किसाण

   ल > ळ– बादल > बादळ, काला > काळो।

2. कुमायूँनी में अकारण अनुनासिकता पाया जाता है, जैसे– चावळ > चाळँ, जौ > जौं।

3. कुमायूँनी बोली में के आदि में 'ह' का और अंत में 'आ' का आगम पाया जाता है, जैसे– आदि में 'ह' का आगम– और > हौर, हौरेअंत

   'आ' का आगम– सात > शाता; बीसा, तीशा।

4. कुमायूँनी बोली में संज्ञा के निम्न रूप मिलते हैं, जैसे– बल्द, बल्दन, बल्दों, चेलो (लड़का), च्याला आदि।

5. कुमायूँनी में प्रयुक्त कुछ सर्वनाम दृष्टव्य हैं– में, मैं, हेम लोग, तू, तु, त्वीले, त्वैले, वी, उ, ऊँ, येकणी, एकणी, क्वे, कै, कैं, कौ, कूण आदि।

6. इस बोली के विशेषण भी विशिष्ट हैं, जैसे– एका, द्वि, द्विया, बारा, तेरा, चौदा, शोल, त्याइस, पैलु (पहला), दुसरु, तिशौरु आदि।

7. कुमायूँनी बोली की कुछ क्रिया निम्नलिखित हैं– मारन, मारनू, मारनो, मारी, मारियाछन, मारलो आदि।

8. इस बोली की मुख्य पहचान इसकी सहायक क्रियाएँ हैं– छूँ, छुँ, छै, छे, छो, छा, छियूँ, छ्यूँ, छिये, छियो आदि।

9. कुमायूँनी में निम्न क्रियाविशेषण प्रयुक्त होते हैं– इतकै, याँ, वाँ, जितकै, भोल (कल), भोअ (आने वाला कल), पोहूँ (परसों) कथली (कभी), तल्ली (नीचे) मल्ली (ऊपर) आदि।

2. **गढ़वाली :**

माध्यमिक पहाड़ी की दूसरी महत्वपूर्ण बोली गढ़वाली है, इसका क्षेत्र प्रमुख रूप से गढ़वाल प्रदेश है। गढ़वाल की भाषा होने के कारण ही इसे 'गढ़वाली' कहा जाता है। पहले का केदारखण्ड या उत्तराखण्ड बहुत से गढ़ों के कारण मध्ययुग में 'गढ़वाल' कहा जाता था। गढ़वाली का परिनिष्ठित रूप 'श्रीनगरिया' है। गढ़वाली बोली की बहुत सी उपबोलियाँ भी हैं। जार्ज ग्रियर्सन के अनुसार गढ़वाली बोली बोलने वालों की संख्या 670824 थी। गढ़वाली भी नागरी लिपि में लिखी जाती है।

क्षेत्र :

गढ़वाली बोली का प्रयोग–क्षेत्र गढ़वाल और इसके आसपास का प्रदेश, टेहरी, अलमोड़ा के अतिरिक्त देहरादून (उत्तरी भाग), सहारनपुर (उत्तरी भाग), बिजनौर (उत्तरी भाग) और मुरादाबाद (उत्तरी भाग) जिलों के उत्तरी भाग तक विस्तृत है।

साहित्य :

गढ़वाली में साहित्य लगभग नहीं है। किन्तु लोक साहित्य की दृष्टि से यह पर्याप्त संपन्न है।

विशेषताएँ :

गढ़वाली की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

1. गढ़वाली बोली के कुछ ध्वनि परिवर्तन निम्नलिखित हैं–

   क्ष > क– ऋक्ष > रिक्

   त्स, प्स > छ– मत्स्य > माछो, अप्सरी > आछरी

   श > छ– शनिश्चर > छंछर

   ल > ळ– पाताल > पयाळ

2. गढ़वाली बोली में मगफ का आगम मिलता है, जैसे–

   मगफ का आगम– संसार > संगसार

   महफ का लोप– चान्स > चांगस

3. गढ़वाली में संज्ञा के निम्न रूप मिलते हैं, जैसे– नौना (लड़का), नौनो, नौनु, नौनौंन्, नौनूँन, नौनौंक, नौनूँक आदि।

4. गढ़वाली बोली में प्रयुक्त कुछ सर्वनाम दृष्टव्य हैं– मैं, मइँ, मैंक, मैंकु, मेरो, मेरु, हमतें, हमुंतें, हमुमान, हमुसि, हमारु, तुइन, वु, ओ, एइ, सणि, क्की, कुइ आदि।

5. इस बोली की कुछ क्रिया निम्नलिखित हैं– चलदूँ, चलदू, चलणे, चलणै, चलण्यूँ, चल्यूँ, चल्यान आदि।

6. गढ़वाली बोली की कुछ सहायक क्रियाएँ निम्नलिखित हैं– छौं, छऊँ, छवाऊँ, छौं, छवाँ, छया, थौ, थो, थयो आदि।

7. गढ़वाली में निम्न क्रियाविशेषण प्रयुक्त होते हैं– अब, अबेर, जदि, जैअ, वख, वत्थ, यथैं, वथैं, जथैं आदि।

3.4 सारांश :

1) हिंदी भाषा का जन्म अपभ्रंश से हुआ है। इसीलिए हिंदी की विभिन्न उपभाषाओं, बोलियों का संबंध अपभ्रंश की विविध रूपों से दिखाई देता है।

2) हिंदी की 18 बोलियों और उनकी असंख्य उपबोलियों के बीच एक सामंजस्य विद्यमान है, जिससे एक उपभाषा के भीतर के बोली एवं उपबोलियों के जानकार सहजता से अन्य बोलियों को समझ सकते हैं।

3) हिंदी की विभिन्न उपभाषाओं और बोलियों का विकास भिन्न-भिन्न अपभ्रंश से भले ही हुआ हो लेकिन उनमें स्वाभाविक संवाद्य स्थिति विद्यमान है।

4) बोलियों की दृष्टि से हिंदी संपन्न एवं समृद्ध भाषा है। बोलने वालों की संख्या के बारे में विद्वानों में मतभेद होने के बावजूद हिंदी की व्यापकता और सर्वसमावेशकता अक्षुण्ण बनी रहती है।

3.5 स्व-अध्ययन के लिए प्रश्न :

i) निम्नलिखित वाक्यों के नीचे दिए गए उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) हिंदी की मुख्य ..... उपभाषाएँ हैं।
   अ) 6 ब) 5 क) 3 ड) 4

2) हिंदी की पाँच उपभाषाओं में..... बोलियाँ है।
   अ) 12 ब) 15 क) 18 ड) 14

3) हिंदी की बालियों में सर्वाधिक बोली जाने वाली ..... बोली है।
   अ) भोजपुरी ब) अवधी क) ब्रज ड) बुंदेली

4) पश्चिमी हिंदी से ..... बोलियों का विकास हुआ है।
   अ) 9 ब) 6 क) 3 ड) 4

5) खड़ी बोली हिंदी का एक नाम..... है।
   अ) कौरवी ब) पहाडी क) दक्खिनी ड) तिरहुतिया

6) पूर्वी हिंदी की प्रमुख बोली ..... है।
   अ) भोजपुरी ब) मेवाती क) अवधी ड) बुंदेली

7) पूर्वी हिंदी का विकास ..... अपभ्रंश से हुआ है।
   अ) शौरसैनी ब) अर्धमागधी क) मागधी ड) खस

8) मागधी अपभ्रंश से ..... हिंदी का विकास हुआ है।
   अ) बिहारी ब) पहाडी क) अवधी ड) मेवाती

9) हरियाणवी बोली को ..... नाम से भी जाना जाता है।
   अ) कौरवी ब) दक्खिनी क) बॉगरू ड) तिरहुतिया

10) खड़ी बोली हिंदी की लिपी ..... है।
   अ) महाजनी ब) देवनागरी क) गुरूमुखी ड) रोमन

11) ऋग्वेद में ब्रज शब्द का प्रयोग ..... के अर्थ में हुआ है।
   अ) चारागाह ब) मैदान क) खेती ड) नदी

12) .....बोली की 'ईशुरी के फाग' बहुत प्रसिद्ध रचना है।

अ) ब्रज ब) बुंदेली क) अवधी ड) जयपुरी

13) अवधि को ही .....बोली भी कहा जाता है।

अ) कौरवी ब) बॉगरू क) कोशली ड) ढूढाडी

14) छत्तीसगढ़ी बोली का मुख्य क्षेत्र ..... है।

अ) दिल्ली ब) हरियाणा क) राजस्थान ड) छत्तीसगढ़

15) ..... मारवाड़ी बोली की साहित्यिक शैली है।

अ) पिंगल ब) डिंगल क) ब्रज ड) रीति

16) राजस्थानी हिंदी की ..... बोलियाँ है।

अ) 3 ब) 2 क) 6 ड) 4

17) ..... बोली को धूंधड़ी नाम से जाना जाता है।

अ) जयपुरी ब) बुंदेली क) खडी ड) कन्नौजी

18) भिखारी ठाकुर को भोजपुरी का ..... माना जाता है।

अ) वड्र्सवर्थ ब) शेक्सपियर क) मैकाले ड) जो ओर्टन

19) .....एकमात्र बोली है जिसे संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान मिला है।

अ) भोजपुरी ब) मैथिली क) अवधी ड) मारवाड़ी

20) पहाड़ी हिंदी की प्रमुख बोली ..... है।

अ) कौरवी ब) निमाड़ी क) कुमायूँनी ड) मालवी

ii) उचित मिलान कीजिए।

1.	पूर्वी हिंदी	अ) मारवाड़ी
2.	पश्चिमी हिंदी	ब) मैथिली
3.	पहाड़ी हिंदी	क) अवधी
4.	बिहारी हिंदी	ड) खड़ी बोली
5.	राजस्थानी हिंदी	च) आवंती
6.	हरियाणी	छ) बांगरू
7.	मालवी	ज) नागभाषा
8.	ब्रजभाषा	झ) बघेलखंड़ी
9.	बघेली	प) बालाघाट

10. छत्तीसगढ़ी फ) गढ़वाली

iii) सही गलत प्रश्न।

1. भोजपूरी बिहारी हिंदी की बोली भाषा है।
2. मेवाती पूर्वी हिंदी की बोली भाषा है।
3. मारवाड़ी राजस्थानी हिंदी की बोली भाषा है।
4. अवधी पूर्वी हिंदी की बोली भाषा है
5. हिंदी की पाँच उपभाषाएँ है।
6. कर्नाटक हिंदी भाषी क्षेत्र है।
7. खड़ी बोली बिहारी हिंदी की बोली भाषा है।
8. गढ़वाली पहाड़ी हिंदी की बोली भाषा है।
9. ब्रजभाषा को नागभाषा के नाम से जाना जाता है।
10. मालवी भाषा को बालाघाट के नाम से जाना जाता है।

3.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

- ऱ्हस्व – वह वर्णन जिसका उच्चारण संक्षिप्त होता है। जैसे – अ, इ, उ
- दीर्घ – वह वर्ण जिसका उच्चारण लंबा या खींचा हुआ होता है। जैसे अ का आ, इ का ई, उ का ऊ
- अल्पप्राण – व्यंजन वर्ग का पहला तीसरा और पांचवा वर्ण, जिसमें 'ह'कार का अभाव होता है।
- महाप्राण – व्यंजन वर्ग का दूसरा और चौथा वर्ण, जिसमें 'ह'कार समाहित होता है।
- कृदंत – 1. कृत (करनेवाला) प्रत्यय के जुड़ने से बनने वाले।
  शब्द, जैसे –पाचक, निंदक, तैराक, बंध।
- अनुनासिक – उच्चारण में नासिक विवर के प्रयोग की अधिकता वाली ध्वनि, अनुस्वार एवं चंद्रबिंदी का अधिक प्रयोग। जैसे पाँच – पाँच, चावल–चांवल,

3.7 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

उत्तर - (**i**) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर।

1) 5	2) 18	3) भोजपुरी
4) 6	5) कौरवी	6) अवधी
7) अर्धमागधी	8) बिहारी	9) बॉगरू
10) देवनागरी	11) चारागाह	12) बुंदेली

13) कोशली 14) छत्तीसगढ़ी 15) डिंगल

16) 4 17) जयपुरी 18) शेक्सपियर

19) मैथिली 20) कुमायूँनी

उत्तर - (**ii**) उचित मिलान।

1. (क) अवधी 2. (ड) खड़ी बोली 3. (फ) गढ़वाली 4. (ब) मैथिली

5. (अ) मारवाड़ी 6. (छ) बांगरू 7. (च) मालवी 8. (ज) नागभाषा

9. (झ) बघेली खंडी

10. (प) बालाघाट

उत्तर - (**iii**) सही - गलत।

1. सही 2. गलत 3. सही 4. सही

5. सही 6. गलत 7. गलत 8. सही

9. सही 10. गलत

3.8 स्वाध्याय :

अ) निम्नलिखित दीर्घोत्तरी प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1) खड़ी बोली हिंदी का परिचय दीजिए।
2) ब्रज बोली के क्षेत्र और विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3) पूर्वी हिंदी की बोलियों का परिचय दीजिए।
4) भोजपुरी बोली की स्थिति को स्पष्ट कीजिए।
5) पहाड़ी हिंदी की बोलियों का परिचय दीजिए।

ब) निम्नलिखित लघुत्तरी प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1) हरियाणवी। 2) अवधी। 3) कन्नौजी। 4) बुंदेली।

5) मारवाड़ी। 6) जयपुरी। 7) बघेली। 8) मगही।

9) मैथिली। 10) छत्तीसगढ़ी। 11) मालवी। 12) मेवाती।

13) कुमायूँनी। 14) गढ़वाली।

3.9 क्षेत्रीय कार्य :

1) अपने क्षेत्र की बोलियों का अध्ययन कीजिए।
2) अपने क्षेत्र की बोलियों के उच्चारण विशेषता पर आलेख लिखिए।

3) अपने क्षेत्र की बोलियों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

4) अपने जिले की मराठी की बोलियों का अध्ययन कीजिए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन हेतु संदर्भ :

1) हिंदी भाषा- डॉ. हरदेव बाहरी

2) भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा- भोलानाथ तिवारी

3) भाषा विज्ञान - राजमणि शर्मा

4) भाषा और भाषा विज्ञान- गरिमा श्रीवास्तव

5) बोलियाँ एवं बोली कोश - डॉ. दीनानाथ फूलवाडकर

6) https://hindisarang.com/pshcimi-hindi-ki-boliyaan/

❑❑❑

इकाई–4

देवनागरी लिपी की विशेषताएँ, सीमाएँ, देवनागरी लिपी की वैज्ञानिकता और मानकीकरण हिंदी में कम्प्यूटर की सुविधाएँ – मशीनी अनुवाद, मेल आयडी का पंजीकरण (विधि), ई–मेल प्रेषण एवं प्राप्ति, विषय की जानकारी ढूँढना (सर्चिंग), इंडिक इनपुट सॉफ्टवेयर परिचय

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय विवेचन

4.3.1 देवनागरी लिपी

4.3.1.1 विशेषताएँ

4.3.1.2 सीमाएँ

4.3.1.3 देवनागरी लिपी की वैज्ञानिकता

4.3.1.4 मानकीकरण

4.3.2 हिंदी में कम्प्यूटर की सुविधाएँ

4.3.2.1 मशीनी अनुवाद

4.3.2.2 मेल आईडी का पंजीकरण (विधि)

4.3.2.3 ई–मेल प्रेषण एवं प्राप्ति

4.3.2.4 विषय की जानकारी ढूँढना (सर्चिंग)

4.3.2.5 इंडिक इनपुट सॉफ्टवेयर परिचय

4.4 सारांश

4.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.7 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए।

4.1 उद्देश्य :

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. देवनागरी लिपी की विशेषताएँ समझ सकेंगे।
2. देवनागरी लिपी की सीमाएँ, वैज्ञानिकता और मानकीकरण से परिचित होंगे।
3. हिंदी में संगणक की सुविधाओं से अवगत होंगे।
4. मशीनी अनुवाद से परिचित होंगे।
5. मेल आयडी पंजीकरण और ई–मेल प्रेषण एवं प्राप्ति की प्रक्रिया से अवगत होंगे।
6. सर्चिंग एवं इंडिक इनपुट सॉफ्टवेयर से परिचित होंगे।

4.2 प्रस्तावना :

भारतीय भाषाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भारत की प्रायः सभी प्रमुख भाषाओं की लिपीयाँ ब्राह्मी लिपी से ही उद्भूत है। देवनागरी ब्राह्मी लिपी की सबसे व्यापक, विकसित और वैज्ञानिक लिपी है, जो भारतीय भाषाओं की सहोदरी लिपी होने के कारण इन सबके बीच स्वाभाविक रूप से संपर्क लिपी का कार्य करती है। देवनागरी लिपी इन भाषाओं के बीच सेतु का कार्य करती है। इसीलिए हमारे आधुनिक युग के अग्रणी नेताओं, विचारकों और मनीषियों ने राष्ट्रीय एकता के लिए देवनागरी के प्रयोग पर बल दिया है। उनका मानना है कि भावात्मक एकता की दृष्टि से भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपी का होना आवश्यक है और यह लिपी केवल देवनागरी ही हो सकती है। केशव वामन पेठे, राजा राममोहन राय, शारदाचरण मित्र, महर्षि दयानंद सरस्वती, कृष्णास्वामी अय्यर, महात्मा गांधी, आचार्य विनोबा भावे आदि ने भारत में भाषायी एकता के लिए देवनागरी लिपी की आवश्यकता पर महत्त्वपूर्ण पहल की है।

हिंदी भाषा के तकनीकी विकास में कम्प्युटर का सबसे बड़ा योगदान रहा है। वर्तमान समय में कम्प्युटर हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग ही नहीं अपितु प्रमुख आवश्यकता बन गया है। तकनीकी विकास ने हमारी जीवन शैली और समाज के ढाँचे को भी प्रभावित किया है और भाषा भी इससे अछूती नहीं है। आज सूचना प्रौद्योगिकी के इस युग में हिंदी का महत्व पहले से अधिक बढ़ चुका है और यह महज राजकाज की संवैधानिक बाध्यता से निकलकर व्यवसायिक भाषा के रूप में उभर कर सामने आयी है। वर्तमान समय में किसी भी विषयवस्तु की जानकारी प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन कम्प्यूटर एक माध्यम के रूप में विकसित हुआ है। इंटरनेट के जाल ने हर तरह की जानकारी को अपने अंदर समेट एक ऐसा आवरण विकसित किया है जिसमें हर विषय, सूचना संप्रेषण और जानकारी का समावेश है। मुख्यतः कम्प्यूटर में अंग्रेजी भाषा का बोलबाला रहा है तथा बहुतायत सूचनाएँ अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध है किंतु इन सुचनाओं के जाल में हिंदी भाषा की महत्ता को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। एक तरफ जहाँ विश्व के अन्य राष्ट्रों ने इंटरनेट के इस जाल में सूचनाओं के तंत्र में अपनी भाषा को नगण्य नहीं होने दिया वहीं भारत ने भी हिंदी भाषा के प्रचार–

प्रसार के लिए सूचना के इस जाल यानि कम्प्यूटर और इंटरनेट को आधार बनाकर अपनी ठोस उपस्थिति दर्ज करवाई है। सरकार ने विभिन्न योजनाओं एवं प्रयासों के माध्यम से हिंदी को एक वैश्विक भाषा का दर्जा देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। इस इकाई में देवनागरी लिपी के अंतर्गत देवनागरी लिपी की विशेषताएँ, सीमाएँ, वैज्ञानिकता और मानकीकरण, हिंदी में कम्प्यूटर सुविधाओं के अंतर्गत मशीनी अनुवाद, मेल आयडी का पंजीकरण (विधि), ई-मेल प्रेषण एवं प्राप्ति, विषय की जानकारी ढूँढना (सर्चिंग), इंडिक इनपुट सॉफ्टवेयर परिचय आदि की जानकारी प्राप्त करेंगे।

4.3 विषय – विवेचन :

4.3.1 देवनागरी लिपी:

भारतीय सभ्यता के विकास में देवनागरी लिपी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाषा की उत्पत्ति की तरह ही लिपी की उत्पत्ति के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। लिपी भाषा और विचारों की अभिव्यक्ति का मूर्त माध्यम है। यह विचारों के आदान-प्रदान को सक्षम बनाती है। लिपी ने भाषा को देश और काल के बंधन से मुक्त कर दिया और भाषा की क्षणस्थायिता को चिरस्थायिता में परिणत किया है। मूलतः हिंदी की लिपी देवनागरी लिपी कहलाती है। इसका विकास ब्राह्मी लिपी से हुआ है। देवनागरी का वर्तमान रूप ब्राह्मी का विकसित रूप है। समय-समय पर देवनागरी लिपी में नयी-नयी ध्वनियाँ और उनके लिए नये-नये चिह्न बना लिए गए। यही कारण है कि आज हमारी वर्णमाला एवं लिपी संसार की सबसे विकसित वर्णमाला और लिपी मानी जाती है। स्पष्टता और व्यंजकता में अन्य दूसरी कोई लिपी इसकी तुलना नहीं कर सकती। संस्कृत, हिंदी, मराठी और नेपाली भाषाएँ इसी लिपी में लिखी जाती है। बंगला और गुजराती लिपीयाँ इससे काफी मिलती-जुलती है। गुरूमुखी, मुंडा, कैथी आदि लिपीयाँ भी देवनागरी से ही विकसित हुई है।

4.3.1.1 देवनागरी लिपी की विशेषताएँ :

भारत के संविधान में जब से हिंदी को राजभाषा घोषित किया है तभी से देवनागरी को राष्ट्रीय लिपी का महत्त्व प्रदान हुआ है। देवनागरी लिपी विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक, पद्धतिपरक और अधिकतम ध्वनियों को रूपांकित करने वाली लिपी है। देवनागरी के वर्ण अधिकतर एक निश्चित चौकोर आकृति के होते हैं। संविधान निर्माताओं ने इसे राजभाषा हिंदी की आधिकारिक लिपी के रूप में स्वीकार किया है। यह लिपी अपने सर्वाधिक गुणों के कारण केवल हिंदी की ही लिपी नहीं बल्कि भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाओं में से संस्कृत, मराठी, नेपाली, बाड़ों, डोगरी तथा मैथिली भाषाओं की भी लिपी है। कोंकणी तथा संथाली भाषाएँ भी इसे स्वीकार कर रही है। यही इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। लिपीयों के विशेषज्ञ एवं प्रसिद्ध विद्वान राय बहादुर गौरी शंकर हीराचंद्र ओझा देवनागरी लिपी की विशेषताओं के संबंध में लिखते हैं -''हमारी वर्णमाला अदभुत है। जितनी बारीकी के साथ स्वरों का अभ्यास हमारी वर्णमाला को बनाने में किया गया है उतनी बारीकी और वैज्ञानिकता किसी दूसरी वर्णमाला में नहीं। जितनी प्रकार की ध्वनियाँ हैं, सबके लिए अक्षर चाहिए और एक ध्वनि के लिए एक अक्षर होना

चाहिए। यह गुण इस वर्णमाला में ही है और शायद किसी दूसरी वर्णमाला में नहीं है। यह चमत्कार कुछ अनजाने में ही नहीं हो गया। उस विधा का विधिपूर्वक अभ्यास किया गया, तभी वह इतनी परिपूर्ण और सुंदर बन सकी।'' देवनागरी लिपी की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है।

1. लिपी चिह्नों की अधिकता:

विश्व के किसी भी लिपी में इतने लिपी प्रतीक नहीं हैं। देवनागरी लिपी में लगभग प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग लिपी चिह्न हैं। अन्य लिपीयों में एक ध्वनि के लिए दो तीन लिपी चिह्न देखने को मिलते हैं। जैसे अंग्रेजी में ध्वनियाँ 40 के ऊपर हैं किंतु केवल 26 लिपी चिह्नों से काम होता है। उर्दू में भी ख, घ, छ, ठ, ढ, ढ़, थ, ध, फ, भ आदि के लिए लिपी चिह्न नहीं है। इनको व्यक्त करने के लिए उर्दू में 'हे' से काम चलाते हैं। फारसी लिपी में 'स' ध्वनि के लिए 'सीन, स्वाद और से' तीन लिपी चिह्न मिलते हैं। रोमन लिपी में 'क' ध्वनि के लिए 'k, c, ch, q' चार लिपी चिह्नों का प्रयोग होता है। इस दृष्टि से ब्राह्मी से उत्पन्न होने वाली अन्य कई भारतीय भाषाओं में लिपीयों की संख्याओं की कमी नहीं है। निष्कर्षत: लिपी चिह्नों की पर्याप्तता की दृष्टि से देवनागरी, रोमन और उर्दू से अधिक संपन्न है।

2. लिपी चिह्नों के नाम ध्वनि के अनुरूप हो:

देवनागरी लिपी में चिह्नों के द्योतक उसके ध्वनि के अनुरूप ही होते हैं और इनका नाम भी उसी के अनुसार होता है। जैसे - अ, आ, ओ, औ, क, ख आदि। किंतु रोमन लिपी चिह्न नाम में आयी किसी भी ध्वनि का कार्य करती है, जैसे - H - (ए+च) c (क) Y (य) ध्वनि देते हैं। कुछ स्थितियों में तो रोमन वर्ण की द्वितीय ध्वनि का उच्चारण होता है, प्रथम का नहीं, जैसे Lamp में L (एल) का प्रयोग 'ल' ध्वनि के रूप में होता है। प्रथम ध्वनि 'ए' के रूप में नहीं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि रोमन लिपी वर्णात्मक है और देवनागरी ध्वन्यात्मक।

3. स्वरों के लिए स्वतंत्र चिह्न:

देवनागरी में ह्रस्व और दीर्घ स्वरों के लिए अलग-अलग चिह्न उपलब्ध है और रोमन में एक ही (I) अक्षर से 'अ' और 'आ' दो स्वरों को दिखाया जाता है। देवनागरी के स्वरों में अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

4. अन्य लिपीयों से समानता:

भारत के अधिकतर प्रांतों में हिंदी की लिपी ही चलती है। भारत की अधिकतम भाषाओं की लिपीयाँ देवनागरी लिपी से उपजी है। अतः उनकी देवनागरी लिपी से पर्याप्त समानता है। इसी कारण अन्य भाषाओं के लिए देवनागरी लिपी को सीखना सुलभ एवं सुविधाजनक है। देवनागरी लिपी को जानने वाला गुरुमुखी, गुजराती, बंगाली और मराठी आदि लिपीयों को सहजता से सीखता है। संक्षेप में देवनागरी लिपी अपनी इस महत्त्वपूर्ण विशेषता के कारण अधिक परिचित लिपी है।

5. शब्द – संयोजन:

देवनागरी लिपी के अक्षर सुंदर होने के साथ उनके शब्द संयोजन में बहुत सी ध्वनियाँ आंशिक रूप में व्यक्त की जा सकती है। अर्थात् वे बहुत कम स्थान लेती हैं। उदाहरण के लिए रेलवे स्टेशन शब्द को अंग्रेजी भाषा की रोमन लिपी में लिखें तो उसमें चौदह अक्षर लिखे जाते हैं। देवनागरी लिपी को पढ़ने में समय भी कम लगता है तथा पढ़ने में गति भी तीव्र होती है।

6. शब्दों के उच्चारण एवं लेखन में समानता:

हिंदी भाषा का वर्ण विन्यास ध्वन्यात्मक है। देवनागरी लिपी में एक निश्चित ध्वनि के लिए एक निश्चित वर्ण का प्रयोग किया जाता है। रोमन और फारसी लिपीयों में इस प्रकार का कोई निश्चित नियम नहीं है। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में 'सी' और 'के' दोनों 'क' के लिए प्रयुक्त होते हैं। किंतु हिंदी में एक ध्वनि के लिए एक ही वर्ण प्रयुक्त है। मुख्यतः हिंदी भाषा में जो लिखा जाता है वहीं बोला जाता है।

7. वर्णमाला में एकरूपता एवं क्रमबद्धता:

देवनागरी लिपी में शिरोरेखा के कारण एकरूपता दृष्टिगोचर होती है। रोमन लिपी में वर्णों के छोटे बड़े रूप एवं आकार हैं। ऐसी भिन्नता देवनागरी लिपी में नहीं है। वर्णमाला के स्वरों में ह्रस्व एवं दीर्घ स्वर साथ-साथ हैं, जिससे उनका अंतर स्पष्ट हो जाता है। व्यंजनों को भी उच्चारण स्थान की दृष्टि से क वर्ग, च वर्ग, त वर्ग आदि वर्गों में विभाजित किया है। जिससे उनमें क्रमबद्धता एवं एकरूपता परिलक्षित होती है। अतः इसके स्वर और व्यंजनों का वैज्ञानिक विभाजन है। इसमें 16 स्वर तथा 33 व्यंजन और तीन संयुक्त व्यंजन क्ष, त्र और ज्ञ आदि है।

8. मात्राओं में स्पष्टता :

देवनागरी लिपी मात्राओं की दृष्टि से परिपूर्ण है। अन्य लिपीयों की अपेक्षा ह्रस्व एवं दीर्घ मात्राओं में स्पष्टता है। देवनागरी लिपी में स्वरों के स्थान पर उनकी मात्राओं का प्रयोग होता है। यह मात्राएँ व्यंजनों के साथ मिलाकर लिखी जाती हैं। अंग्रेजी की रोमन लिपी में यह अंतर स्पष्ट नहीं होता। जैसे- ए वर्ण 'अ' और 'आ' दोनों के लिए प्रयुक्त होता है।

9. पठनीयता एवं अक्षरों की सुंदरता:

किसी भी लिपी में सुनिश्चित पठनीयता होनी चाहिए। लिपी के लिए अत्यंत आवश्यक गुण होता है कि उसे आसानी से पढ़ा और लिखा जा सके। कलात्मक दृष्टिकोण से देवनागरी लिपी अत्यंत सुंदर एवं आकर्षक है। इसके अक्षर बहुत सुंदर एवं सुडोल हैं। प्रत्येक अक्षर में खड़ी लकीर एवं प्रत्येक शब्द के ऊपर शिरोरेखा इसकी सुंदरता को बढ़ाती है। इस दृष्टि से देवनागरी लिपी अधिक वैज्ञानिक है। उर्दू की तरह नहीं, जिसमें जूता को जोता, जौता आदि कई रूपों में पढ़ने की ग़लती लोग अक्सर करते हैं।

10. वर्णमाला का वैज्ञानिक वर्गीकरण:

देवनागरी लिपी में स्वरों और व्यंजनों को वैज्ञानिक ढंग से क्रमबद्ध किया है। इसमें 14 स्वर और 35 मूल व्यंजन हैं। तीन संयुक्त व्यंजन क्ष, त्र, और ज्ञ है। वर्णों की ऐसी वैज्ञानिक व्यवस्था विश्व की किसी भी भाषा में नहीं है। अतः देवनागरी की वर्णमाला का क्रम वैज्ञानिक है।

11. मूक अक्षरों की अपेक्षा:

देवनागरी लिपी में ऐसे कोई अक्षर नहीं है, जो लेखन में है लेकिन उच्चारित नहीं है। रोमन लिपी में ऐसे कई मूक अक्षर हैं, जिनका उच्चारण नहीं होता। जैसे - 'HONOUR' में 'H' मूक अक्षर है। 'LISTEN' 'T' मूक है। इस तरह ऐसे अनेक शब्द हैं, जो वर्तनी में हैं लेकिन उच्चारण में नहीं। देवनागरी लिपी में ऐसे शब्दों का अभाव है।

12. गत्यात्मक तथा व्यवहारोपयोगी :

देवनागरी लिपी में स्वरों के स्थान पर उनकी मात्राओं का प्रयोग किया जाता है। जिससे शब्दों का आकार अपेक्षाकृत छोटा हो जाता है। इस प्रकार कम समय में गति के साथ शब्द लिखने की सुविधा इसे गत्यात्मक तथा व्यवहारोपयोगी बनाती है।

13. लेखन में सुविधा :

देवनागरी लिपी लेखन की दृष्टि से अत्यंत सुविधाजनक है। जिसे बाईं से दाईं की ओर लिखा जाता है। इस प्रकार लिखने में हाथ के संचालन में सुविधा होती है, जो लेखन में सहायता प्रदान करती है।

14. अनुवाद की सहजता :

देवनागरी लिपी समृद्ध लिपी मानी जाती है। इसमें अन्य भाषाओं की अपेक्षा साहित्य का अनुवाद अत्यधिक हुआ है। देवनागरी लिपी के शब्द भण्डार की विशालता ने अनुवाद के कार्य को सुगम किया है।

15. लिप्यंतरण और प्रतिलेखन :

लिप्यंतरण और प्रतिलेखन की दृष्टि से देवनागरी लिपी सबसे उपयुक्त है। इसमें निहित अपार संभावनाओं का उपयोग कर हम भूमंडलीकृत होते हुए विश्व की सैकड़ों भाषाओं के साथ न्याय कर सकेंगे और देवनागरी लिपी विश्व की भाषाओं का माध्यम और उनकी कुंजी बन सकेगी। अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच और इतालवी आदि सभी यूरोपीय भाषाओं के उच्चारण सुरक्षित रख सकते हैं। उच्चारण की भिन्नता को देखा जाए तो अंग्रेजी में 'D' और 'T' की ध्वनि क्रम से 'ड' और 'ट' होती है। परंतु वहीं इतालवी में जाकर 'द' और 'त' हो जाती है। अतः विश्व की भाषाओं के सही उच्चारण का एकमात्र उपाय उनका देवनागरी लिपी में लिप्यंतरण ही हो सकता है। मानव कल्याण की दिशा में यह प्रक्रिया निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। देशी-विदेशी भाषाओं के शिक्षण की दृष्टि से भी इस लिपी के सामर्थ्य का उपयोग किया जाए, क्योंकि रोमन जब

लिप्यंतरण की दृष्टि से ही उपयुक्त नहीं है, तब उसके जरिए किसी अन्य भाषा के शिक्षा की कल्पना ही कैसे संभव है?

16. अन्य भाषाओं को प्रस्तुत करने की क्षमता :

देवनागरी लिपी देश की ही नहीं बल्कि विश्व की अन्य भाषाओं को भी प्रस्तुत करने की क्षमता रखती है। देवनागरी लिपी में वर्णों की बहुलता के कारण केवल संस्कृत, मराठी, हिंदी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओं की ही नहीं, बल्कि संसार की लगभग सभी भाषाओं की ध्वनियों को सरलता तथा स्पष्टतापूर्वक अंकित किया जा सकता है।

निष्कर्षत: आज युरोप और अमरीका जैसे देशों में कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर के विकास में जो अनुसंधान हो रहे हैं उनमें भी देवनागरी लिपी की उपादेयता ने विशेषज्ञों का ध्यान विशेष रूप में आकर्षित किया है। देवनागरी लिपी ही ऐसी एक मात्र लिपी है, जो विश्व की समस्त भाषाओं को लिखित रूप में व्यक्त कर सकती है। परिणामत: देवनागरी लिपी के माध्यम से चीनी, जापानी, रूसी, अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाओं को आसानी से आत्मसात किया जा सकता है। देवनागरी लिपी के माध्यम से ही ''एक विश्व एक मानव'' की कल्पना को मूर्त रूप दिया जा सकेगा।

4.3.1.2 देवनागरी लिपी **की सीमाएँ :**

देवनागरी लिपी केवल भारत की ही नहीं, बल्कि समग्र विश्व की सर्वाधिक गुण संपन्न एवं वैज्ञानिक लिपी है। कोई अन्य लिपी इसके समान उपयोगी एवं सार्थक नहीं है। किंतु लेखन के समय यही प्रतीत होता है कि इसकी भी कुछ सीमाएँ हैं। इसके नियम, उपनियम एक निश्चित सीमा तक ही ठीक लगते हैं। एक सीमा के पश्चात् यही कहना पड़ता है, कि यहाँ औचित्य का निर्वाह हो रहा है। वास्तव में उस समय नियम- सीमातिक्रमण हो जाता है। इन सीमाओं को समाप्त करके देवनागरी को विश्व की एक आदर्श लिपी बनाया जा सकता है। एक दूसरा दृष्टिकोण यह भी है कि सीमा को औचित्यपूर्ण नियम माना जाता है। नियम की अनिवार्यता ही मानव को सामाजिक एवं सभ्य बनाती है, अन्यथा मानव बर्बर हो जाता है। ठीक इसी प्रकार लिपी की सीमाएँ उसे औचित्य ही प्रदान करती हैं। देवनागरी लिपी की सीमाओं का विस्तृत विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत किया है -

1. वर्गीकरण :

देवनागरी लिपी को स्वर तथा व्यंजन दो वर्गों में विभक्त किया जाता है। प्राचीन काल से आज तक स्वर-व्यंजन की अधिकांश परिभाषाएँ इसी तथ्य पर आधारित हैं कि स्वरों का स्वतंत्र रूप से, किसी अन्य ध्वनि की सहायता के बिना उच्चारण किया जा सकता है, जबकि व्यंजनों का उच्चारण स्वतंत्र रूप से नहीं किया जा सकता। किसी अन्य (स्वर) ध्वनि की सहायता उसके उच्चारण के लिए अपेक्षित होती है।

क) आजकल ऑसिलोग्राफ की सहायता से स्वरों की भाँति कुछ व्यंजनों का स्वतंत्र रूप से उच्चारण करने की बात स्पष्ट होती है, जबकि व्यंजनों में स्वर की समाहिति मानी जाती है। स, ज, श आदि इसी

प्रकार की ध्वनियाँ हैं जिनका स्वरांत प्रयोग होता है, जबकि ये ध्वनियाँ सदा स्वरांत नहीं होती हैं, अन्यथा स्वर की सहायता के बिना इनका उच्चारण नहीं किया जा सकता है। इसके अलावा अनेक शब्दों में प्रयुक्त कई ध्वनियाँ व्यंजनांत होने के कारण हलंत के सहित लिखनी चाहिए जबकि उन्हें स्वरांत अर्थात् हलंत के बिना लिखी जाती हैं। जैसे – शाप – शाप्, आम – आम्, कान – कान्, साहब – साहब्, साफ – साफ्, नभ – नभ् आदि।

ख) यदि यह कहा जाए कि स्वरों का उच्चारण देर तक किया जा सकता है, व्यंजन का नहीं। इस प्रकार की परिभाषा भी एक निश्चित सीमा तक ही औचित्यपूर्ण है। सभी ध्वनियों के साथ एक जैसा नियम नहीं लागू होता, क्योंकि श, ष, स जैसी संघर्षी ध्वनियों का उच्चारण देर तक किया जा सकता है।

ग) स्वर व्यंजन वर्गीकरण के उपरांत कुछ ध्वनियाँ विशुद्ध रूप से ऐसी पाई जाती है, जिनका उच्चारण तथा प्रयोग स्वर व्यंजन दोनों रूपों में किया जाता है, उन्हें अर्ध स्वर कहा जाता है; जैसे – य, व। ये ऐसे लिपी चिह्न हैं, जो व्यंजन रूप में प्रयुक्त होने के साथ कभी–कभी स्वतंत्र स्वर रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। जैसे – गयी – गई, लिये – लिए, आइये – आइए

घ) कुछ ध्वनियाँ ऐसी हैं जिनके लिए प्रयुक्त लिपी चिह्न स्वर चिह्नों के सदृश होने के कारण स्वरों के वर्ग में रखे जाते हैं। जैसे – अं, अः। ये दोनों स्वर नहीं अपितु अनुस्वार तथा विसर्ग हैं, जिन्हें स्वरों से अलग करने के लिए इनके रूप में सुधार अपेक्षित है। किंतु पूर्ण नवीन रूप को स्थान देना सीमातिक्रमण होगा।

2. वर्तनी :

क) लिपी चिह्नों के स्वतंत्र नाम की ध्वनियों की शब्द में प्रयोगोच्चारण अनुरूपता सबसे बड़ी विशेषता है, किंतु यह विशेषता एक सीमा तक ही पाई जाती है। कुछ प्रयोग ऐसे होते हैं, जबकि लिपी चिह्नों के अनुरूप ध्वनि नहीं रह जाती है। लिखा कुछ जाता है और उच्चारण कुछ और ही किया जाता है। जैसे – उपन्यास – उपन्न्यास, कन्या – कन्न्या, अन्य – अन्न्य, अनन्य – अनन्न्य, चक्र – चक्क्र, साहित्यिक – साहित्तिक आदि।

उपर्युक्त इन शब्दों के मध्य या अंत में आने वाले संयुक्त व्यंजन द्वित्व रूप में उच्चरित होते हैं, किंतु द्वित्व रूप में लिखे नहीं जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि शब्द के मध्य या अंत में आने वाले संयुक्त व्यंजन का द्वितीय व्यंजन य, व, र आदि होता है तो प्रथम व्यंजन द्वित्त्व रूप में उच्चरित होता है। अंतस्थ व्यंजन के पूर्व आने वाला अर्ध व्यंजन एक बार लिखा जाता है और उच्चारण दो बार किया जाता है। इस प्रकार द्वित्वीकरण का नियम य, व, र आदि ध्वनियों तक ही सीमित है।

ख) संयुक्त व्यंजनों में यदि प्रथम व्यंजन महाप्राण होता है तो उससे पूर्व उसी का एक अल्प प्राण व्यंजन भी उच्चरित होता है, किंतु इस अल्पप्राण व्यंजन के लिए किसी लिपी चिह्न का प्रयोग नहीं होता है। जैसे – अभ्यास – अब्भ्यास, मध्य – मद्ध्य, मुख्य – मुक्ख्य आदि।

3. मात्रा :

देवनागरी लिपी में स्वर चिह्नों के स्वतंत्र रूप के साथ-साथ उनके लिए निर्धारित मात्राओं का भी प्रयोग किया जाता है। इससे स्थान तथा समय की बचत होती है। इस गुण की भी एक सीमा है। मात्राओं के प्रयोग में निम्नांकित कमियाँ हैं -

क) जहाँ मात्राओं के प्रयोग से लंबाई में स्थान की बचत होती है, वहीं इन मात्राओं के लिपी चिह्नों के साथ ऊपर नीचे प्रयुक्त होने से चौड़ाई में वृद्धि होती है। जैसे - कुशल, मूल, लिपी, उसकी, उनके, चैन, सोन तथा मौन आदि।

स्पष्ट है कि मात्रा व्यवस्था अवश्य ही बहुत वैज्ञानिक है, किंतु 'ए', 'ऐ', 'इ', 'ई', 'ओ' तथा 'औ ' की मात्राएँ ि ी ॅ ै ो ौ ऊपर, आगे-ऊपर, पीछे-ऊपर तथा 'उ', 'ऊ' की मात्राएँ नीचे लगकर ऊपर आगे-ऊपर, पीछे-ऊपर, नीचे स्थान घेरती है।

ख) मात्राओं का वर्णों के साथ आगे, दाहिनी ओर लगाना वैज्ञानिक है, क्योंकि उनका उच्चारण भी वर्णों के बाद होता है। जैसे -

आ (ा) = काम, राम, आप, स्थान आदि

ई (ी) = मीत, गीत, बीमार आदि

ओ (ो) = मोर, कोई, योग आदि

औ (ौ) = कौन, मौर्य, और आदि

तथा मात्राओं का विभिन्न वर्णों के बाद प्रयोग किया गया है तथा इनका उच्चारण भी इसी क्रम में होता है।

किंतु अन्य मात्राओं का उच्चारण वर्ण के बाद ही होने पर भी उन्हें वर्ण में ऊपर या नीचे लगाते हैं, जबकि उसे दाहिनी तरफ हटकर उच्चारण क्रम में लगाना चाहिए। इस संदर्भ में भी, देवनागरी लिपी की अपनी सीमाएँ हैं, इस कारण व्यंजन में इन मात्राओं का प्रयोग ऊपर या नीचे किया जाता है। जैसे -

इ (ि) = कितनी, जितनी, भिन्न आदि

उ (ु) = कुल, पुत्र, कुशल आदि

ऊ (ू) = सूर्य, मूल, कूल आदि

ए (े) = उसे, केवल, सेना आदि

ऐ (ै) = तैल, थैला, कैसा आदि

ग) ह्रस्व तथा दीर्घ उकार की मात्रा व्यंजनों में एक निश्चित नियम के अनुसार लगती है। व्यंजन में ह्रस्व उकार की मात्रा नीचे, दाहिने से बाएँ लगती है तो दीर्घ उकार की मात्रा नीचे, बाएँ से दाहिने लगती है,

किंतु वह नियम रकार के साथ नहीं लगता र में उ की मात्रा का विशेष परिवर्तित रूप प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार प से फ बनाने के लिए उसमें दाहिनी ओर एक हुक लगा दिया जाता है। ठीक उसी प्रकार रकार के मध्य में हुकदार 'उ' की मात्रा मध्य में लगाते हैं।

करार में लगे ह्रस्व उकार की ही सीमा नहीं है, अपितु दीर्घ ऊकार की मात्रा भी भिन्न रूप में प्रयुक्त होती है। दीर्घ उकार की मात्रा रकार में नीचे न लगाकर मध्य में दाहिनी ओर लगाते हैं।

4. एक ध्वनि के लिए एक लिपी **चिह्न :**

देवनागरी लिपी में रोमन तथा उर्दू आदि लिपीयों से बहुत अधिक गुण है। नागरी तुलना में विशेष स्थान पाती है किंतु अपने में पूर्ण वैज्ञानिक नहीं कही जा सकती। समय तथा प्रचलन के अनुसार कुछ ध्वनियों के लिए एक से अधिक लिपी चिह्नों का प्रचलन हो गया है। कभी-कभी इनके रूपों के प्रचलन के कारण कुछ का कुछ पढ़ लिया जाता है। जैसे - अराडा>अण्डा।

एक ध्वनि 'र' के लिए चार लिपी चिह्नों का प्रयोग किया जाता है, जो वैज्ञानिक सीमा से बिल्कुल परे है।

1. प्रथम रूप जो स्वतंत्र तथा पूर्ण है। जैसे - रमा, राम, राधा आदि में प्रयुक्त 'र'।
2. द्वितीय रकार संयुक्त व्यंजन के रूप में प्रयुक्त होता है। यह भी पूर्ण रकार है, किंतु पाई वाले व्यंजनों के साथ संयुक्त करके आधे रूप में लिखा जाता है। जैसे - क्रम, प्रेम, श्रम, द्रव्य आदि।
3. रकार का तृतीय पूर्ण रूप वह है, जो बिना पाई वाले व्यंजनों अर्थात् ट, ड आदि के साथ संयुक्त व्यंजन के रूप में प्रयुक्त होता है। यह रूप प्रायः आंग्ल भाषा से आगत शब्दों में प्रयुक्त होता है। जैसे - ^ = ट्राम, ट्रेन, ड्रिल, ट्रे आदि।

४. रकार का चतुर्थ रूप अर्ध 'र' है, जिसे 'रेफ' भी कहते हैं। इसका प्रयोग व्यजंनों के मध्य में उच्चरित होने के कारण मध्य में ही लिखा जाना चाहिए, किंतु जिन व्यंजनों के मध्य यह उच्चारित होता है। उनके बाद प्रयुक्त पूर्ण व्यंजन के ऊपर लिखा जाता है। जैसे - कर्म, धर्म, पर्व, पूर्ण आदि।

दो अर्ध स्वर य तथा व व्यंजन के अतिरिक्त स्वर के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं। अर्थात् एक ध्वनि के दो चिह्नों का प्रयोग मिलता है जिससे लिखने में कठिनाई होती है। जैसे -

ई=यी : कठिनाई = कठिनायी, अपनाई = अपनायी, सुनाई = सुनायी आदि।

ए=ये : लिए = लिये, चलिए = चलिये, पीजिए = पीजिये।

ओ= वो : गाओ = गावो, जाओ = जावो, लाओ - लावो।

5. लेखन :

लिपी का प्रयोग लेखन क्रिया के लिए किया जाता है। स्वर, व्यंजन, संयुक्त व्यंजन, अनुस्वार, विसर्ग, हलंत आदि की दृष्टि से देवनागरी की सीमाओं पर विचार करना आवश्यक है।

क) स्वर :

स्वर लेखन की सीमाओं पर विचार करते हुए अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, आदि के स्वतंत्र रूप एवं इनकी मात्राओं की सीमा पर विचार किया गया है। ऋ की मात्रा का प्रयोग शब्द के मध्य या अंत में नीचे होता है। इस प्रकार के शब्दों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि संस्कृत के तत्सम शब्दों में ही 'ऋ' की मात्रा का प्रयोग किया जाता है। जैसे – कृपा, तृप्त, मृत। कुछ वर्णों की नीचे की पाई के समान लघु रचना भाग में लगती है। जैसे – दृग, उच्छृंखल, हृदय आदि।

ख) व्यंजन :

यहाँ व्यंजन लेखन की सीमाओं का विवेचन किया गया है। यहाँ केवल 'ण' एवं 'ष' की सीमाओं पर विचार किया है। 'ष' व्यंजन का पर्याय महत्व है, जबकि मुर्ध्दन्य नामक ध्वनि अब हिंदी में पर्याप्त रूप में सिमट गई है। इसका स्थान तालव्य 'श' ने लिया है। यही कारण है कि इस ध्वनि के लिपी चिह्न का प्रयोग केवल संस्कृत के तत्सम शब्दों में ही होता है। जबकि 'ण' के स्थान पर डकार के अल्प महाप्राण रूप 'ड' पर अनुनासिक अर्थात् चंद्र बिन्दु लगाकर (ड़ँ) किया जा सकता है। मूर्धन्य 'ष' का तालव्य 'श' स्थानापन्न बन चुका है। जैसे – कृष्ण=कृष्ड़ँ, रण = रड़ँ, तृण = तृड़ँ, गण = गड़ँ

शरण = शरड़ँ, भक्षण = भक्षड़ँ आदि।

ऋषिकेश = रिशिकेश, कोष = कोश।

'ण' और 'ष' व्यंजनों का प्रयोग व्यवहार में जब तक है तब तक ये वर्णमाला में रहेंगे। परम्परागत मूल रूपों का अपना महत्त्व होता है।

ग) संयुक्त व्यंजन :

देवनागरी लिपी में संयुक्त व्यंजनों के लेखन का प्रचलन अधिक है। कभी–कभी तो चार व्यंजनों का संयुक्त रूप भी देखा जा सकता है। जैसे – वत्स्र्य। इस प्रकार बने हुए संयुक्त व्यंजनों की कोई विशेष सीमा नहीं है। यत्र – तत्र इनका प्रयोग होता ही है। किंतु कुछ विशिष्ट ध्वनियों का संयुक्त रूप रूढ़िबद्धता की सीमा में आ गया है। जैसे – श्+र= श्र, ज्+त्र=ज्ञ तथा क्+ष=क्ष।

'श्र' – इसमें श् एवं र को संयुक्त करके श्र बनाया गया है। किंतु इस संयुक्त व्यंजन में शकार का रूप स्पष्ट नहीं रहता है। यह सीमा श एवं र के संयुक्त व्यंजन तक ही लागू होती है। अहिंदी भाषा – भाषी को इस लिपी चिह्न को देखकर यह भ्रम होता है कि यह स्वतंत्र लिपी चिह्न है। इस भ्रम को दूर करने के लिए 'श' एवं 'र' को उनके स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

'ज्ञ' वैदिक ध्वनि एवं संस्कृत उच्चारण के अनुसार यह जकार तथा त्रकार का संयुक्त रूप है, किंतु हिंदी में इसका अधिकांशतः उच्चारण ज्+त्र रूप में न होकर प्रायः ग्य रूप में होता है। संयुक्त व्यंजन के इस लिपी चिह्न का प्रयोग अति भ्रामक है, क्योंकि जिस रूप में वह उच्चरित होता है, उस रूप में लिखा नहीं जाता है। जन भाषा के भाँति कबीर आदि कवियों ने इसे 'ग्य' रूप में ही स्वीकार किया है। इसलिए इसे उच्चारणानुसार 'ग्य' अथवा 'ज्त्र' लिखा जाना आवश्यक है। इसके लिए किसी विशिष्ट संयुक्त व्यंजन रूप की आवश्यकता नहीं है। अन्य संयुक्तों की भाँति इसे भी स्वतंत्र रूप दिया जाना चाहिए। जैसे - ज्ञान=ज्त्रान, विज्ञ=विज्त्र, विज्ञापन=विज्त्रापन आदि।

'झ' - यह भी एक संयुक्त व्यंजन है, जो कि दो व्यंजनों के मिलने से बना है और उनके मूल रूपों से बिल्कुल भिन्न है। देवनागरी के क्+ष के संयुक्त होने से यह रूप सामने आया है। इसका उच्चारण यदा-कदा क्+ष रूप में न होकर क्+छ रूप में होता है। यह वैज्ञानिकता की सीमा से बाहर की बात है। इसे इस प्रकार लिख सकते हैं - कक्षा=कक्षा।

सैद्धांतिक रूप में यह सुधार उपयोगी है। सभी भाषा वैज्ञानिक इसे स्वीकार करते हैं, किंतु वे भी इसका प्रयोग नहीं करते हैं। इसका व्यावहारिक प्रयोग दुष्कर है।

'द्य' - ऊपर वर्णित श्र, ज्ञ तथा क्ष आदि संयुक्त व्यंजनों के अतिरिक्त देवनागरी लिपी व्यवहार में 'द्य' का भी संयुक्त रूप में प्रयोग किया जाता है। इस रूप को देखने से यह स्पष्ट है कि द् के साथ य को मिलाकर संयुक्त व्यंजन का निर्माण किया गया है। द् और य के संयुक्त रूप में ही इस लिपी चिह्न का प्रयोग होता है। जैसे - विद्या, विद्यालय, अद्य, द्योतक आदि।

घ) अनुस्वार:

ङ, त्र, ण, न, म ध्वनियाँ नासिक्य हैं। स्वरांत होने पर इनके स्वतंत्र प्रयोग की कोई सीमा नहीं है, किंतु जब इनका प्रयोग अर्ध व्यंजन रूप में किया जाता है, उस समय ङ को हलंत् युक्त तथा त्र, ण, न, म की खड़ी पाइयों का लोप करके प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त इन पाँचों नासिक्य ध्वनियों के लिए एक बिंदु मात्र का भी प्रयोग किया जाता है, जिसे अनुस्वार कहा जाता है। अनुस्वार पहले स्वरांत रूप से स्वर के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता था जो कि 'अं' था। इसकी मात्रा बिंदु थी। इससे यह स्पष्ट हो गया कि अब पहले के अं स्वर तथा ङ, त्र, ण, न, म नासिक्य व्यंजनों के लिए अनुस्वार अर्थात् बिंदु का प्रयोग होता है। जैसे - अङ्ग=अंग, चण्डीगढ़=चंडीगढ़, दन्त=दंत, सम्बन्ध=संबंध आदि।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पाँचों नासिक्य व्यंजनों के लिए एक ही अनुस्वार अर्थात् एक बिंदु का प्रयोग लिपी चिह्न के रूप में किया है, जबकि प्रत्येक वर्ण वर्ग के अनुस्वार का उच्चारण पूर्ण भिन्न है। इसकी यह विशिष्ट सीमा है। इनका उच्चारण उसी सीमा तक होता है। जिन दो व्यंजनों के मध्य इन्हें लिखा जाता है, उनमें उच्चारण दूसरे व्यंजन के अनुसार ही होता है।

ङ) विसर्ग :

यह वैदिक ध्वनि है। इसका प्रयोग हिंदी तथा संस्कृत में भी होता है। इसे न तो स्वरों के अंतर्गत लिया है न ही व्यंजनों में। वर्णों की दो श्रेणियों में से किसी के भी साथ इसका जातीय योग नहीं है। इसलिए अनुस्वार तथा विसर्ग दोनों ध्वनियों को 'अयोगवाह' कहते हैं। न स्वरों से योग न व्यंजनों से, फिर भी अर्थ-वहन करते हैं। इसलिए इसे अयोगवाह कहते हैं। अनुस्वार की भाँति विसर्ग का प्रयोग स्वर के बाद किया जाता है। जैसे - प्रायः। संस्कृत में इसका अधिक प्रयोग होता है तथा इसका उच्चारण है से बहुत कुछ मिलते हुए भी पर्याप्त अंतर रखता है। संस्कृत के नि: तथा द: उपसर्गों तथा मन:+रथ=मनोरथ, तेज:+मय=तेजोमय आदि जैसे सामासिक शब्दों में भी विसर्ग का प्रयोग होता है। विसर्ग की हिंदी में कोई आवश्यकता नहीं है इसके संदर्भ में आचार्य किशोर दास वाजपेयी लिखते हैं ''हिंदी के गठन से विसर्गो का कोई संबंध नहीं।'' हिंदी के जिन शब्दों में विसर्ग लगता है उनके विसर्गहीन रूप भी हैं। जैसे - प्रातः=प्रात, प्रायः=प्राय, क्रमशः=क्रमिक आदि। केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निर्णयानुसार हिंदी में विसर्गरहित शब्दों के प्रयोग पर बल दिया है।

च) हलन्त:

हलन्त का प्रयोग वर्ण को स्वररहित व्यंजन रूप में लिखने के लिए किया जाता है। प्रस्तुत कार्य कहीं वर्ण में आंशिक परिवर्तन करके तो कहीं हलन्त लगाकर किया जाता है।

1) पूर्ण पाई वाले वर्णों की पाई हटाकर व्यंजन रूप में प्रयुक्त किया जाता है। जैसे - प्यार, अम्ल, विघ्न, ध्वंस आदि। इनमें क्रमशः प, म, घ, न आदि का पाई रहित रूपों में प्रयोग हुआ है।

2) पूर्ण पाई से अधिक डेढ़ पायी वाले क, फ वर्णों में दाहिने लगी आधी पूर्ण पाई को नहीं हटाया जा सकता, क्योंकि यह वर्ण के मध्य में होती है। जैसे - पक्का, रक्त, फ्लू, गफ्फार आदि।

6. लिपी चिह्न की पर्याप्तता :

देवनागरी लिपी में इतने लिपी चिह्न हैं कि जिनके आधार पर सामान्य रूप से सभी ध्वनियों को लिपीबद्ध किया जाता है। वर्तमान समय में देवनागरी की आवश्यकता दिन-प्रतिदिन बढ़ रही है, क्योंकि यह संपर्क लिपी के रूप में प्रयुक्त होने लगी है। इसी कारण आज अन्य भारतीय भाषाओं की ध्वनियों को व्यक्त करने की आवश्यकता महसूस हो रही है। यदि इन ध्वनियों को देवनागरी लिपी में स्थान दें दिया जाए तो इसके रूप में पूर्ण वैज्ञानिकता आ जाएगी। आवश्यकता के अनुसार प्रयुक्त होने वाले अनेक लिपी चिह्नों को देवनागरी लिपी में अभी तक स्थान नहीं मिला है। किंतु वे स्थान पाने की अपेक्षा रखते हैं। जिसका विवेचन निम्नवत है -

क) रोमन लिपी में प्रयुक्त होने वाले 'आ' से कुछ मिलती हुई ध्वनि 'ऑ' है। जैसे - डॉक्टर, कॉलेज, कॉफी आदि। वर्तमान समय में इसका प्रचलन बढ़ चुका है किंतु अभी देवनागरी वर्णमाला में इसे स्थान प्राप्त नहीं हुआ है।

ख) उर्दू में प्रयुक्त होने वाले क़, ख़, ग़, ज़, फ़ आदि। उदा. काग़ज़, ख़ाका, ग़म, ज़रा, फ़र्क आदि के रूप में कभी प्रयोग होता है तो कभी हिंदीकरण कर कागज, खाका, गम, जरा, फर्क प्रयोग होता है।

ग) देवनागरी लिपी की निर्धारित वर्णमाला में ड, ढ को मूर्धन्य व्यंजन वर्ग में स्थान प्राप्त है। इसके नीचे बिंदु लगाकर उत्क्षिप्त मूर्धन्य व्यंजन का अस्तित्व स्वीकार किया है। इनका प्रयोग भी बहुत पहले से होता आ रहा है। जैसे - सड़क, पढ़ना आदि।

घ) वैदिक भाषाओं तथा आधुनिक समय में मराठी, हिंदी आदि भाषाओं में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि 'ळ' लिपी चिह्न को वर्णमाला में स्थान प्राप्त हुआ है।

निष्कर्ष रूप से स्पष्ट है कि देवनागरी लिपी की विभिन्न दृष्टियों से अनेक सीमाएँ हैं। इन सीमाओं का अतिक्रमण यदि दोष है तो सीमानुसार नियमों का लागू होना उसकी मर्यादा या महत्ता का द्योतक है। अतः हमें इस लिपी के दोषों को दूर कर इस लिपी को गुणवान बनाने का प्रयास करना चाहिए। तभी यह हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

4.3.1.3 देवनागरी लिपी की वैज्ञानिकता :

मानव जीवन में भाषा का अत्यंत महत्व है। भाषा का वर्णमाला एवं लिपी से घनिष्ठ संबंध है। प्रत्येक भाषा के लिए एक अलग वर्णमाला आवश्यक होती है। डॉ. कैलाशचंद्र भाटिया लिपी के संबंध में लिखते हैं ''वर्णमाला का ध्वनियों के सांकेतिक चिह्न - विशेष की ही संज्ञा लिपी है।'' लिपी शब्द 'लिप्यते' से निकला है, जिसके अनेक अर्थ हैं। जैसे - लिंपन करना, लेप देना आदि। जब मनुष्य की शाब्दिक अभिव्यक्ति को सांकेतिक चिह्नों के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए उन चिह्नों में उसका अर्थलीपंन किया जाता है। तब लिपी का जन्म होता है। किसी भी भाषा की समृद्धि में लिपी का योग सर्वाधिक होता है।

देवनागरी लिपी भारत की प्रमुख लिपी है। भारतीय संविधान ने इसे राजलिपि, राष्ट्रलिपि के पद पर प्रतिष्ठित किया है। किसी भाषा का ध्वन्यात्मक प्रतिनिधित्व करने वाली लिपी ही वैज्ञानिक और पूर्ण लिपी कहलाती है। जब हम देवनागरी की तुलना संसार की अन्य लिपीयों; रोमन, अरबी आदि से करते हैं, तो पता चल जाता है कि उन लिपीयों की अपेक्षा देवनागरी में कुछ ऐसे गुण या विशेषताएँ हैं जिनके फलस्वरूप उसे वैज्ञानिक लिपी कहा जाता है। देवनागरी लिपी की वैज्ञानिकता संबंधी विद्वानों ने अपने मत निम्नानुसार व्यक्त किए हैं -

विदेशी विद्वानों के मत :

1. प्रो. मेनियर विलियम्स: ''सफल रूप से कहा जा सकता है कि देवनागरी अक्षरों से बढ़कर पूर्ण और उत्तम अक्षर दूसरे नहीं है।''

2. पिटमैन: ''संसार में यदि सर्वांश पूर्ण अक्षर हैं, तो देवनागरी के हैं।''

3. ग्राउस: ''कचहरी के लिए फारसी की यह शैली स्वीकार कर लेने पर विवश होकर नागरी लिपी भी छोड़ देनी पड़ेगी, जो एक सर्वोत्तम वैज्ञानिक लिपी है।''

भारतीय विद्वानों के मत :

1. सेठ गोविंददास: ''हमारी देवनागरी इस देश की ही नहीं, समस्त संसार की लिपीयों में से सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपी है। हमारी लिपी में स्वरों और व्यंजनों का जैसा वैज्ञानिक पृथक्करण है वैसा अन्य लिपीयों में नहीं।''

2. डॉ. सुनितकुमार चटर्जी: ''संसार की लिपीयों में भारतीय लिपीयों की यह विशेषता उल्लेखनीय है कि इसके वर्णक्रम नितांत वैज्ञानिक हैं।''

3. डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री: ''विश्व की आधुनिक सभी लिपीयों में देवनागरी लिपी का स्थान, सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि यह संसार की लिपीयों में सबसे अधिक वैज्ञानिक है।''

भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के उपर्युक्त मतों से स्पष्ट है कि देवनागरी लिपी एक वैज्ञानिक लिपी है। इसकी वैज्ञानिकता निम्नलिखित विशेषताओं से स्पष्ट होती है –

1. अक्षरों का वैज्ञानिक वर्गीकरण :

देवनागरी की वर्णमाला का क्रम वैज्ञानिक है। जैसे – स्वर पहले वह भी ह्रस्व और दीर्घ क्रम से, बाद में व्यंजन। व्यंजन भी उच्चारण स्थान तथा प्रयत्न के अनुसार कंठय्, तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य, ओष्ठय आदि रूप में हैं। व्यंजन वर्णमाला में भी पहले दो अघोष व्यंजन (क, ख, च, छ) फिर दो घोष (ग, घ, ज, झ आदि) और पाँचवाँ वर्ण अनुनासिक है। इसी प्रकार 'क' वर्ग आदि पाँचों वर्गों के दूसरा और चौथा वर्ण (ख, घ आदि) महाप्राण हैं और पहला तथा तीसरा (क, ग आदि) अल्पप्राण हैं। वर्णों की ऐसी वैज्ञानिक व्यवस्था विश्व की किसी भी भाषा में नहीं है। रोमन, अरबी लिपीयों में 'स्वर' 'व्यंजनों' का अलग-अलग वर्गीकरण नहीं है, तथा उच्चारित ध्वनियों का उच्चारण स्थान के क्रमानुसार वर्गीकरण भी नहीं है, जो देवनागरी में निम्नप्रकार पाया जाता है –

1. कंठय् – क, ख, ग, घ, ड़
2. तालव्य – च, छ, ज, झ, त्र
3. मूर्धन्य – ट, ठ, ड, ढ, ण
4. दंत्य – त, थ, द, ध, न
5. ओष्ठय – प, फ, ब, भ, म

देवनागरी लिपी के ये वर्ण ध्वनियों के उच्चारण स्थान को ध्यान में रखकर पंक्तिबद्ध बिठाए गए हैं, जो ध्वनियाँ क्रमशः कंठय् से शुरू होकर ओष्ठय तक संपन्न होती हैं।

2. एक ध्वनि के लिए एक लिपी चिह्न :

प्रत्येक ध्वनि के लिए स्वतंत्र लिपी चिह्न आवश्यक है। देवनागरी लिपी में प्रत्येक ध्वनि के लिए स्वतंत्र एक-एक लिपी चिह्न है। जबकि संसार की अन्य लिपीयों में यह व्यवस्था नहीं है। जैसे रोमन और उर्दू। रोमन

में C, Q, K तीन लिपी चिह्न हैं और उच्चरित ध्वनि 'क' एक ही है। उदा. cat - कैट, kite - काइट, Queen - क्वीन आदि। मतलब, रोमन लिपी में 'क' ध्वनि के लिए K, Q, C का प्रयोग होता है। उर्दू लिपी में भी 'स' ध्वनि के लिए तीन लिपी चिह्न हैं – 'से', स्वाद, सीन इसी प्रकार 'ज' के लिए 'जे' तथा 'जोय'। इस प्रकार एक ध्वनि के लिए अनेक लिपी चिह्न का प्रयोग अवैज्ञानिक है।

3. गत्यात्मक एवं व्यावहारिकता :

देवनागरी लिपी गत्यात्मक एवं व्यावहारिक है। हिंदी भाषा कई अन्य भाषाओं के संपर्क में आने पर उसे नयी – नयी ध्वनियों की आवश्यकता महसूस हुई। इस आवश्यकता पूर्ति हेतु देवनागरी में नए लिपी चिह्नों का निर्माण किया गया। क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ऑ आदि चिह्न इसके उदाहरण हैं। इसी तरह अन्य कुछ लिपी चिह्नों का निर्माण किया जाए तो देवनागरी लिपी में विश्व की सारी भाषाओं को लिखने की क्षमता पैदा हो सकती है तथा वह अंतरराष्ट्रीय लिपी बनने की भी क्षमता रख सकती है।

4. निश्चित उच्चारण :

देवनागरी लिपी में वर्णों के उच्चारण निश्चित हैं। इसके विपरित रोमन में लिखा कुछ जाता है, और उसका उच्चारण कुछ अलग ही होता है। (Put) शब्द में 'U' का उच्चारण 'उ' है तो (But) शब्द में 'U' का उच्चारण 'अ' है। इसके विपरित देवनागरी में प्रत्येक वर्ण की उच्चारित ध्वनि निश्चित होती है।

5. जैसे लिखा जाए–वैसे बोला जाए :

देवनागरी में जो बोला जाता है, वही लिखा जाता है और जो लिखा जाता है वही बोला जाता है। अर्थात् देवनागरी लिपी में प्रत्येक वर्ण का उच्चारण होता है। जबकि रोमन में बहुत से वर्ण हैं। जिनका उच्चारण नहीं होता जैसे– Knowledge का उच्चारण नॉलेज होता है, इसमें KWD आदि वर्णों का उच्चारण नहीं होता; उसी प्रकार Night, Half आदि शब्दों के उच्चारण ऐसे ही हैं।

6. ह्रस्व और दीर्घ की स्पष्टता :

यह देवनागरी लिपी की निजी विशेषता है। इसमें ह्रस्व 'इ' और दीर्घ 'ई' में स्पष्ट भेद है। पर अंग्रेजी में दोनों ध्वनियों के लिए आई (I) से ही काम चल जाता है। जैसे (Nib) निब में (i) ऱ्हस्व है और Machine में (i) दीर्घ है।

7. छोटे–बड़े की उलझन नहीं :

देवनागरी लिपी में रोमन वर्णों के समान छोटे–बड़े अर्थात् कैपिटल स्मॉल वर्णों की अलग–अलग उलझन नहीं; जैसे – A/a B/b आदि।

8. कलात्मकता, सुंदरता एवं सुगठितता :

देवनागरी लिपी के वर्ण अत्यंत कलात्मक, सुंदर एवं सुगठित ढंग से लिखे जाते हैं। इस लिपी में लिखित शब्द अपेक्षाकृत कम स्थान घेरते हैं। जैसे देवनागरी में 'महेश्वर' की अपेक्षा अंग्रेजी में लिखित 'Maheshwara' शब्द अधिक स्थान घेरता है।

9. स्वर और व्यंजन का योग :

देवनागरी लिपी के प्रत्येक व्यंजन में स्वर का योग है। जैसे - क = क+अ, ब = ब+अ आदि। अन्य लिपीयों में इस प्रकार का योग देखने नहीं मिलता।

10. व्यापक क्षेत्र :

देवनागरी लिपी देश के बहुत बड़े क्षेत्र में प्रयुक्त हुई है। इसका प्रयोग हिमालय से लेकर महाराष्ट्र तक हरियाणा से बिहार तक है।

संक्षेप में देवनागरी लिपी भारत की प्रमुख लिपी है। देवनागरी लिपी अत्यंत वैज्ञानिक, उपयोगी सरल और सुंदर लिपी है। क्योंकि इस लिपी में संसार की लगभग सभी भाषाओं की ध्वनियों को उच्चारित एवं प्रतिनिधित्त्व करनेवाले चिह्न उपलब्ध हैं। देवनागरी लिपी की अपनी कुछ खास विशेषताएँ हैं जो उसकी वैज्ञानिकता को सिद्ध करती है।

4.3.1.4 देवनागरी लिपी का मानकीकरण :

किसी भी भाषा का मानकीकरण लिपी, वर्तनी एवं उच्चारण आदि के स्तर पर किया जाता है। जिससे भाषा को सहज, सरल, पढ़ने, लिखने, समझने तथा सीखने की प्रक्रिया को आसान बनाने के लिए तथा सब जगह भाषा की एकरूपता को बनाएँ रखने के लिए भाषा एवं लिपी के मानकीकरण की आवश्यकता पड़ती है। स्पष्ट है कि हिंदी देवनागरी लिपी में लिखी जाती है। हिंदी के मानकीकरण के लिए देवनागरी लिपी का मानकीकरण भी परम आवश्यक है। इस दृष्टि से समय-समय पर देवनागरी लिपी की त्रुटियों का निराकरण करने हेतु अनेक विद्वानों एवं संस्थाओं ने सुझाव दिये हैं। जिनमें साहित्य परिषद, पुणे के द्वारा गठित लिपी सुधार समिति के सुझाव, महादेव गोविंद रानाडे के सुझाव, आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में गठित समिति के सुझाव, काका कालेलकर की अध्यक्षता में गठित लिपी सुधार समिति के सुझाव आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ सुझाव व्यावहारिक थे जिन्हें स्वीकार कर लिया गया।

- **मानकीकरण का अर्थ :**

मानकीकरण का अर्थ होता है किसी भी भाषा का एक विशिष्ट स्तर का स्वरूप निर्धारित करना, जो एक आदर्श हो तथा सभी के लिए स्वीकार्य हो। यह भाषा के प्रयोग के स्तर को नियंत्रित करने की प्रक्रिया होती है। यह एक औसत स्वीकार्य स्तर होता है जो भाषा के उच्च स्तर और निम्न स्तर के औसत बिंदु को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाता है। प्रकारांतर से कहें तो मानकीकरण स्वीकार्यता का स्तर होता है।

- **मानकीकरण के नियम :**

भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने सन् 1961 ई. में एक विशेषज्ञ समिति को नियुक्त किया जिसने देवनागरी लिपी का मानकीकरण करते हुए अपने अंतिम सुझाव-संशोधन अप्रैल, सन् 1962 ई. में सरकार को सौंप दिये। जिन्हें सरकार ने स्वीकृत किया। मानकीकरण की दिशा में इन सिफारिशों का महत्वपूर्ण स्थान

है। हिंदी वर्तनी में एकरूपता लाने तथा लिपी संबंधी कठिनाइयों को दूर करते हुए जो नियम इस समिति ने बनायें हैं। उसका विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत किया है –

1. संयुक्त वर्ण :

क) **खड़ी पाई वाले व्यंजन:** जिन वर्णों में खड़ी पाई है, उनका संयुक्त रूप बनाने के लिए खड़ी पाई को हटाकर ही दूसरा व्यंजन जोड़ा जाये। जैसे – ख्+या = ख्या, प्+या = प्या, ग्+न = ग्न, ण्+य= ण्य, थ्+य, स्+भ = भ्य आदि। इनसे बने शब्द इस प्रकार है। जैसे – प्रख्यात, प्यास, लग्न, नगण्य, पथ्य, सभ्य आदि।

ख) **अन्य व्यंजन**

अ) 'क' और 'फ' के संयुक्ताक्षर पक्का, दफ्तर आदि की तरह बनाए जाएँ, न कि पकका, द्फ्तर की तरह।

आ) ङ, छ, ट, ठ, ड, ढ, द और ह के संयुक्ताक्षर हल चिह्न लगाकर ही बनाए जाएँ। जैसे – वाङ्मय, लट्टू, बुड्ढा, विद्या आदि।

इ) संयुक्त 'र' के प्रचलित तीनों रूप यथावत् रहेंगे। जैसे – प्रकार, धर्म, राष्ट्र आदि।

ई) 'श्र' का प्रचलित रूप ही मान्य होगा। त+र के संयोग को 'त्र' माना जाएगा तथा त+त्त दोनों रूपों में मानक माना जाएगा।

उ) संस्कृत में संयुक्ताक्षर पुरानी शैली से भी लिखे जा सकेंगे। जैसे – संयुक्त, चिह्न, विद्या, विद्वान, वृद्ध, द्वितीय, बुद्धि आदि।

2. विभक्ति चिह्न :

क) हिंदी के विभक्ति चिह्न सभी संज्ञा-शब्दों से अलग लिखें जाएंगे। जैसे- राम ने, राम को, राम से आदि तथा स्त्री ने, स्त्री को, स्त्री से आदि। सर्वनाम शब्दों में ये चिह्न प्रातिपादिक के साथ मिलाकर लिखे जाएँ। जैसे- उसने, उसको, उससे, उसपर आदि।

ख) सर्वनामों के साथ यदि दो शब्दों वाले विभक्ति-चिह्न हो तो उनमें से पहला सर्वनाम से जोड़कर लिखा जायेगा और दूसरा अलग रहेगा। जैसे – उसके लिए, इसमें से, उनके लिए आदि।

ग) सर्वनामों और विभक्तियों के बीच यदि निपात (ही, तक) आदि का प्रयोग हो तो विभक्ति को अलग लिखा जाये। जैसे – आप ही के लिए, मुझ तक को आदि।

3. क्रियापद :

क) संयुक्त क्रियाएँ एक साथ मिलाकर नहीं, अपितु अलग-अलग लिखी जानी चाहिए। जैसे – पढ़ा करता है, उठ बैठा, किया करता था, खेला करेगा, घूमता रहेगा, बढ़ते चले जा रहे हैं आदि।

ख) पूर्वकालिक क्रिया का प्रत्यय मुख्य क्रिया के साथ जोड़कर लिखा जायेगा। जैसे - आके, खाकर, जाकर, पीके आदि।

4. अव्यय :

अव्यय सदा अलग से लिखे जायें। जैसे - यहाँ तक, आपके साथ। किंतु सामासिक पदों में अव्यय एक साथ लिखे जायेंगे। जैसे - प्रतिदिन, यथासाध्य, यथाकृम, मानवमात्र, भरपेट आदि।

5. हाइफन :

हाइफन का विधान स्पष्टता के लिए किया गया है-

क) द्वंद्व समास में पदों के बीच हाइफन होना आवश्यक है। जैसे - माता-पिता, भाई-बहन, राम-सीता, बोल-चाल, राम-लक्ष्मण, शिव-पार्वती-संवाद, देख-रेख, चाल-चलन, हँसी-मजाक, लेन-देन, खाना-पीना, खेलना-कूदना आदि।

ख) 'सा' या 'से' पूर्व हाइफन का प्रयोग होना चाहिए। जैसे - तुम - सा, राम - सा, बाण - से, चाकू - से आदि।

ग) तत्पुरुष समास में हाइफन का प्रयोग सामान्यतः न करें, केवल वहीं करें जहाँ भ्रम होने की सम्भावना हो और हाइफन से वह भ्रम दूर हो रहा हो। जैसे - भू - तत्त्व, भू - विज्ञानी; किंतु रामराज्य, गंगाजल, ग्रामवासी, आत्महत्या, राजकुमार आदि में दोनों शब्दों के बीच हाइफन का प्रयोग अशुध्द माना जायेगा।

घ) कठिन संधियों से बचने के लिए भी हाइफन का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे - दवि-अक्षर आदि।

6. अनुस्वार तथा अनुनासिक (चन्द्रबिन्दु) चिह्न :

क) पँचम वर्ण के स्थान पर मुद्रण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए अनुस्वार का ही प्रयोग करना चाहिए। जैसे - गंगा, चंचल, हिंदी, कंबल, ठंड, संध्या, संपादक आदि।

ख) जिन व्यंजनों में चन्द्रबिन्दु के बिना अर्थ का भ्रम हो सकता है, वहा चन्द्रबिन्दु का प्रयोग अनिवार्य रूप से पृथकता दिखाने हेतु किया जाना चाहिए। जैसे -

हंस - एक पक्षी　　हँस - हँसना

अंगना - स्त्री　　अँगना - आँगन

अतः ऐसे भ्रम को दूर करने के लिए चन्द्रबिन्दु का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

7. श्रृतिमूलक 'य' और 'व' संबंधी नियम :

क) जहाँ श्रृतिमूलक 'य' और 'व' का प्रयोग विकल्प से होता हो, वहाँ स्वर वाले रूप ही शुद्ध माने जायेंगे। जैसे - हुआ, गई, नई, लिए - शुद्ध हैं तथा हुवा, गयी, नयी, लिये - अशुद्ध है।

ख) यहां 'य' और 'व' शब्द के ही मूल तत्व हैं वहाँ स्वर वाला रूप अशुद्ध और 'य' , 'व' वाला रूप ही शुद्ध होगा। जैसे – स्थायी, अव्ययी भाव, दायित्व – शुद्ध हैं, तथा स्थाई, अव्यई भाव, दाइत्व – अशुद्ध है।

8. विदेशी ध्वनियाँ :

हिंदी में अंग्रेजी की 'ऑ' तथा अरबी–फारसी की पाँच ध्वनियाँ 'क़, ख़, ग़, ज़, फ़' प्रचलित हैं, किंतु इनका प्रयोग उन्हीं शब्दों में किया जाना चाहिए। जहाँ उनका शुद्ध विदेशी रूप में उच्चारणगत भेद दिखाना है। अंग्रेजी या फारसी के जो शब्द हिंदी के अंग बन चुके हैं, उनमें हिंदी की ध्वनियाँ ही चलेंगी। हिंदी शब्दों से इनका भेद दिखाने के लिए इनका प्रयोग करना आवश्यक है। जैसे – डॉक्टर, कॉलेज, खाना – ख़ाना, बाग – बाग़, राज – राज़, का भेद स्पष्ट है।

9. हलन्त चिह्न :

संस्कृत के बहुत से शब्द हलन्त युक्त थे, किंतु हिंदी में वे बिना हलन्त के ही चल रहे हैं। अतः ऐसे शब्दों में हलन्त लगाने की आवश्यकता नहीं है। जैसे –

संस्कृत रूप	हिंदी रूप
महान्	महान
जगत्	जगत
विद्वान्	विद्वान

10. विसर्ग :

संस्कृत के जिन तत्सम शब्दों में विसर्ग है और उन शब्दों को हिंदी में प्रयुक्त करना हो तो वहाँ विसर्ग लगाना आवश्यक है। किंतु जो शब्द तद्भव रूप में हिंदी में आये हैं, वहाँ विसर्ग की आवश्यकता नहीं है। जैसे – 'दुख' को 'दुःख' लिखना ठीक नहीं है किंतु 'मनःस्थिति' शब्द में विसर्ग ठीक है।

11. पूर्वकालिक प्रत्यय :

पूर्वकालिक प्रत्यय 'कर' क्रिया से मिलाकर लिखा जाए। जैसे – मिलाकर, खा – पीकर, रो – रोकर आदि।

12. अन्य नियम :

शिरोरेखा का प्रयोग प्रचलित रहेगा, पूर्ण विराम के लिए खड़ी पाई (।) का प्रयोग मान्य है। शेष विराम – चिह्नों का वही स्वरूप रहेगा, जो अंग्रेजी में प्रचलित हैं।

निष्कर्षत: देवनागरी लिपी का मानकीकरण करने के लिए किये गये प्रयास सकारात्मक हैं। इनसे मानकीकरण को दिशा मिली है तथा सामान्य लोगों की ही नहीं बल्कि जानकारों की भी अनेक समस्याएँ दूर हुई हैं।

4.3.2 हिंदी में कम्प्यूटर की सुविधाएँ :

विज्ञान मानव जीवन को लगातार उन्नत एवं सुखमय बना रहा है। विज्ञान का प्रत्येक आविष्कार मानव – मस्तिष्क का उत्कृष्ट परिणाम है। इन्हीं आविष्कारों के क्रम में इक्कीसवीं सदी की ओर कदम बढ़ाते हुए मानव के लिए वैज्ञानिकों ने कम्प्यूटर का अत्यंत उपयोगी उपहार दिया है। वर्तमान परिस्थितियों एवं आवश्यकताओं को देखते हुए कम्प्यूटर आज हमारी अनिर्वायता है। कम्प्यूटर ने मानवीय जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। आज बिना कम्प्यूटर के आधुनिक विश्व के बारे में कल्पना भी नहीं की जा सकती। दुनिया में यह विशाल परिवर्तन लाने तथा दुनिया को सूचना एवं प्रौद्योगिकी की नई सीढ़ियों पर ले जाने के लिए कम्प्यूटर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जब से कम्प्यूटर का अविष्कार हुआ है तब से लेकर आज तक सूचना एवं प्रौद्योगिकी, संप्रेषण, व्यवसाय, भाषा, पुस्तक प्रकाशन, अनुवाद, शिक्षा तथा शोध के क्षेत्र में असाधारण प्रगति हुई है। आज लगभग सभी क्षेत्रों में कम्प्यूटर का प्रयोग किया जा रहा है। वर्तमान में शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ कम्प्यूटर का प्रयोग नहीं किया जाता हो। अतः कम्प्यूटर द्वारा हिंदी भाषा एवं देवनागरी लिपी का प्रयोग आज भारत में ही नहीं विदेशों में भी अध्ययन – अध्यापन एवं शोध का विषय बन चुका है। हिंदी में कम्प्यूटर के माध्यम से जो सुविधाएँ प्राप्त हुई है उनका विस्तृत विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत है–

4.3.2.1 मशीनी अनुवाद :

कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर की सहायता से किसी भाषा के पाठ या वाक् को अनुवाद करने की प्रक्रिया को मशीनी अनुवाद कहा जाता है। मशीनी अनुवाद में मानव का उपयोग एक सहायक के रूप में किया जाता है तथा अधिकांश कार्य कम्प्यूटर प्रोग्राम के द्वारा संचालित किया जाता है। इसे एक विशिष्ट कम्प्यूटर प्रोग्राम से संचालित किया जाता है। वैसे मशीनी अनुवाद को अभिव्यक्ति का मशीनीकरण भी कहा जाता है। अनुवाद एक भाषिक प्रक्रिया है जिसमें स्रोत भाषा में दिए गए पाठ या मूल पाठ की सूचना को लक्ष्य भाषा में रूपांतरित किया जाता है।

अ) मशीनी अनुवाद का स्वरूप :

मशीनी अनुवाद से तात्पर्य है 'मशीन या 'कम्प्यूटर' प्रणाली के माध्यम से एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना'। अनुवाद की तीन प्रक्रियाएँ सर्वस्वीकृत हैं– विश्लेषण, अंतरण एवं पुनर्गठन। मशीनी अनुवाद में ये तीनों प्रक्रियाएँ कंप्यूटर द्वारा संपन्न होती हैं। ये प्रक्रियाएँ हैं– पाठ का विश्लेषण, अंतरवर्ती प्रक्रिया या अंतरण और प्रजनन या समायोजना। अनुवाद की जाने वाली सामग्री को कंप्यूटर में इनपुट करेंगे और कम्प्यूटर प्रणाली में पहले से ही तैयार विश्लेषण प्रक्रिया या पार्सिंग प्रक्रिया द्वारा विश्लेषित कर उसे अनुवाद्य तत्वों में विखंडित किया जाएगा। फिर अंतरण प्रक्रिया से संबद्ध अंतरण कोश के माध्यम से उसके समतुल्य अनूदित शब्दों, प्रबंधों के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा। फिर समायोजन या प्रजनन की प्रक्रिया से गुजरते हुए उन अनूदित तत्वों को लक्ष्य भाषा की व्याकरणिक संरचना के अनुसार समायोजित कर लक्ष्य भाषा में अनुवाद के रूप में प्रस्तुत किया जाएगा।

मशीनी अनुवाद की परिभाषा और मानव अनुवाद की परिभाषा में बिल्कुल साम्य है। दोनों अनुवाद प्रकारों के अनुसार अनुवाद दो भिन्न भाषाओं के बीच होने वाली एक भाषिक प्रक्रिया है। लक्ष्य भाषा के पाठ्य सामग्री को अनूदित पाठ कहा जाता है। स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के पाठ का मुख्य आधार उसका निहित संदेश होता है। दूसरे शब्दों में, दोनों पाठ निहित संदेश या अर्थ को व्यक्त करते हैं। मशीनी अनुवाद की सार्थकता इसी में है कि मशीन के लिए अनुवाद कार्यक्रम इस प्रकार से तैयार किया जाए कि उससे मशीन सरलतापूर्वक और अच्छी गुणवत्ता वाला अनुवाद कर सके।

आ) मशीनी अनुवाद की आवश्यकता :

अनुवाद की परम्परा बहुत पुरानी है और उसका महत्व भी स्वयंसिद्ध है। सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, वाणिज्यिक एवं व्यापारिक उद्देश्यों के लिए हमें अनुवाद की सहायता की आवश्यकता होती है। एक समय था जब अनुवाद वैयक्तिक रुचि के आधार पर किया जाता था। अनुवाद 'स्वांत:सुखाय' होता था। किंतु वर्तमान समय में अनुवाद एक संगठित व्यवसाय के रूप में उभर कर सामने आया है। आधुनिक युग में अनुवाद की आवश्यकता इतनी अधिक बढ़ गई है कि केवल मानव अनुवादकों से यह संभव नहीं है। आज मशीनी अनुवाद के लिए एक ऐसे यंत्र का विकास करने का यत्न किया जा रहा है जो एक तरफ स्रोत भाषा के पाठ्य सामग्री का ठीक तरह से विश्लेषण करें तथा लक्ष्य भाषा की पाठ्य सामग्री के आधार पर उसका ठीक संश्लेषण कर सके। वर्तमान युग में मशीनी अनुवाद की अत्यंत आवश्यकता है। जिसका विवेचन निम्नांकित रूप में है–

1. शब्दशः अनुवाद के लिए सर्वोपयुक्त :

शब्दशः अनुवाद के लिए यह प्रणाली सबसे अधिक उपयुक्त मानी जाती है। कंप्यूटर की भाषा में इस प्रकार के अनुवाद को 'शब्दकोश आधारित मशीनी अनुवाद' (Dictionary Based Machine Translation) भी कहा जाता है। यह मशीनी अनुवाद कंप्यूटर कोश/शब्दकोश में प्रयुक्त शब्दों की प्रविष्टियों के आधार पर संभव हो पाता है। इसमें स्रोत भाषा की अनूद्य सामग्री के प्रत्येक शब्द को केंद्र में रखा जाता है। यह एक प्रकार से शब्दशः (शब्द प्रति शब्द) (Word to Word) अनुवाद में शब्दानुवाद के मूलभूत सिद्धांत का तो अनुपालन किया ही जाता है, साथ ही स्रोत भाषा की सामग्री के शब्दों की क्रम–व्यवस्था का भी पालन किया जाता है। शब्दशः अनुवाद के संदर्भ में मशीनी अनुवाद प्रणाली पर विचार करें तो यह कहा जा सकता है कि यह संभवतः सबसे कम परिष्कृत दृष्टिकोण वाली प्रणाली सिद्ध होती है। भौतिक पदार्थों के नामों आदि पर आधारित वाक्यांशों जैसी लंबी सूचियों वाली अनूद्य सामग्री का कम्प्यूटर की सहायता से अनुवाद करने की दृष्टि से यह सर्वाधिक उपयोगी प्रणाली है।

2. सरकारी प्रलेखों का अनुवाद :

हिंदी देश की राजभाषा हैं। राजभाषा अधिनियम में किए गए प्रावधानों के आलोक में विभिन्न सरकारी कार्यालयों और सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों और उपक्रमों आदि के अनेक प्रलेख द्विभाषीक रूप में निकालना अनिवार्य हैं। इन कार्यालयों में मूलतः अंग्रेजी में तैयार की गई हर प्रकार की प्रक्रियात्मक,

प्रशासनिक और तकनीकी सामग्री का हिंदी में अनुवाद अत्यंत आवश्यक है। हालांकि इस प्रकार के अनुवाद कार्य के लिए प्रत्येक कार्यालय में हिंदी अनुवादकों के अनेक पद सृजित किए गए हैं। किंतु वस्तुस्थिति यह है कि आज भी लाखों पृष्ठ अनुवाद के लिए शेष है। इसके अलावा अनुवाद कर्म श्रम साध्य एवं समय साध्य होने के कारण अनेक सरकारी प्रलेख द्विभाषी रूप में एक साथ जारी नहीं हो पाते। ऐसे में अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध प्रक्रियात्मक, प्रशासनिक और तकनीकी सामग्री को हिंदी में अनूदित करने के लिए उपयुक्त मशीनी अनुवाद प्रणाली का सहारा लेकर कार्य संपन्न किया जाए तो यह प्रयास निश्चित ही उपयोगी सिद्ध होगा।

3. बाल साहित्य और सरल पाठ्य पुस्तकों के अनुवाद के लिए सार्थक :

मशीनी अनुवाद को बाल साहित्य और सरल पाठ्य-पुस्तकों के अनुवाद के संदर्भ में विशेष तौर पर देखा जा सकता है क्योंकि इन्हें भाषा, शब्दावली और वाक्य-विन्यास आदि के स्तर पर सरल ढंग से तैयार किया जाता है। बाल साहित्य सामग्री का मशीनी अनुवाद प्रणाली की सहायता से अनुवाद संभव है जो गुणवत्ता की दृष्टि से बेहतर भी होगा। संक्षेप में इस प्रकार के साहित्य सामग्री के अनुवाद में मशीनी अनुवाद का महत्वपूर्ण योगदान है।

4. लिप्यंतरण :

कंप्यूटर का लिप्यंतरण कार्य में भी सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। अगर स्रोत भाषा सामग्री का लक्ष्य भाषा में अनुवाद न करके केवल लिपी बदलते हुए लिप्यंतरण किया जाना है तो मशीनी अनुवाद प्रणाली इस कार्य को भली प्रकार से निष्पादित कर देती है। लिप्यंतरण स्वयं में एक तकनीकी प्रकिया है और अगर इस प्रक्रिया को कंप्यूटर प्रोग्रामिंग के अनुरूप नियमबद्ध रूप में व्यवस्थित कर दिया जाए तो मशीनी अनुवाद प्रणाली द्वारा किया गया यह लिप्यंतरण एकरूपता संपन्न होगा।

5. समय की बचत :

मशीनी अनुवाद के कारण कम समय में अपेक्षाकृत अधिक अनुवाद होता है। इससे अतिरिक्त समय और परिश्रम की बचत होती है। वर्तमान युग में समय बहुत मूल्यवान है। यंत्र युग के इस दौर में उपयुक्त समय की उपयोगिता भविष्य निर्माण में सहायक होती है। अनुवाद कार्य में इसी कारण मशीनी अनुवाद अत्यंत लाभदायक है।

6. दोनों भाषाओं के संपूर्ण ज्ञान की आवश्यकता नहीं :

मशीनी अनुवाद करते समय अनुवादक को विषय तथा भाषा ज्ञान का होना आवश्यक तो है, उसमें उसे अधिकार पूर्ण ज्ञान न भी हो तो भी चल सकता है। मशीन के द्वारा शब्दों का अनुवाद आसानी से किया जाता है। अनुवादक को किसी शब्द की समस्या के लिए भाषा तथा विषय विशेषज्ञ से मिलने की आवश्यकता नहीं है।

7. पारिभाषिक शब्दावली के अनुवाद के लिए महत्त्वपूर्ण :

पारिभाषिक शब्दावली का अनुवाद करते समय शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद करना पड़ता है। मनुष्य की स्मृति यहाँ पर काम नहीं करती लेकिन मशीन के सहारे हम बहुत कम समय में पारिभाषिक शब्दों का

अनुवाद अच्छे ढंग से कर सकते हैं। वैज्ञानिक, तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में मशीनी अनुवाद ही सबसे महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

8. एक सामग्री का अनेक लिपीयों में अनुवाद :

मशीनी अनुवाद के लिए कम्प्यूटर में अनेक लिपीयाँ फीड की जाती है। इससे बहुत कम समय में हम अनेक भाषाओं की सामग्री का कई भाषाओं की लिपीयों में अनुवाद कर सकते हैं। एक पाठ्य सामग्री का दूसरी लिपी में अनुवाद करते समय अनुवादक को कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। लेकिन मशीन के सहारे लिपीयों का अनुवाद कम समय में सही, सटीक और सरलतापूर्वक किया जाता है।

9. ज्ञान – विज्ञान एवं सूचनाओं का विकास :

आज हम सूचना प्रौद्योगिकी के युग में जी रहे हैं। नई-नई सूचनाओं एवं ज्ञान-विज्ञान का विकास प्रति क्षण हो रहा है। उन्हें अपनी भाषा में लाने का तीव्रतम उपाय मशीनी अनुवाद ही है। भूमंडलीकरण के इस युग में जहाँ परस्पर दूरियाँ कम हो रही हैं, वहीं एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनुवाद की आवश्यकता भी काफी बढ़ गई है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने उत्पाद उपभोक्ताओं तक उनकी भाषा में लाना चाहती हैं। मानव क्षमताओं की सीमितता और उपलब्धता के कारण उनकी यह आवश्यकता मशीनी अनुवाद से ही पूर्ण हो सकती है।

10. विभिन्न राष्ट्रों के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संबंधों का आधार :

आधुनिक युग में अनुवाद विभिन्न राष्ट्रों के राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संबंधों का आधार बना है। विभिन्न प्रकार के राजनयिक दस्तावेज दोनों देशों की भाषाओं में तैयार किए जाते हैं। ऐसा केवल अनुवाद के कारण ही संभव होता है। संयुक्त राष्ट्र संघ में जो भी वक्तव्य दिए जाते हैं, उन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ की सभी भाषाओं में मशीन अनुवाद तंत्र द्वारा अनूदित कर उपलब्ध कराया जाता है। इस प्रकार विश्व मंच पर अनुवाद की आवश्यकता अनुभव की जाती है। भारतीय संसद में भी इस प्रकार के प्रावधान किए जा रहे हैं।

संक्षेप में अनुवाद की जाने वाली सामग्री की मात्रा इतनी अधिक है कि मानव अनुवादक के सहारे इस विशाल सामग्री का अनुवाद निर्धारित समय-सीमा में करना कठिन है। ऐसी स्थिति में एक ही उपाय है कि मशीनी अनुवाद का सहारा लिया जाए और उसे निरंतर शोध एवं विकास प्रक्रिया से विश्वसनीय बनाया जाए।

इ) मशीनी अनुवाद की प्रक्रिया :

मशीनी अनुवाद मूलतः कंप्यूटेशनल भाषाविज्ञान का एक अनुप्रयोग है जिसमें कम्प्यूटर के प्रयोग द्वारा पाठ को एक प्राकृतिक भाषा से दूसरी प्राकृतिक भाषा में अनुवादित किया जाता है। इसमें स्रोत और लक्ष्य भाषा की प्रकृति समान या असमान हो सकती है। अनुवाद प्रक्रिया की जटिलता भाषायुग्म की भिन्नताओं पर निर्भर करती है। यह जटिलता विभिन्न कारणों से खड़ी हो सकती है। इनमें वाक्य संरचना के रूपों, व्याकरण रूपों, संदर्भिक द्वि-अर्थकता अथवा वाक्य में पाई जाने वाली शाब्दिक द्वि-अर्थकता, लेखन शैली के रूपों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग, सांस्कृतिक भिन्नता आदि होते हैं। मशीनी अनुवाद को अनुवाद संबंधी

प्रौद्योगिकी पत्रिकाओं में दस सबसे चुनौतीपूर्ण प्रौद्योगिकियों की सूची में शामिल किया गया है। कम्प्यूटर के माध्यम से अनुवाद की प्रक्रिया भी क्रमशः तीन चरणों में संपन्न होती है। जिसका विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत है –

1. विश्लेषण :

सर्वप्रथम स्रोत भाषा के वाक्यों का विश्लेषण पूर्व संसाधित्र पद–निरूपक द्वारा किया जाता है। इस विश्लेषण को करने का मूल कारण यह है कि क्या अनुवाद किए जाने वाला सही है अथवा गलत। पद–निरूपण के पश्चात् मशीनी अनुवाद प्रणाली जटिल वाक्यों को सरल वाक्यों में बदलती है। यदि मशीनी अनुवाद के लिए अंतरभाषिक विधि अपनाई गई हो तो पूर्व संसाधित्र पद–निरूपक अनूद्य वाक्यों की वाक्य–संरचना को संदर्भ–संरचना में परिवर्तित करता है। पद–निरूपित्र स्रोत भाषा के व्याकरण के आधार पर अनूद्य वाक्य की पद संरचना करने के साथ–साथ व्याकरणिक दृष्टि से सही एवं गलत वाक्यों का भी पता लगाता है। स्रोत भाषा के पद–निरूपण के पश्चात् शब्द विश्लेषित स्रोत भाषा पर अपना कार्य करता है। वह स्रोत भाषा के पद–निरूपण के लिए आवश्यक शाब्दिक तत्वों का विश्लेषण करता है। शब्द विश्लेषण के इस कार्य में शब्द संचय सहायक सिद्ध होते हैं। शब्द संचय के द्वारा शब्दों के साथ–साथ संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, वचन, लिंग आदि भाषिक तत्व भी समाविष्ट होते हैं। प्राकृतिक भाषा के वाक्यों में क्रिया का सर्वाधिक महत्त्व होता है। मशीनी अनुवाद प्रणाली द्वारा अपनाई जाने वाली अनुवाद प्रक्रिया में कम्प्यूटर सर्वप्रथम क्रिया को ही पहचानता है। क्रिया संपूर्ण वाक्य–विन्यास का केंद्र होती है। क्रिया से ही वाक्य के मूल घटकों के स्वरूप आदि का निर्धारण होता है। पाठ के विश्लेषण से कम्प्यूटर को अर्थ–बोध होता है। यहाँ पहुँचकर मशीनी अनुवाद प्रक्रिया का विश्लेषण संबंधी चरण संपन्न होता है।

2. अंतरण :

वाक्य विश्लेषण से प्राप्त अर्थ बोध को लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्त करने के लिए कम्प्यूटर, अनुवाद की 'अंतरण' प्रक्रिया से गुजरता है। अनूद्य सामग्री में क्रिया पहचानने और क्रियापद के विश्लेषण होने पर 'अनुवादित्र' अपना कार्य करता है। उसका कार्य है– द्विभाषी कोश में से पर्याय ढूँढना। दोनों भाषाओं के शब्दों, अर्थों और वाक्यों में सामंजस्य स्थापित करते हुए कम्प्यूटर रूपी अनुवादक 'अनुवादित्र' के द्वारा कार्य करने के दौरान लक्ष्य भाषा में अभिव्यक्ति के धरातल पर समानार्थी शब्द प्रदान करता है। मशीनी अनुवाद में समानार्थी शब्द प्रदान करने की यह अंतरण प्रक्रिया 'अंतरण शब्दावली' द्वारा संपन्न की जाती है। अंतरण व्याकरण से प्राप्त सामग्री के आधार पर कंप्यूटर अनूद्य वाक्य के शब्दों, प्रबंधों और वाक्यों के लिए लक्ष्य भाषा में समानार्थी शब्द, प्रबंधों और वाक्यों की उपयुक्त संरचना का चयन करता है। इस चयन के साथ ही अंतरण की प्रक्रिया पूरी हो जाती है।

3. पुनर्गठन :

अनुवाद प्रक्रिया के अंतिम चरण पुनर्गठन के अंतर्गत स्रोत भाषा के वाक्य–रचना विधान और भाषा शैली संस्कार को लक्ष्य भाषा की प्रकृति के अनुरूप पुनर्गठित करते हुए भाषिक अभिव्यक्ति को रूपाकार

दिया जाता है। उसी तरह से अंतरण व्याकरण से प्राप्त सामग्री के आधार पर 'जनित्र' (जनरेटर) लक्ष्य भाषा के वाक्यों को उपयुक्त संरचना के अनुसार अनूदित करता है। जनित्र यह कार्य लक्ष्य भाषा के व्याकरण के आधार पर स्रोत भाषा के शब्दों की जगह लक्ष्य भाषा के शब्द रखते हुए निष्पादित करता है।

संक्षेप में मशीनी अनुवाद उपर्युक्त प्रक्रिया के चरणों से होकर ही अपने पूर्णतः की और अग्रसर होता है।

ई) मशीनी अनुवाद की चुनौतियाँ :

मशीनी अनुवाद अपने आप में एक अत्यंत संष्लिष्ट प्रक्रिया है। अनुवाद व्यावहारिक दृष्टि से भी एक मानवीय गतिविधि है और मशीन मनुष्य की इस श्रमसाध्य गतिविधि में सहायक हो सकती है। किस सीमा तक मशीन पर मनुष्य आश्रित हो सकता है अथवा मशीन से प्राप्त होने वाले पाठ को किस सीमा तक आदर्श अनुवाद माना जा सकता है यह अभी एक बड़ी बहस का मुद्दा है। इसका मूल कारण है मशीन के सामने वे तमाम पक्ष बाधा बनकर खड़े हो जाते हैं जिन्हें मानव मस्तिष्क अपनी-अपनी सहजात वृत्ति से हल कर लेता है। मशीनी अनुवाद की चुनौतियाँ शब्दावली, व्याकरण और संकल्पनात्मक संरचना के रूप में भाषाओं की भिन्नता पर निर्भर करती है। अतः मशीनी अनुवाद प्रणालियों ने जीवन व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों में कम्प्यूटर के द्वारा अनुवाद की संभावना को मूर्त रूप प्रदान किया है। किंतु इसके सार्थक उपयोग की दिशा में अभी कई ऐसी चुनौतियाँ-समस्याएँ हैं, जिनकी ओर समुचित ध्यान देना आवश्यक है। मशीनी अनुवाद की चुनौतियों का विवेचन निम्नांकित रूप में प्रस्तुत है-

1. सांसारिक ज्ञान का अभाव :

मनुष्य जन्म से ही समाज एवं संसार के भिन्न-भिन्न गतिविधियों से जुड़कर संस्कार और अनुभव ग्रहण करता है। मनुष्य का यह अनुभव संसार उसे अनुवाद कार्य में भी मदद करता है। मनुष्य अनुवादक अनुवाद कार्य के दौरान शब्दों एवं उनके अर्थों के सही मंतव्यों को समझने के लिए अपने सांसारिक ज्ञान का बखूबी प्रयोग करता है। मशीनी अनुवाद प्रणाली द्वारा भाषा व्यवहार में अभिव्यक्तियों के प्रकट अर्थ और अभीष्ट मंतव्य को अच्छी तरह से व्यक्त कर पाना तभी संभव होता है जब उसके स्मृति कोश में सांसारिक ज्ञान और संस्कार को डाला जाए। उदाहरण के तौर पर अंग्रेजी शब्द 'Capital' के लिए एक से अधिक अर्थ प्रयुक्त होते हैं। जैसे- राजधानी, मूलधन, बड़ा अक्षर, आदि। स्वाभाविक है कि कंप्यूटर ऐसे शब्दों के अर्थों का विश्लेषण नहीं कर पाएगा इसमें प्रसंग के अनुसार कौन से अर्थ वाला अनुवाद सही होगा।

2. प्राकृतिक भाषा की द्वि-अर्थकता :

प्राकृतिक भाषा संसाधन करते हुए शब्दों के अर्थ को संसाधित करना सर्वाधिक कठिन और जटिल कार्य है। क्योंकि प्राकृतिक भाषा स्वभावत: अस्पष्ट मानी जाती है। वैसे भाषा की अस्पष्टता का अभिप्राय उसका 'स्पष्ट न होना' न होकर उसकी द्वि-अर्थकता है। द्वि-अर्थकता प्राकृतिक भाषा की प्रकृति का स्वाभाविक गुण है। उदाहरण के लिए हिंदी शब्द 'जुआ' को देखा जा सकता है। बैलगाड़ी और हल के आगे की उस लकड़ी को 'जुआ' कहते हैं, जो पशुओं के कंधे पर रखी जाती है। इसके अलावा 'जुआ' बाजी लगाकर खेला जाने वाला एक खेल भी है। जिसे 'द्यूत' भी कहा जाता है। प्राकृतिक भाषा में शब्दों का

भाषायी अर्थ इतना बहुत आयामी होता है कि परिस्थिति संदर्भ आदि के बदलने के साथ – साथ वह भी बदल जाता है। जैसे– 'हल' शब्द को देख सकते हैं। हल गणित की प्रक्रिया का अंग भी है और प्रश्न का उत्तर भी। इसके अतिरिक्त 'हल' खेत जोतने का एक प्रसिद्ध यंत्र भी है। भाषा की यह स्वाभाविक अस्पष्टता केवल हिंदी ही नहीं, अन्य भाषाओं में भी दिखाई देता है।

3. भाषावार प्रणालियाँ विकसित करने में अनुसंधान की कमी :

मशीनी अनुवाद प्रणालियाँ कंप्यूटर की सहायता से काम करती है। यह प्रणाली कंप्यूटर के हार्डवेयर अथवा सॉफ्टवेयर के अंग के रूप में व्यवहार में लायी जाती हैं। कम्प्यूटर के क्षेत्र में हुए अनुसंधान और विकास ने यह सिद्ध कर दिया है कि उसके समक्ष भाषा का कोई बंधन नहीं है। वह किसी भी भाषा के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। मशीनी अनुवाद के क्षेत्र में अनुसंधान और विकास के लिए विकसित देश अत्यधिक निवेश करते हैं। उन्हें अपने देश की भाषाओं और स्थितियों को ध्यान में रखते हुए मशीनी अनुवाद प्रणालियाँ विकसित करनी पड़ती है। जैसे– भारत के संदर्भ में देखा जाए तो यहाँ सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के साथ–साथ मुख्य रूप से अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद और गौणत: अंग्रेजी से विभिन्न भारतीय भाषाओं में मशीनी अनुवाद प्रणालियाँ विकसित करने के लिए सरकारी एवं गैर–सरकारी स्तर पर प्रयास किया जाता है। जैसे– 'आंग्ल भारती मिशन' के अंतर्गत आंग्ल भारती प्रौद्योगिकी से देश की 12 क्षेत्रीय भाषाओं मराठी, कोंकणी, असमिया, बांग्ला, मणिपुरी, सिंधी, उर्दू, कश्मीरी, मलयालम, पंजाबी, संस्कृत और ओड़िया आदि में कम्प्यूटर द्वारा अनुवाद कार्य संभव बनाने का प्रयास किया है।

4. भाषिक विश्लेषण की समस्या :

अनुवाद तंत्रों के विकास की मुख्य समस्या भाषा और भाषिक विश्लेषण को लेकर है। मनुष्य अपनी मातृभाषा के अलावा सीखी हुई किसी भाषा के किसी वाक्य अथवा अभिव्यक्ति को पढ़ता एवं सुनता है तो वह थोड़ा बहुत प्रयास उसके अर्थ को ग्रहण करने में सक्षम हो जाता है। जबकि कम्प्यूटर मानव की भाँति बुद्धि संपन्न न होकर एक यंत्र है और यांत्रिक प्रक्रिया मात्र से वह भाषा का अर्थ ग्रहण नहीं कर सकता। भाषिक विश्लेषण करते हुए उसे भाषा संबंधी ज्ञान देना अत्याधिक कठिन कार्य है। भाषिक विश्लेषण के अंतर्गत वाक्यों का संरचनात्मक, अर्थपरक और संदर्भपरक विश्लेषण आवश्यक होता है।

5. पर्याय चयन की समस्या :

मशीनी अनुवाद में पर्याय चयन एक प्रमुख समस्या है। क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि प्रत्येक भाषा में एक शब्द का एक ही अर्थ हो। किसी भी भाषा का कोई एक शब्द अनेक अर्थों वाला हो सकता है। ये बहुअर्थी शब्द भाव और संरचना की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न होते हैं। शब्दों के अर्थ, संवेदना से जुड़े होते हैं और संवेदना हृदय की वस्तु है जबकि मशीन हृदय विहीन होती है। कोई भी मशीन मानवीय संवेदनाओं की अनुभूति नहीं कर सकती है। इस दृष्टि से यह चयन कर पाना किसी भी मशीन के वश की बात नहीं है कि संदर्भ के अनुसार और अर्थ की दृष्टि से कौन–सा पर्याय सर्वोपयुक्त होगा। जैसे– Security के लिए

सुरक्षा, प्रतिभूति, बचाव और निश्चिंतता आदि पर्यायों को देखा जा सकता है। मानव अनुवादक तो इनमें से सही अर्थ का चयन करने की योग्यता से सक्षम होता है किंतु कम्प्यूटर के लिए सही पर्याय चयन करना बहुत बड़ी समस्या है।

मशीनी अनुवाद की उपर्युक्त चुनौतियों के अतिरिक्त कहावतों - मुहावरों और लोकोक्तियों के अनुवाद की चुनौती, उच्चारण की समस्या, वर्तनी की समस्या, विभिन्न भाषाओं की व्याकरणिक विविधता और संक्षिप्ताअक्षरों के अनुवाद की समस्या आदि महत्वपूर्ण है।

4.3.2.2 मेल आईडी का पंजीकरण (विधि) :

ई-मेल वस्तुत: इलेक्ट्रॉनिक मेल का संक्षिप्त प्रचलित रूप है। इसका नामकरण सन् 1993 ई. से ई-मेल किया है। जिस प्रकार अब तक डाक सेवा द्वारा एक स्थान से पत्र, संदेश, पॉकेट आदि एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजे जा सकते हैं। उसी प्रकार अब इस नई सेवा ई-मेल का उपयोग किया जाता है। डाक सेवा के लिए भारतीय डाक व्यवस्था अथवा कोरियर सेवा की सहायता लेनी पड़ती है। जबकि ई-मेल की व्यवस्था स्वयं करनी होती है। उसका संचालन भी स्वयं करना होता है। किसी एक को या एक साथ अधिक लोगों को संदेश भेजने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। ई-मेल भेजने के लिए या प्राप्त करने के लिए इंटरनेट से जुड़े रहना आवश्यक है। प्रारंभ में ई-मेल भेजने वाला या प्राप्त करनेवाला दोनों एक साथ इंटरनेट से जुड़े रहना आवश्यक था। जबकि आज एक साथ जुड़े रहने की जरूरत नहीं है। ई-मेल द्वारा डाटा या जानकारी के रूप में पत्र, आदेश, विज्ञप्ति, सूचनाएँ आदि निर्दिष्ट उपभोक्ता के पास तत्काल पहुँच जाते हैं। यदि संदेश पाने वाला व्यक्ति कम्प्यूटर पर नहीं है अथवा कम्प्यूटर बंद है, तो यह डाटा उसके मेल बॉक्स में संग्रहीत हो जाता है। मेल बॉक्स में संग्रहीत सारे पत्र या संदेश एक-एक करके कम्प्यूटर शुरू करते ही प्राप्त होते हैं। आजकल ई-मेल द्वारा स्प्रेडशीट, डाटाबेस, ग्राफिक्स जैसे- चित्र, पी.डी.एफ फाईल आदि विभिन्न प्रोग्राम फाईल संलग्न फाईल भी भेज सकते हैं।

वर्तमान समय में किसी संस्था, औद्योगिक इकाई, प्रशासनिक युनिट आदि के लिए अपने अधीन कार्यरत विभिन्न शाखाओं, संस्थाओं से जानकारी का आदान-प्रदान करना अनिवार्य होता है। ई-मेल वह प्रणाली है जो कम्प्यूटर हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हुए इस प्रकार विकसित की गयी है जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति अपने कम्प्यूटर से जुड़े हुए किसी भी दूसरे व्यक्ति को कोई संदेश, दस्तावेज या सूचना इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से भेज सकते हैं। इस प्रणाली के प्रयोग हेतु एक कम्प्यूटर सिस्टम का होना अनिवार्य है।

ई-मेल आयडी बनाने के लिए हमें कुछ चीजों की आवश्यकता है। किसी भी व्यक्ति को ई-मेल आयडी बनाने से पहले यह ज्ञात होना आवश्यक है कि उसे किन-किन चीजों की आवश्यकता है। ई-मेल आयडी बनाने और उसका उपयोग करने में किसी अतिरिक्त खर्चे की आवश्यकता नहीं है। किंतु इसके लिए कुछ आवश्यक चीजों की आवश्यकता होती है। जैसे- कम्प्यूटर, लैपटॉप अथवा स्मार्टफोन, इंटरनेट

कनेक्शन, ई-मेल प्रोवाइडर, न्यूनतम डिजिटल साक्षरता आदि। ई-मेल आयडी की पंजीकरण विधि निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत है-

1. वेब ब्राउज़र में gmail.com टंकित करें:

सर्वप्रथम हमें अपना कंप्यूटर खोलना चाहिए और अपने पसंदीदा वेब ब्राउज़र जैसे- Google Chrome, Firefox, Internet Explorer आदि में से किसी एक वेब पर जाना है। इसके बाद ब्राउज़र में gmail.com को टंकित करना है।

2. Create an Account पर क्लिक करें:

वेब ब्राउज़र खोलने के बाद अब आपके कम्प्यूटर के विंडो में Gmail की वेबसाइट खुल जाएगी। वेबसाइट खुलने के बाद दो विकल्प आएंगे Sign in और Create an Account इसमें से नई आयडी बनाने के लिए Create an Account पर क्लिक करना है। उसके बाद अगर हम वैयक्तिक उपयोग के लिए पंजीकरण कर रहे हैं तो Myself का बटन दबाना है।

3. आवश्यक सूचनाओं को भरना :

ई-मेल खोलने की प्रक्रिया के अगले चरण में हमारे सामने एक विंडो खुलेगी उसमें हमें पूछी हुई जानकारियों को ध्यान से भरना है। सर्वप्रथम अपना शुभनाम और अंत में अपना उपनाम लिखना है। फिर नीचे बाक्स में उपयोगकर्ता (username) का नाम लिखना है। उपयोगकर्ता अपना नाम ऐसा रखें जो विशिष्ट हो, अनूठा हो और साथ ही उसे आसानी से याद रखा जा सके। इसके उपरांत अपना पासवर्ड तयार करना है और पासवर्ड वाले बॉक्स में उसे भरना है। Password और Confirm Password वाले बॉक्स में एक ही पासवर्ड लिखना आवश्यक है। अंत में Next बटन पर क्लिक करना है।

4. मोबाईल नंबर की जाँच-पड़ताल: (**Verify the Mobile Number)**

इस चरण में हमें अपना मोबाईल नंबर Verify करना है। जिसके लिए मोबाईल नंबर वाले बॉक्स में अपना मोबाईल नंबर टंकित करें और Next बटन पर क्लिक करें, जो मोबाईल नंबर यहाँ पर टंकित किया जाएगा वह आपके मेल आयडी से जुड़ा रहेगा।

5. ओटीपी और Verify :

मेल आयडी बनाने के लिए हमने जो मोबाईल नंबर दिया है। उसपर एक कोड आएगा जिसे ओटीपी कहा जाता है। Enter Verification code वाले बॉक्स में ओटीपी को लिखकर Verify के विकल्प का चयन करना है।

6. जन्मतिथि एवं लिंग :

अगले पृष्ठ पर मेल कर्ता की जन्मतिथि एवं लिंग पूछा है। जिसमें लिखने की सुविधा उपलब्ध नहीं है। जन्मतिथि के बॉक्स में अपनी जन्मतिथि, महीना और वर्ष लिखना है। जेंडर के बॉक्स में आप स्त्री हैं या पुरुष यह लिखना है। इसके बाद Next बटन को क्लिक करना है।

7. Yes I am In अथवा Skip पर क्लिक करें :

इस चरन में गूगल आपसे पूछता है कि क्या आप अपने मोबाईल नंबर को गूगल की दूसरी सेवाओं के साथ जोड़ना चाहते हैं। अगर आप जोड़ना चाहते हैं तो Yes I am In के विकल्प का चयन करें अथवा Skip के विकल्प का चयन कर सकते हैं।

8. गोपनीयता नीति: (Privacy Policy)

इस पृष्ठ पर गूगल आपके लिए गोपनीयता नीति को प्रस्तुत करेगा। प्रस्तुत सूचनाओं को ध्यानपूर्वक पढ़ने के बाद सहमति (I Agree) के विकल्प पर क्लिक करना है। जैसे ही सहमति के बटन पर क्लिक करेंगे तो आपके सामने Gmail का डैशबोर्ड खुल जाएगा। यही पर आप अपने भविष्य में आनेवाले सभी ई-मेल को देख पाएँगे। और यही से 'Compose' के विकल्प पर जाकर आप किसी भी व्यक्ति को ई-मेल भेज सकते हैं।

संक्षेप में उपर्युक्त विधि का उपयोग करके आप अपनी ई-मेल आयडी बना सकते हैं।

4.3.2.3 ई-मेल प्रेषण एवं प्राप्ति :

वर्तमान समय ई-मेल सबसे लोकप्रिय डिजिटल सेवा है। ई-मेल एक ऐसा तरीका है जिसके द्वारा हम किसी को भी ई-मेल भेज सकते हैं। यह पूरी प्रक्रिया डिजिटल रूप में होती है। ई-मेल भेजने के लिए बहुत सारे एप्लिकेशन है जैसे- Gmail, Mail.com, AOL, outlook, Zoho, Yahoo!, Proton mail, i cloud Mail आदि के माध्यम से हम ई-मेल भेज सकते हैं। आज हम किसी नौकरी के लिए आवेदन करते हैं तो उसमें ई-मेल आयडी अनिवार्य है। इसलिए हमें ई-मेल भेजने की विधि का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। किसी को भी ई-मेल भेजने के लिए हमारे पास एक ई-मेल अकाउंट का होना आवश्यक है। साथ ही हमारे पास एक कम्प्यूटर, लैपटॉप या मोबाईल फोन और इंटरनेट का होना जरूरी है। ई-मेल प्रेषण एवं प्राप्ति की विधि को निम्नलिखित चरणों के माध्यम से समझ सकते हैं-

चरण एक में सबसे पहले अपने मोबाईल फोन में जी-मेल एप्लिकेशन को खोलना है अथवा हम कम्प्यूटर या लैपटॉप से ई-मेल भेजना चाहते हैं तो हमें जी-मेल डॉटकॉम की वेबसाईट Mail.google.com को खोलना है। उसके बाद ई-मेल आयडी और पासवर्ड से लॉग-इन अथवा साइन-इन करना है। इसके बाद आपका ई-मेल खुल जाएगा।

चरण दो में मोबाईल फोन के ॲप में अंत में नीचे की ओर हमें Compose का विकल्प दिखाई देता है। उसपर क्लिक करना है। यही विकल्प (Compose) कम्प्यूटर या लैपटॉप में ऊपर की ओर बाएँ दिशा में दिया है। उसपर हमें क्लिक करना है।

चरण तीन में Compose पर क्लिक करते ही हमें संदेश का बॉक्स दिखाई देगा। उस पर क्लिक करते ही To, Subject, cc, bcc जैसे कई सारे विकल्प दिखाई देंगे। सर्वप्रथम हमें इन बॉक्स को भरना है।

From : इसमें पहले से आपका ई-मेल आयडी Save होता है। इसमें आपको कोई हस्तक्षेप नहीं करना है।

To : इस विकल्प में हमें उस व्यक्ति की ई-मेल आयडी को लिखना है, जिसे आप ई-मेल भेजना चाहते हैं।

CC : cc का अर्थ है कार्बन कॉपी। यह तब उपयोग में लाया जाता है जब एक ही मेल को कई सारे लोगों को एक साथ भेजना चाहते हैं। इस विकल्प में cc का उपयोग करते समय सभी को पता चलता है कि यह मेल किस-किस को भेजा है। लोग उसका रिप्लाई भी देख सकते हैं।

BCC : BCC से तात्पर्य है ब्लाइंड कार्बन कॉपी। इसके अंतर्गत भी कई सारे लोगों को एक साथ मेल भेजने की सुविधा उपलब्ध है। किंतु इसके अंतर्गत हमने मेल किस-किस को भेजा है वह देखने की सुविधा उपलब्ध नहीं है।

Subject : इस विकल्प के अंतर्गत विषय की संक्षिप्त जानकारी लिखना आवश्यक है। इससे यह समझ में आता है कि मेल किस लिए भेजा जा रहा है।

Compose Email : Compose में हम जो जानकारी सामने वाले को भेजना चाहते हैं। वह लिखनी आवश्यक है। हम इसमें लिखित स्वरूप में हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में टंकन करके ई-मेल भेज सकते हैं।

File Attached : फाईल को संलग्न करने का विकल्प नीचे दिया गया है। उस पर विकल्प का चयन करके हम File Attache पर क्लिक करेंगे तो उसमें पीडीएफ, फोटो, वीडियो और एप्लिकेशन आदि सामग्री को ई-मेल के माध्यम से भेज सकते हैं।

इस तरह से ई-मेल में अपनी सामग्री अथवा फाईल को बड़े आसानी से कम्प्यूटर, लैपटॉप या मोबाईल फोन से ई-मेल के द्वारा भेज सकते हैं।

Send : उपर्युक्त सभी चरणों को भरने का बाद सेंड के Icon को क्लिक करना है। इसके बाद ई-मेल सामने वाले उपयोगकर्ता के ई-मेल पर पहुंच जाएगा। अगर हम अपने द्वारा भेजे हुए ई-मेल प्राप्तकर्ता को पहुंच चुका है या नहीं यह देखना चाहते हैं तो मेनू में जाकर Sent विकल्प में आपने जितने भी ई-मेल भेज है वह सभी ई-मेल देख सकते हैं।

ई-मेल भेजने के बाद प्राप्तकर्ता उस ई-मेल को पढ़ सकता है। आमतौर पर प्रयोग की जानेवाली पद्धति यह है कि सर्वर कम्प्यूटर की मेमोरी में एक भाग ई-मेल के लिए प्रत्येक संदेश कर्ता के लिए निश्चित एवं आरक्षित करता है। जिन्हें मेल बॉक्स कहते हैं। प्राप्तकर्ता कम्प्यूटर की संचालन प्रणाली इन विभिन्न संदेशों को उनके भेजने वाले के अनुसार आरक्षित स्थान पर एकत्रित की जाती है। प्राप्तकर्ता जब भी चाहें वह इन विभिन्न मेल बॉक्सेज से संबंधित मेल को प्राप्त कर सकता है। और समय मिलने पर एक-एक करके पढ़ सकता है।

वर्तमान युग में हिंदी में ई-मेल से संदेश भेजने का प्रचलन बढ़ चुका है। विदेश में बसे भारतीयों से मेल के माध्यम से बातचीत कर सकते हैं। आज ई-मेल से हिंदी की जानकारी का सरलता से आदान-प्रदान किया जा रहा है।

4.3.2.3 विषय की जानकारी ढूँढना (सर्चिंग) :

सर्चिंग इंजन एक वेब आधारित टूल या सॉफ्टवेयर है जो इंटरनेट उपयोगकर्ताओं को वर्ल्ड वाइड वेब और मौजूद किसी भी जानकारियों को की-वर्ड के माध्यम से ढूंढने में उपयोगकर्ताओं की मदद करता है। सर्चिंग यह एक विशिष्ट वेबसाईट है जिसके ऊपर हम कोई भी खोज आवश्यकता के अनुसार कर सकते हैं। आज इंटरनेट पर ऐसे अनेक वेबसाईट निर्माण हुए हैं जिसके माध्यम से हम समग्र विश्व का ज्ञान प्राप्त करते हैं। जब की उपयोगकर्ता कोई की-वर्ड या सर्च बॉक्स में इंटर करके सबमिट बटन पर क्लिक करता है तो सर्च इंजन यह समझने की कोशिश करता है कि उपयोगकर्ता क्या ढूँढना चाहता है। और वह उससे जुड़ी जानकारियों को ढूँढकर व्यवस्थित तरीके से सर्च इंजन नतीजा (RESULT) पृष्ठ पर दिखाता है। एक सर्च इंजन के पास स्वचालित प्रोग्राम होते हैं जो इंटरनेट पर मौजूद् वेबसाईट और वेब पृष्ठ पर जाकर लगातार जानकारियों को एकत्रित करते हैं। उसके बाद उन वेब पृष्ठ पर जानकारियों को व्यवस्थित तरीके से अपने डेटा बेस में संगृहीत करके रखता है। ताकि जब भी इसकी जरूरत पड़े तो आसानी से ढूंढा जा सकें। अपने उपयोगकर्ता को सही और एकदम सटीक जानकारी देना किसी भी सर्च इंजन की पहली प्राथमिकता होती है।

अ) सर्चिंग का स्वरूप :

सर्चिंग का अर्थ 'ढूँढना' या 'खोजना' है। सर्चिंग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका उपयोग विशिष्ट शब्द, वाक्य अथवा विषय पर इंटरनेट या किसी अन्य डिजिटल स्रोत के माध्यम से जानकारी को ढूँढने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। यह एक तकनीकी प्रकिया है जो वेब ब्राउज़र की मदद से किया जाता है। इसमें उपयोगकर्ता एक सर्च इंजन के माध्यम से अपनी जानकारी के विचार अथवा प्रश्न प्रदर्शित करता है और सिस्टम उपयोगकर्ता को संबंधित जानकारी की प्रस्तुति करता है। मनुष्य इंटरनेट पर किसी विषय की खोज करता है तो सर्च इंजन उनके लिए विभिन्न वेबसाइटों, ब्लाग्स, लेख, वीडियो और अन्य सामग्री की सूची प्रदान करता है। जिसमें उनकी खोज के संदर्भ से मिलते-जुलते सटीक नतीजे होते हैं। सर्च इंजन विचारशीलता और अद्वितीय एल्गोरिथम का उपयोग करता है।

आ) सर्च इंजन के प्रकार :

सर्च इंजन कई प्रकार के होते हैं। हर सर्च इंजन का काम करने का तरीका अलग-अलग होता है। हर सर्च इंजन का अपना एक गोपनीय गणितीय फार्मूला होता है। जिसे एल्गोरिथम कहा जाता है। यही एल्गोरिथम तय करता है कि सर्च करने पर कौन-सी वेबसाईट सबसे पहले और कौन-सी बाद में आनेवाली है अर्थात् रिजल्ट पृष्ठ पर किस वेबसाईट की रैंकिंग कितनी होगी यह एल्गोरिथम से ही तय होता है। सर्च इंजन का मुख्य कार्य अलग-अलग वेब पृष्ठ पर जाकर जानकारियों को खोजना उन्हें संगठित करना और कंटेंट की गुणवत्ता के अनुसार रैंकिंग करना होता है। मुख्य रूप से सर्च इंजन तीन प्रक्रियाओं से गुजरता है-

1. क्रॉलिंग :

क्रॉलिंग एक ऐसा स्थान है जहाँ पर प्रत्येक वेबसाइट का डाटा एकत्रित होता है। हमारे द्वारा डाले गए किसी भी प्रश्न से जुड़ी वेबसाइट पर स्कैन करना और प्रत्येक पृष्ठ के बारे में संपूर्ण विवरण एकत्रित करके एक जगह शामिल करना क्रॉलिंग का प्रधान कार्य होता है। इसके अतिरिक्त वह हमारे प्रश्नों से जुड़े शीर्षक, चित्र, की–वर्ड आदि लिंक भी प्रस्तुत पृष्ठ पर दिखाता है। यदि हमारे पास पहले से ही कोई लिंक मौजूद होती है तो वह उस लिंक तक पहुँचाने में हमारी सहायता करता है। वह यह भी बताता है कि अब आपको इससे आगे कहाँ पर जाना चाहिए और कहाँ पर आपको आपके प्रश्न से संबंधित सही जानकारी प्राप्त हो सकती हैं।

2. इंडेक्सिंग (अनुक्रमण) :

इंडेक्सिंग (अनुक्रमण) हमारे द्वारा सर्च किए गए प्रश्न के सभी जवाबों को एकत्रित करके एक डेटाबेस तयार करता है। जिसमें सभी प्रकार की जानकारियाँ विस्तार से प्रस्तुत की जाती है। जिस तरह एक लाइब्रेरी में सभी प्रकार की किताबें सम्मिलित होती हैं ठीक इसी प्रकार इंडेक्सिंग भी क्रॉलिंग करते समय काम करता है। इंडेक्सिंग के द्वारा हजारों वेबसाईट ड्राइव को एक साथ इकट्ठा कर प्रदर्शित किया जा सकता हैं।

3. पुनर्प्राप्ति और रैंकिंग :

पुनर्प्राप्ति और रैंकिंग की सहायता से हम किसी भी चीज को आसानी से सर्च इंजन के द्वारा ढूंढ सकते हैं। हमारे प्रश्नों का सही उत्तर वही दे सकता है जिसके पास हमारे सभी प्रश्नों के उत्तर उपलब्ध हो तभी हम उस चीज पर आसानी से विश्वास कर पाते हैं। सर्च इंजन पर सिर्फ एक छोटा सा शब्द डालकर ही आप पूरे प्रश्नों का जवाब प्राप्त कर लेते हैं। सर्च इंजन पर कुछ ऐसे भी कंटेंट, की–वर्ड और कंटेंट पृष्ठ तथा शीर्षक में बहुत कुछ समावेश होता है। जिसकी सहायता से हम उन्हें सहजता से ढूँढ पाते हैं। दूसरा तरीका रैंकिंग होता है जिसकी सहायता से गूगल के किसी भी पृष्ठ पर मौजूद किसी भी शब्द या वाक्य से जुड़े प्रश्नों के उत्तर हमें आसानी से प्राप्त होते हैं।

इ) सर्चिंग का महत्त्व :

सर्चिंग इंजन एक ऐसा सॉफ्टवेयर है, जो उपयोगकर्ताओं द्वारा प्रविष्ट किए गए की–वर्डस का प्रयोग करके इंटरनेट पर सूचना खोजने में सहायता करता है। सर्च इंजन का महत्व तब और भी ज्यादा बढ़ जाता है, जब हमें किसी वेबसाईट का वेब पता मालूम नहीं होता है। सर्चिंग इंजन पुस्तकालयों के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी साधन है, जो सूचनाओं को प्रभावशाली ढंग से संयोजित करता है। साथ ही सुविधापूर्वक रूप से उनका अभिगम सुनिश्चित करता है।

वर्तमान समय में सर्च इंजन हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। सर्चिंग के बिना मानवीय जीवन की कल्पना करना असम्भव है। आज हर वह चीज जो किसी न किसी सूचना के आदान–प्रदान से जुड़ी हुई है। उसके लिए सर्च इंजन की आवश्यकता पड़ती है।

1. सरल खोज तकनीक :

किसी भी सूचना को खोजने का सबसे आसान तरीका अगर कोई है तो वह वेब सर्चिंग। सर्च इंजन विषय से संबंधित जानकारी को आसानी से प्राप्त करवाता है। जिसके माध्यम से हम आसानी से सर्चिंग वेब पर किसी भी विषय से संबंधित जानकारी को प्राप्त कर सकते हैं।

2. शिक्षा और ज्ञान का साधन :

शिक्षा और ज्ञान के क्षेत्र में सर्चिंग इंजन की अत्यंत आवश्यकता है। शिक्षा और ज्ञान के लिए यह महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। छात्रों एवं ज्ञानार्जन करने वालों के लिए सर्चिंग इंजन एक साधन के रूप में कार्य करता है।

3. अनुसंधान :

किसी भी क्षेत्र में अनुसंधान का कार्य करनेवाले शोध छात्रों को सर्चिंग इंजन की अत्यंत आवश्यकता है। शोध विषय से संबंधित बहुमूल्य जानकारी और परिणामों को शोधार्थी प्राप्त कर सकता है।

4. मेहनत एवं समय की बचत :

सर्चिंग इंजन के कारण उपयोगकर्ता की मेहनत और समय की बचत होती है। वर्ल्ड वाइड वेब में मौजूद जानकारियों के ढेर में से काम की जानकारियाँ पलभर में प्राप्त होती है। इसलिए सर्च इंजन की अत्यंत आवश्यकता है।

5. खरीदारी :

सर्च इंजन के द्वारा पेश किए गए सामानों और सेवाओं की खोज करके आप खरीदारी कर सकते हैं। मनुष्य इसके द्वारा अपनी पसंदीदा उत्पादों की खोज कर सकता है और उसे अपने बजट में खरीद सकता है।

6. सोशल मीडिया और ट्रेंडिंग विषयों की खोज :

सर्चिंग की व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर अत्यधिक आवश्यकता है। सर्च इंजन लोगों को सोशल मीडिया पर ट्रेंडिंग विषयों की खोज करने में मदद करता है। जैसे- सामान्य चर्चा के विषय, वायरल वीडियो, मीम्स और अन्य चर्चित विषय आदि।

निष्कर्षत: वर्तमान समय में विषय से संबंधित जानकारी को प्राप्त करने के लिए कई सर्च इंजन का उपयोग करते हैं। जिसमें से कुछ प्रमुख सर्च इंजन है- गूगल, बिंग, याहू, एओएल. कॉम, यांडेक्स, डकडकगो आदि है।

4.3.2.5 इंडिक इनपुट सॉफ्टवेयर परिचय :

माइक्रोसॉफ्ट कॉरपोरेशन द्वारा इंडिक इनपुट टेक्नोलॉजी का निर्माण किया है। माइक्रोसॉफ्ट इंडिक भाषा इनपुट टूल्स के माध्यम से माइक्रोसॉफ्ट विंडोज के किसी भी दस्तावेज जैसे- वर्ड एक्सेल, नोटपैड में

आसानी से किसी भी भारतीय भाषा का उपयोग करने में सहायता प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त यह Visual keyboard की सुविधा भी प्रदान करता है। जिसकी मदद से उपयोगकर्ता अपने दस्तावेज में आवश्यक सुधार करता है। साथ ही एक भाषा से दूसरी भाषा में स्थानांतरित भी कर सकता है। वर्तमान समय में गूगल इनपुट टूल बाइस भाषाओं के लिए उपयुक्त है।

अ) इंडिक इनपुट साफ्टवेयर का स्वरूप :

हिंदी इंडिक इनपुट साफ्टवेयर एक एप्लिकेशन साफ्टवेयर है, जो हिंदी यूनिकोड टाइपिंग के लिए हिंदी यूनिकोड की-बोर्ड की सुविधा प्रदान करता है। यद्यपि हिंदी टाइपिंग तो Legacy Fonts जैसे कृतिदेव, देवलिस फॉन्ट से हो सकती है। परंतु वह वास्तविक हिंदी टाइपिंग नहीं होती है अंग्रेजी वर्ण को ही Legacy Fonts हिंदी दिखाते हैं। यदि यह फॉन्ट कम्प्यूटर में न हो तो आपकी सामग्री अंग्रेजी में ही दिखेगी। इसके अलावा अन्य कई तकनीकी समस्या legacy Fonts की टाइपिंग में होती हैं इसलिए इस साफ्टवेयर को विकसित किया है।

गूगल इंडिक इनपुट साफ्टवेयर हिंदी टाइपिंग के लिए नौं की-बोर्ड ले-आउट प्रदान करता है। जैसे - रेमिंग्टन, इंस्क्रिप्ट, टाइपराइटर, टांसलिटरेशन आदि। जो लोग टाइपिंग नहीं जानते हैं वह इनस्क्रिप की-बोर्ड पर टाइपिंग सीख सकते हैं। क्योंकि यह सीखने में आसान एवं सहज है। जिन्हें टाइपिंग नहीं आती अथवा जो सीखना नहीं चाहते हैं तो वह Transliteration Keyboard का चयन करके अंग्रेजी अक्षरों के द्वारा ही हिंदी यूनिकोड में टाइपिंग कर सकते हैं। इस प्रकार यह साफ्टवेयर ऑल-इन-वन टाइपिंग साफ्टवेयर होकर सभी कम्प्यूटर उपयोगकर्ताओं को हिंदी यूनिकोड टाइपिंग की सुविधा प्रदान करता है, चाहे वह टाइपिंग जानता हो अथवा नहीं।

गूगल इंडिक इनपुट साफ्टवेयर BHASHAINDIA वेबसाइट पर उपलब्ध है। BHASHAINDIA वेबसाइट वर्तमान में MICROSOFT के स्वामित्व में कार्यरत हैं। कुछ समय पूर्व तक BHASHAINDIA वेबसाइट का अपना अस्तित्व था लेकिन वर्तमान में BHASHAINDIA.COM स्वत: ही <https://www.microsoft>.com/en-in/bhashaindia से अनुप्रेषित हो जाता है। अगर कोई इंडिक इनपुट साफ्टवेयर डाउनलोड करना चाहता है तो वह कर सकता है। यहां पर हिंदी भाषा के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं के यूनिकोड इनपुट साफ्टवेयर भी उपलब्ध है। हिंदी इंडिक इनपुट साफ्टवेयर को तीन संस्करणों में विकसित किया है, जो अलग-अलग विंडोज के लिए उपलब्ध है। किंतु अधिकतम् विद्वानों का मानना है कि इसका प्रथम संस्करण सभी विंडोज से बेहतर कार्य करता है।

आ) इंडिक इनपुट टेक्नोलॉजी को डाउनलोड करने की विधि :

इंडिक इनपुट टेक्नोलॉजी को डाउनलोड करने की विधि निम्नलिखित चरणों में प्रस्तुत है -

1. चरण एक में सर्वप्रथम हमें bhashaindia.com पर क्लिक करना है।
2. चरण दो में डाउनलोड पर क्लिक करना है।

3. चरण तीन में सेट अॅप फाइल लोड होने पर राइट क्लिक करना है।
4. चरण चार में 'Show in folder' पर क्लिक करना है।
5. चरण पांच में 'Folder open' करके 'Setup' चलाऐं।
6. चरण छः में 'Setup wizard' विंडोज खुलते ही 'Next' पर क्लिक करने के बाद 'Everyone' पर क्लिक करें। इसके बाद 'Next' पर क्लिक करें।
7. चरण सात में 'Confirm Installation' विंडो खुलते ही Next पर क्लिक करें।
8. चरण आठ में Installation Complete होते ही Close पर क्लिक करें।
9. चरण नौं में Start पर जाकर Programs पर क्लिक करना है।
10. चरण दस में Indic input नाम के फोल्डर को खोलना है।
11. चरण ग्यारह में नीचे Taskbar पर आपको एक Tool kit दिखाई देगी।
12. अब आप इंडिक इनपुट टेक्नोलॉजी का उपयोग कर सकते हैं।

अतः हिंदी टाइपिंग टूल के द्वारा हिंदी लिखना कठिन कार्य नहीं रहा है। लेकिन इसके पहले अंग्रेजी Qwerty की-बोर्ड से हिंदी लिखना कठिन होता था। इसका प्रमुख कारण यह था कि अधिकांश टेक्नोलॉजी अंग्रेजी भाषा का प्रयोग करके विकसित हुई है। बदलते समय के साथ इंटरनेशनल कंपनियों ने अपनी वस्तुओं को अंग्रेजी के साथ क्षेत्रीय भाषाओं में भी प्रस्तुत किया है। और यह उनके लिए काफी फायदेमंद भी साबित हुआ है।

इ) यूनिकोड और इंटरनेट :

यूनिकोड का उपयोग इंटरनेट की विभिन्न एप्लिकेशन पर भी किया जाता है।

अ) गूगल पर यूनिकोड का प्रयोग: वर्तमान समय में गूगल पर भी हिंदी टंकन किया जाता है। यदि हम गूगल पर हिंदी फॉन्ट में कोई विषय लिखना चाहते हैं तो उसका विवरण भी हिंदी फॉन्ट में उपलब्ध होगा। ऐसा केवल हिंदी में ही नहीं बल्कि अन्य भाषाओं में भी किया जा सकता है।

आ) ई-मेल पर यूनिकोड का प्रयोग: यूनिकोड का उपयोग करके हम किसी भी भाषा में ई-मेल लिख सकते हैं। इसका प्रयोग मोबाईल के विभिन्न एप्लिकेशन पर भी किया जा सकता है। यूनिकोड का उपयोग करके एक से अधिक भाषाओं में संदेशों का आदान-प्रदान किया जा सकता है। भेजा गया ई-मेल किसी भी सिस्टम पर खोल सकते हैं।

ई) यूनिकोड का महत्त्व: वर्तमान समय में प्रचलित फॉन्ट कृतिदेव और देवलिस जैसे फॉन्ट सिस्टम स्पेसिफिक होते हैं। यदि हमारे सिस्टम में वह फॉन्ट उपलब्ध नहीं है तो संबंधित भाषा में टंकित की गई पाठ्य सामग्री पढ़ने योग्य नहीं रहेगी। इंडिक इनपुट टेक्नोलॉजी में टंकन की गई सामग्री यदि आपके सिस्टम में फॉन्ट इन्स्टॉल हो अथवा ना हो वह उसी भाषा की लिपी में दिखाई देगा और पढ़ने योग्य भी होगा।

मध्यप्रदेश देश का ऐसा प्रथम राज्य है जहां सरकार ने प्रशासकीय कामकाज में यूनिकोड फॉन्ट का उपयोग अनिवार्य किया है। इसका प्रमुख उद्देश्य कंप्यूटर पर हिंदी भाषा के उपयोग को बढ़ावा देना है। मध्यप्रदेश सरकार ने प्रशासकीय कामकाज से कृतिदेव और देवलिस जैसे फॉन्ट को हटा दिया है।

यूनिकोड टेक्नोलॉजी पर वह लोग भी टंकन कर सकते हैं जिन्हें हिंदी टंकण नहीं आता है। ऐसे उपयोगकर्ताओं को हिंदी टंकन के लिए Hindi Translation नामक की-बोर्ड का चयन करना आवश्यक है। जिसकी सहायता से रोमन टंकन के माध्यम से हिंदी लिखी जा सकती है। जैसे- Anil लिखे जाने पर स्क्रीन पर 'अनिल' दिखाई देगा। यूनिकोड टेक्नोलॉजी का उपयोग मोबाईल एप्लिकेशन पर भी कर सकते हैं और वह भी ठीक उसी प्रकार काम करता है जैसे कम्प्यूटर पर किया जाता है।

संक्षेप में इंडिक इनपुट का महत्व व्यापक मात्रा में बढ़ चुका है। आज सभी सरकारी कार्यालयों में यूनिकोड फॉन्ट का उपयोग सर्वाधिक मात्रा में किया जा रहा है। वस्तुत: यूनिकोड का उपयोग समय की माँग बन चुका है। हिंदी यूनिकोड टाइपिंग, हिंदी में ब्लागिंग और चैटिंग करना है तो हिंदी इंडिक इनपुट की अत्यंत आवश्यकता है।

4.4 सारांश :

हिंदी की लिपी देवनागरी लिपी कहलाती है। इसका विकास ब्राह्मी लिपी से हुआ है। देवनागरी का वर्तमान रूप ब्राह्मी का विकसित रूप है। यह लिपी विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक, पद्धतिपरक और अधिकतम ध्वनियों को रूपांकित करने वाली लिपी है।

देवनागरी लिपी अपने सर्वाधिक गुणों के कारण केवल हिंदी की ही लिपी नहीं है, बल्कि भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित 22 भाषाओं में से संस्कृत, मराठी, नेपाली, बाड़ों, डोगरी तथा मैथिली भाषाओं की भी लिपी है। कोंकणी तथा संथाली भाषाएं भी इसे स्वीकार कर रही है। भारत की अधिकतम भाषाओं की लिपीयां देवनागरी लिपी से ही उपजी है।

सूचना प्रौद्योगिकी के युग में हिंदी का महत्त्व पहले से अधिक बढ़ चुका है और यह महज राजकाज की संवैधानिक बाध्यता से निकलकर व्यवसायिक भाषा के रूप में उभर कर सामने आयी है।

कम्प्यूटर ने मानवीय जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। आज बिना कम्प्यूटर के आधुनिक विश्व के बारे में कल्पना भी नहीं की जा सकती है। दुनिया में यह विशाल परिवर्तन लाने तथा दुनिया को सूचना एवं प्रौद्योगिकी की नई सीढ़ियों पर ले जाने के लिए कम्प्यूटर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

मशीनी अनुवाद प्रणालियों ने जीवन व्यवहार के विभिन्न क्षेत्रों में कम्प्यूटर के द्वारा अनुवाद की संभावना को मूर्त रूप प्रदान किया है।

ई-मेल आयडी बनाने और उसका उपयोग करने में किसी अतिरिक्त खर्चे की आवश्यकता नहीं होती है। इसके लिए कुछ आवश्यक चीजों की आवश्यकता होती है। जैसे - कम्प्यूटर, लैपटॉप अथवा स्मार्टफोन, इंटरनेट कनेक्शन, ई-मेल प्रोवाइडर, न्यूनतम डिजिटल साक्षरता आदि।

वर्तमान समय में विषय से संबंधित जानकारी को प्राप्त करने के लिए सर्च इंजन का उपयोग किया जाता है। जिसमें से कुछ प्रमुख सर्च इंजन है – गूगल, बिंग, याहू, एओएल. कॉम, यांडेक्स, डकडकगो आदि।

हिंदी इंडिक इनपुट साफ्टवेयर एक एप्लिकेशन साफ्टवेयर है, जो हिंदी यूनिकोड टाइपिंग के लिए हिंदी यूनिकोड की–बोर्ड की सुविधा प्रदान करता है।

4.5 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

i) निम्नलिखित वाक्यों के नीचे दिए गए उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. 'लिपी' शब्द संस्कृत के …….. धातु से बना है।
   अ) विप ब) रिप क) लिप ड) डिप
2. देवनागरी लिपी का विकास……. से माना जाता है।
   अ) नागरी ब) ब्राह्मी क) रोमन ड) शारदा
3. देवनागरी लिपी की वर्णमाला का क्रम……. है।
   अ) वैज्ञानिक ब) अवैज्ञानिक क) तांत्रिक ड) व्यावहारिक
4. भारत की अधिकतम् भाषाओं की लिपीयाँ……लिपी से उपजी है।
   अ) रोमन ब) शारदा क) देवनागरी ड) ग्रंथ लिपी
5. लिप्यंतरण की दृष्टि से……. लिपी सबसे उपयुक्त है।
   अ) देवनागरी ब) शारदा क) रोमन ड) खरोष्ठी
6. भारतीय संविधान ने…… लिपी को राजलिपी के पद पर प्रतिष्ठित किया है।
   अ) शारदा ब) कन्नड़ क) अरबी ड) देवनागरी
7. देवनागरी लिपी में वर्णों के उच्चारण…… हैं।
   अ) निश्चित ब) अनिश्चित क) स्थिर ड) अस्थिर
8. देवनागरी लिपी के मानकीकरण के लिए सन्…….. में विशेषज्ञ समिति का गठन किया था।
   अ) 1960 ब) 1961 क) 1962 ड) 1965
9. किसी भी भाषा का …… लिपी, वर्तनी और उच्चारण के स्तर पर होता है।
   अ) मानकीकरण ब) मशीनीकरण क) व्यवहार ड) मनोविज्ञान
10. संयुक्त व्यंजन में…… व्यंजन महाप्राण होता है।
    अ) प्रथम ब) द्वितीय क) तृतीय ड) चतुर्थ
11. ……. अनुवाद मूलतः कंप्यूटेशनल भाषाविज्ञान का अनुप्रयोग है।

अ) साहित्यिक ब) वैज्ञानिक क) मशीनी ड) तांत्रिक

12. मशीनी अनुवाद.....की सहायता से कार्य करता है।

अ) यंत्र ब) कम्प्यूटर क) विज्ञान ड) प्रौद्योगिकी

13. ..... ने इंडिक इनपुट टूल का निर्माण किया है।

अ) माइक्रोसॉफ्ट कॉरपोरेशन ब) गूगल क) सी-डैक ड) माइक्रोमैक्स

14. गूगल इंडिक इनपुट साफ्टवेयर हिंदी टाइपिंग के लिए..... की-बोर्ड ले-आउट प्रदान करता है।

अ) पांच ब) नौं क) पंद्रह ड) बीस

15. ..... सरकार ने यूनिकोड फॉन्ट को प्रशासन की भाषा के रूप में अनिवार्य किया है।

अ) उत्तर प्रदेश ब) महाराष्ट्र क) बिहार ड) मध्यप्रदेश

16. हिंदी इंडिक इनपुट साफ्टवेयर को ..... संस्करणों में विकसित किया है।

अ) एक ब) दो क) तीन ड) चार

17. ई-मेल को ..... मेल कहते हैं।

अ) इलेक्ट्रॉनिक ब) औद्योगिक क) आर्टिफिशियल ड) डिजिटल

18. सर्चिंग..... को खोजने का माध्यम है।

अ) इंटरनेट ब) जानकारी क) विषय ड) सामग्री

19. सर्च इंजन को मुख्यतः ..... श्रेणियों में विभाजित किया है।

अ) दो ब) तीन क) चार ड) पांच

20. सर्च इंजन पर सर्चिंग के लिए लिखे शब्दों को..... कहा जाता है।

अ) की-वर्ड ब) विंडोज क) की-फेज ड) क्रॉल

ii) उचित मिलान कीजिए।

1. देवनागरी लिपी	अ) स्वर
2. व्यंजन	ब) वैज्ञानिक
3. 14	क) नागरी लिपी
4. वर्णमाला क्रम	ड) 35
5. लिपी	च) लिंपन
6. कंठय्	छ) च, छ, न, झ, त्र

7. तालव्य	ज) क, ख, ग, घ,ड
8. लक्ष्य भाषा	झ) स्वांत:सुखाय
9. अनुवाद	प) अनुदित पाढ
10. मेल आयडी	फ) कम्प्यूटर

iii) सही–गलत प्रश्न।

1. देवनागरी लिपी भारत की प्रमुख लिपी नहीं है।
2. देवनागरी लिपी का विकास ब्राह्मी लिपी से हुआ है।
3. देवनागरी लिपी की वर्णमाला का क्रम अवैज्ञानिक है।
4. भाषा का वर्णमाला एवं लिपी से घनिष्ठ संबंध नहीं है।
5. देवनागरी लिपी को नागरी लिपी के नाम से जाना जाता है।
6. मशीनी अनुवाद को अभिव्यक्ति का मशीनीकरण कहा जाता है।
7. ई–मेल डिजिटल सेवा प्रदान करता है।
8. मध्यप्रदेश सरकार ने प्रशासकीय कामकाज से कृतिदेव और देवलिस फॉन्ट को हटा दिया है।
9. गुगल इंडिक इनपुट एक सॉफ्टवेयर है।
10. गुगल इंडिक इनपुट सॉफ्टवेयर BHASHAINDIA वेबसाईट पर उपलब्ध नहीं है।

4.6 शब्दार्थ, संदर्भ, टिप्पणियाँ :

- महाप्राण – वह वर्ण जिसके उच्चारण में प्राणवायु का विशेष प्रयोग हो।
- अल्पप्राण – व्यंजन के प्रत्येक वर्ग का पहला, तीसरा तथा पाँचवाँ अक्षर।
- अघोष – अल्पध्वनियुक्त
- परिलक्षित – अच्छी तरह से निरूपित अथवा वर्णित
- वैज्ञानिकता – तार्किकता, तत्वज्ञान
- मानकीकरण – मानक रूप स्थिर करना या मानक निश्चित करना।
- लिप्यंतरण – दूसरी लिपी में बदलना
- प्रतिलेखन – लिखी हुई चीज की ज्यों की त्यौं नकल करना, फिर से लिखना
- अनुनासिक – नासिक विवर की मदद से मुखोच्चरित ध्वनि (अक्षर) न, म।
- मशीनीकरण – यंत्रीकरण, कार्य को मनुष्य बल के स्थान पर मशीनों से करवाने की व्यवस्था कर देना।
- प्रेषण – भेजना

- एल्गोरिथम - कलन विधि अर्थात् किसी भी समस्या का चरणबद्ध तरीके से समाधान निकलने की प्रक्रिया।

4.7 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

उत्तर - (i) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर।

1. (क) लिप	2. (ब) ब्राह्मी	3. (अ) वैज्ञानिक	4. (क) देवनागरी
5. (अ) देवनागरी	6. (ड) देवनागरी	7. (अ) निश्चित	8. (ब) 1961
9. (अ) मानकीकरण	10. (अ) प्रथम	11. (क) मशीनी	12. (ब) कम्प्यूटर
13. (अ) माइक्रोसॉफ्ट कॉरपोरेशन	14. (ब) नौं	15. (ड) मध्यप्रदेश	16. (क) तीन
17. (अ) इलेक्ट्रॉनिक	18. (ब) जानकारी	19. (ब) तीन	20. (अ) की-वर्ड

उत्तर - (ii) उचित मिलान।

1. (क) नागरी लिपी	2. (ड) 35	3. (अ) स्वर	4. (ब) वैज्ञानिक
5. (च) लिंपन करना	6. (ज) क, ख, ग, घ, ड		7. (छ) च, छ, न, झ, त्र
8. (प) अनूदित पाठ	9. (झ) स्वांत:सुखाय		10. (फ) कम्प्यूट

उत्तर - (iii) सही-गलत प्रश्न।

1. गलत	2. सही	3. गलत	4. गलत	5. सही	6. सही
7. सही	8. सही	9. सही	10. गलत		

4.8 स्वाध्याय :

अ) निम्नलिखित दीर्घोत्तरी प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1. देवनागरी लिपी की विशेषताओं को विशद कीजिए।
2. देवनागरी लिपी की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डालिए।
3. हिंदी में कम्प्यूटर सुविधाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. इंडिक इनपुट साफ्टवेयर का परिचय दीजिए।
5. मशीनी अनुवाद पर प्रकाश डालिए।

ब) निम्नलिखित लघुत्तरी प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

1. देवनागरी लिपी की सीमाएं।
2. देवनागरी लिपी का मानकीकरण।

3. मशीनी अनुवाद।
4. ई–मेल आयडी पंजीकरण।
5. ई–मेल प्रेषण एवं प्राप्ति।
6. विषय की जानकारी ढूँढना।
7. इंडिक इनपुट सॉफ्टवेयर।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. देवनागरी लिपी एवं रोमन लिपी का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
2. भारतीय संविधान में देवनागरी की स्थिति का अध्ययन कीजिए।
3. हिंदी के विकास में इंटरनेट का योगदान।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन हेतु संदर्भ :

1. भोलानाथ तिवारी – भाषा विज्ञान, किताब महल, दिल्ली।
2. डॉ. नेमीचन्द्र श्रीमाल – भाषा विज्ञान, श्रुति पब्लिकेशन, जयपुर।
3. डॉ. नरेश मिश्र – नागरी लिपी, सरोज पब्लिकेशन, दिल्ली।
4. डॉ. हरदेव बाहरी – हिंदी उद्‌भव, विकास और रूप, किताब महल, इलाहाबाद।
5. हनुमानप्रसाद शुक्ल – हिंदी भाषा और उसका विकास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

❑❑❑